TO THE READER

KINDLY use this book very carefully. If the book is disfigured or marked or written on while in your possession the book will have to be replaced by a new copy or paid for. In case the book be a volume of a set which single volume is not available the price of the whole set will be realized.

प्रकाशक के दो शब्द

श्री अवध कुमार सिंहा, 'श्रीकुमार' जी का भाव-संकुल उपन्यास-'माधवी रस लतिका' प्रकाशित करते समय हमें अत्यन्त हर्ष हो रहा है। श्रीकुमारजी की शैली, कथानक की रमणीयता एवं रोचकता प्रशंसनीय कही जा सकती है। ईश्वर, लेखक को दीर्घायु प्रदान करें—यही हमारी मंगल-कामना है। जल्दीबाजी के कारण यत्र-तत्र कुछ अशुद्धियाँ रह गई हैं, जो शीघ्रही दूसरे संस्करण में दूर कर दी जांयगी।

प्रकाशक-
रमा वल्लभ प्रसाद साहु
युगान्तर; प्रेस,
मिरजान हाट, भागलपुर

१५ कातिक, दीपावली
सम्वत २००६

ॐ

भूमिका के शब्दों में

रात
अंधेरी और मैं अकेला। नई-नई भावनाएं मन में उठ रही हैं, अकेला हूं; नीरव-वातावरण है, अतः यथाशक्ति कुछ लिख देता हूं।

उपन्यास लिखने बैठा हूं, नाम तो मनोनुकूल रखा है ——"माधवी -रसलतिका"। शायद, नामकरण से पाठक भ्रम में पड़ जाएं कि यह उपन्यास है या कोई अन्य काव्य—पुस्तक।

मूर्त्त—भाव की ममता के कारण कोई भी रचना खड़ी हो सकती है, पूर्व—संस्कार भी अनिवार्य है। संस्कार पूर्ण—व्यक्तित्व को समझने में लम्बा समय लगता है, किन्तु साधना एवं त्याग से व्यक्तित्व झलक उठता है, और लोग ऐसे ही व्यक्तियों की प्रशंसा एवं पुजा करते हैं।

"माधवी—रसलतिका" में राज राधव का व्यक्तित्व साधना एवं त्याग के कारण प्रशंसनीय है। दार्शनिक—भारत के चिरंतन—सत्य एवं भारतीय—सिद्धांतों की ओर राज-राघव अभिरुचि है। उसका 'आदमी और योग' साथ-साथ चलता है।

माधवी देवी का चरित्र रूपगर्विता—नारी का हृदय स्पर्शी—दृष्टांत है, और मानिवी की विकल—हँसी में, रुचिर-श्रृंगार में, जवानी के पार्थिव-लावण्य में राजराधव सा कर्मठ वीर भी फंस जाता है, पर; श्रीराज की उत्तरोत्तर साधना के संयम के कारण नारी का सौंदर्य विकल्प एवं निर्लज्ज नहीं हो सकता। रूपगर्विता—नारी का सौंदर्य रूप-तन में ही

कभी झिलमिलाता, और कभी ओझल एवं ममीहत हो जाता, और साधना एवं त्याग की चिरंतन—शक्ति के सामने नारी, पुरुष की बेपर्द—अवस्था को परखने में असफल हो जाती है। पुरुष जो कर्मठ है——अंततः विजयी होता है।

नारी का रूप—तन सौंदर्य नहीं; घिनौना भले ही हो। सौंदर्य तो मार्मिक—स्निग्ध वेदना है, भावनाओं का पागलपन नहीं।

फूहड़ रोमांस का स्थान इस उपन्यास में नगण्य है। इसी अधार पर प्रियवासकी का प्रेम आत्मिक-अनुराग एवं आकर्षण के दृष्टांत है।

जीवनधन के चरित्र में सफेद पोश –रईसी, फालतू जरुरत से अधिक पैसों के कारण पापाचार, कामुकता, गरीबों की निरीह-अवस्था, बर्ग- संघर्ष वा कुचक्र, एवं नवीन—विलासिता के प्रत्यक्ष अक्षरशः दृठटांत हैं।

पैसे की गर्मा गोबिन्द को इसान की शराफत, और अज़ठए—ईमान से दूर फेंक देती है। निर्मल के पास कोरी भावुकता है, पागल पन है, पर उसकी शराफत नंगी नहीं है। 'भानुमति-मंदिर' धर्म की आड़ में पाशविकता का शिकार है, महंथो के नैतिक-पतन का ज्वलंत उदाहरण है। अज्ञानी के लिए रास–लीला भो लावण्य का आखेट है। 'राज-फाटक' ——रईसों की घिनौनी-बिलासिता का प्रतीक है। साथ ही साथ समाज से ठुकराए हुए अभागों का मार्मिक-दृष्टांत भी है।

'अमरकंटक' तो साधना एवं संमय के लिए प्रत्यक्ष-रूप में कंटक है, दुनियाबी-हाहाकार के बीच 'शांति' चुप-सो पड़ गई है।

दो दिन की जिन्दगी और फिर भी ———भारी

झमेला। क्या करे, आदमी जो परिस्थितियों से लाचार है। अतः संघर्ष को जीवन का मार्मिक-सत्य मान कर चरित्रों की काया खड़ी की गई है।

हाँ, इस उपन्यास में पाठकों को दो ही परिच्छेद मिलेंगे, क्योंकि, जीवन के दो ही प्रत्यक्ष परिच्छेद होते हैं ——एक तो संघर्ष, और अंत — -सौम्य-दुःखांत।

शैली के संबंध में केवल इतना ही कहना है कि भावनाओं के शब्द-चित्र चरित्रों के विकाश में अनुमान से अधिक खींचे गए हैं।

चरित्र-चित्रण कहाँ तक संघटित, कथानक कहाँ तक समीचीन, और घटनाएं —— समग्र हैं—— ये निर्णय तो पाठकों; और श्रद्धेय-आलोचकों को करने पड़ेंगे। हाँ माधवी के लिए-यह पुस्तक मुझ से अकिंचन का एक उपहार है — जो मेरी दृष्टि में प्रेम की सफल-मूर्ति, शाँति की अम्लान प्रतिभा, भारतीय-दाम्पत्य-भक्ति की मंजूषा है। उसकी सुहाग-बिन्दी आदर्श बने, यही मेरी मंगल-कामना है। अकेला पथिक चौराहे पर खड़ा है। स्वीकृति की सूचना दे दो — देवी !

इस उपन्यास के लिखने में पूज्य तपेश्वरी नाथ बरियार (असिसटेंट-सर्जन, साहेबगंज) एवं श्री पारस नाथ बरियार (प्रसिद्ध-वकील, जमुई) जो घरेलू-जीवन से आक्रांत फिर भी संघर्ष में बिजयी, मुख पर जिंदादिली मुखरित हैं, एवं रायसाहब यदुप्रसाद जी के विशेष प्रोत्साहन मुझे मिले हैं। कुमार श्री कृष्णानंद साहब (राज-बनैली, सुलतानगंज) रायबहादुर मुक्तेश्वर प्रसाद, एडभोकेट, भागलपुर, श्री राजाराम चन्द्र प्रसाद, एडभोकेट, पटना, श्री महाबीर प्रसाद बार-एट-लौ जस्टिस, पटना हाई कोर्ट, एवं स्वनामधन्य पंडित गौरी नाथ झा, काव्यतीर्थ, भूतपूर्व 'गंगा'-सम्पादक

पूज्य-प्रात; स्मर्णीय पिता श्री गुलाब नारायण सिंहा एडभोकेट जो *Indian Contract Act.* के लब्ध प्रतिष्ठित लेखक हैं, और जिनका वात्सल्य-प्रेम अनूठा है, श्री कृष्ण कुमार सिंहा, एम,ए०, भूत पूर्व प्रिंसिपल, देवघर साहित्य-विद्यापीठ, एवं श्री नंद कुमार सिंहा, (वकील बेगुसराय) के सनेह—सवल मुझे मिले हैं। मुझे अपने मित्रों ——श्री लक्खी प्रसाद वर्मा, श्री रामजी लाल, बी, ए, श्री रमेश चन्द्र, श्री गोविन्द, श्री राधेश्याम, श्री सूर्यनारायण एवं श्री सूर्य नारायण झा (रेडियो-सिंगर), श्री लक्ष्मेश्वर प्रसाद, भाई गंगा प्रसाद, श्री राम रूप बी ए, एवं श्री टायगरजी, और श्री चन्द्र मणि, श्री माया देवी, एवं श्री माधुरी देवी, श्री तेज नारायण झा, एवं श्रद्धेय मित्र तुल्य श्री शंकर झा जी, श्री बंदी बाबू, श्री भोलाबाबू, श्री मुनक्का बाबू, (मुन्दीचक) को धन्यवाद देना आवश्यक है।

बिशेष साँस्कृतिक —सौजन्य तो मुझे स्वनाम-धन्य श्री कैलास नाथ जी, "भ्रमर" जी के द्वारा प्राप्त हुआ है ——जो के प्रतिभाशाली, कर्मठ एवं हंसमुख व्यक्ति हैं, कला के मनोज्ञ-पारखी हैं, और जिन की कृपा से यह पुस्तक पाठकों के समक्ष है। मैं अभारी हुँ— गुरुदेव!

मेरी माँ मुझे आशीर्वाद देती रही हैं, अतः यह पुस्तक 'माता' के पूज्य—चरणों में ही शौभाग्यवश समर्पित की जाती है। माँ! मेरी माँ!!

सत चित आनन्द

— — —

१३-२-४८
सिंहा एड कम्पनी
मुन्दीचक, भागलपुर।

श्री अवध कुमार सिंहा "श्री कुमार"

माधवी-रसलतिका

प्रथम-परिच्छेद

———o———

और राजराघव ने पूछा—अमरकंटक ? राजपथ के 'मुक्तक-मार्ग' पर खड़े, दो-तीन प्राणी उसकी ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देख रहे थे। एक कौतूहल था। बरगद-की-डाली-सी लटकी-लटकी उसकी घनी-दाढ़ी, पैरों तक लटका हुआ ढीला-ढाला गोरोचन-सा कुरता, विद्युत सी उसकी आँखें उद्भासित-मुखमंडल की प्रतिभा, सौम्य-सांस्कृतिक-भावातिरेक, दर्शकों के लिए एक मनोरंजन प्रतीत हो रहा था। राजराघव दार्शनिक-भारत का सफल-चित्र ज्ञात होता था। किंतु, अमर-कंटक तो एक समस्या थी।

"रास्ता है, दो दिन का—किंतु पथ बड़ा बीहड़ है, घने जंगलों के बीच से पगदण्डी गई है। निशाती झरने के समीप ही अमरकंटक पड़ता है। विश्राम पहाड़ी रम्य है, सुरम्य है। किन्तु जाने का प्रयोजन ?"--एक पथिक ने पूछा! राजराघव चुप रहा। प्रयोजन—क्या प्रयोजन ? यात्रा क्या प्रयोजनहीन होती है; किन्तु अमरकंटक तो एक तीर्थ-यात्रा है, तो कौतूहल-भरी-जिज्ञासा से ये लोग क्यों देख रहे हैं।

चांदनी रात थी। ज्योत्स्ना में राजराघव का मन अभिसारिका की तरह भाग रहा था। उल्लास का विलास था। भावनाओं के भंवर में डग पर डग भरता जा रहा था। लगन लगी थी, अमरकंटक की।

लगन—साहसिकता के भाव नहीं, किंतु ओजस्विनी चेतना-शक्ति का संस्कार अवश्य है। लगन जब लगती है तो छूटती नहीं, जब कभी छूटती है तो लगती नहीं। लगन एक रहस्य है, अनुभूति नहीं।

अमरकंटक भी एक रहस्य था। उलझन एवं मनोरंजन था। नग्न-पद और कंटीली राह—और अविराम—गति से वह चलता जा रहा था। गति पुलकित थी, तीव्र भावनाएं पूर्ण-ज्वार पर थीं। नैनों में लगन की सलोनी छवि थी। वह थका कि न थका; चलता—चला। जवानी में कठिनाइयाँ—आकर्षक होती हैं, नित्य-नई-नई भावनाएं कुहराम मचाती हैं, सफलता पग-पग पर सजल एवं सफल मालूम होती। मोहक-विश्राम से चैतन्य—यौवन दूर भागता है। विलासिता जवानी नहीं, मस्ती-आरोहण अवश्य है।

निशाती की फुहारें-झिन-झिन-झर-झर रही थीं। विकल एवं सजल सौंदर्य था। प्रकृति के आंगन में यह रास-रंग देखकर राजराघव ठिठक गया। चिरंतन-सत्य की खोज में तीस वर्षों से रम रहा था। किंतु यौवन क्या गोरोचन-संस्कार से छिपाया जा सकता है? सागर-बुदबुदों को रोकने की क्षमता

पूर्णरूपेण किसे है? किन्तु, एक योगी—राजराघव सा, जो सांस्कृतिक-विलास में निरत रह चुका हो, कामनाओं का आत्मसात, शमन, एवं दंड-भेद का सूत्र समझ चुका हो, उसके समीप प्रकृति नग्न—सौंदर्य में आज क्यों खड़ी झलक पड़ी! ऊषा की रक्तिम—आभा थी। बाल-रवि ऊषा के अवगुंठन को निहार रहा था। पंछियों के कलरव, मधुमास—गुंजन,—चीं-चीं, पी-पी, कांय-कांय—ये जागरण के संकेत, सकल-मानव-प्राणी के लिए कर्मयोग की गीता के पाठ दुहराए जा रहे थे। राजराघव ने स्नान किया, जटाओं को धोए, और कमंडलु में निशाती के जल भरे। उधर बाल-रवि मुस्कारा उठा था, इधर ब्रह्मचर्य की लालिमा दमक उठी थी।

क्या यही निशाती झरना है, तो अमरकंटक अब तो निकट ही—सोच राघव ने डग आगे बढ़ाया।

पीछे से सहसा आवाज आई—रूकिए तो?

राज चौंका। नीरव—स्थान में कोयल की कूक कहाँ से आई?

राजा ने दृष्टि पीछे की ओर फेरी, तो देखा, पार्थिन-सौंदर्य की एक मूर्त्ति। मर्माहत-दृष्टि से वह देख रही थी।

एकरस—एकपलक—दृष्टि—समाधि पूर्ण चैतन्य थी। नैनों में जिज्ञासा की चिन्गारी थी, पलकें बाण—सी झुकीं-झुकीं, लता-सी मुड़ी हुई, काली-काली पुतलियों के मध्य एकाग्र थीं। दोनों कोमल हाथ नमस्कार के लिए प्रस्तुत थे। कुसुमीरंग की साड़ी

में, विरहिणी सी, भयभीत-सी हिरणी व्यग्र थी। क्या? विरह की मीरा तो नहीं—

राज ने जिज्ञासा से पूछाः—"खड़ी-खड़ी क्या ताक रही हो? कहाँ से आई हो? क्या प्रयोजन है? मैं योगी हूँ। विश्राम नहीं चाहता।"

युवती ने नमस्कार किए और बोलीः—"देख रही हूँ आपके श्यस्य—श्याम—ब्रह्मचर्य को, विलास-गृह से आई हूँ, प्रयोजन-मेरी आवश्यकता है।" एकस्वर में युवती बोल—डोल गई।

"किंतु, विलास-गृह से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। तेरी आवश्यकता मादकता है, निराकार—मनोरंजन नहीं। आवश्यकता, संक्रामक-रोग है, मानसिक—वेदना है, वासना है, विकल अनुराग है। आवश्यकताओं के गले घोंट दो। तंद्रा का मोह छोड़ दो—विलासिनी।"—

राजराघव ने चेतावनी के स्वर में कह डाला। योग की दीप—शिखा से जो यह वाणी निकली—विद्युत् सी युवती के हृदय में अगोचर हो गई। भावनाओं के बादल विचारों की ओट में छिप गए।

वह हिरणी-सी सहमी हुई खड़ी रही! और उल्लास के स्वर में राज बोल उठा— "और तुम्हारा नाम?"

आशा की किरणें युवती के श्वेत-लाल मुखमंडल पर दौड़ गई! वह पूर्ण उमंग से बोलीः—"माधवी रसलतिका! क्या आप आतिथ्य स्वीकार करेंगे? निकट ही विश्राम-पहाड़ी पर

मेरा विलास-गृह है।"

आकर्षण जब होता है, तो अचानक, विचारों की समाधि में नहीं! विचार साम्य ज्ञान है; मनोरंजन नहीं! आकर्षण मनोरंजन है, व्यक्ति की प्रतिभा है और अनायास हो जाया करता है! माधवी के कपोलों पर उल्लास थिरक रहा था। लालसा श्वेत-रतनार-मुखाभा पर नाच उठी थी! कामना-ज्वार में मनःसंज्ञाएं चैतन्य थीं। प्रतीक्षा की अधखुली पलकों से जवानी की किरणें फूट रही थीं! सम्यक् मानवीय-आकर्षण था।

तो राज के मुख से निकल पड़ा— "मुझे स्वीकार है। किंतु "अमरकंटक"?

रसलतिका के पूर्ण-सम्पूर्ण गालों पर लुनाई कुहासा-सी छा गई। वह विभोर थी, तपस्वी की पग-ध्वनि में— नैनों की नीलिमा में राज की प्रतिभा झलक उठी!

युवती और योगी— दुनियां की सड़कों पर चल रहे थे! दुनियां आश्चर्य करती थी। राज का मन थका पंछी की तरह विश्रांति के लिए उन्मुख था। विश्राम चाहने वाला शृंगार नहीं देखता। विलासी शृंगार देखते!

राज ने सोचा, यौवन का शृंगार कितना करुण होता है, किन्तु देखने में मादकता के सिवाय कुछ नहीं! फिर, ध्यान आया, नहीं, नारी शक्ति है, उसका योवन शृंगार नहीं, भूल भूलैया है, जिसका चक्र अनादि काल से घूमता आया है। तो

मन ने कहा, भूल कर रहे हो, यौवन विषम होता है, नारी, शांति है, यौवन पिपासा है।

हाँ, योगी का योग हंसा! राज अवाक रह गया। माधवी घंटे भर से योगी का मौनव्रत देख थक गई! चलते-चलते बातचीत का जो मनोरंजन होता है, माधवी वंचित रह गई। वह थिरक कर बोल उठी:—"ब्रह्मचारी! किस लोक में आप विचरण कर रहे? विचार-समाधि राह की गति नहीं! देखिए सूरज निकलता आ रहा है। तेजी बढ़ती जा रही है। पहाड़ की चोटी पर कैसी झिलमिल-झिलमिल आभा दौड़ लगा रही है।"

राज ने कहा:—"हाँ देख रहा हूं। दिनमान कर्मज्ञान की शिक्षा दे रहा। और तो, अधिक समझ में बात नहीं आती। आश्चर्य?"

यह कहकर योगी फिर ध्यान में डूब गया। माधवी के बाल बिखरे थे। केश-कलाप,-सघन मेघों की कज्जल-कालिमा में कमर-दलों के चारों ओर हिल-डोल रहा था। पग-पग पर अंगड़ाई थी। कमर की लोच में यौवन निहाल हो रहा था। यौवन में छवि झिलमिल कर रही। पग में उल्लास था, रवानी थी। यौवन के मधुर्य में माधवी रस लीन थी।

सम्पूर्ण-आनन्द किसी न किसी क्षण में अवश्य हो जाया करता है। यह आत्मा की एक झलक है, अविराम-विराम क्षणों की वाणी में विकल भावातिरेक ही आनन्द है। सम्पूर्ण

आनन्द तो एक जिज्ञासा है, मनोहारिता है, गरीब और धनी का विभेद यहाँ पहुँच कर कदापि नहीं होता। माधवी जो आ आनन्द अनुभव कर रही थी, वह एक तो काव्यानन्द था। एक यौवन-प्रफुल्ल-युवक अपनी योगसाधना में लीन क्यों? संसार के प्रति यह वीतराग कैसा? युवक-योगी तो पूर्ण रहस्य? माधवी सोचती रही, चलती रही। राज न आगे देखता और न पीछे, केवल चलना ही चलना—माधवी कुछ रुकी, कुछ यौवन के सहारे झुकी, किन्तु युवक के समझ में नहीं आया।

पगडंडियाँ कटती गई और प्रशस्त पथ आया। तप साधना से प्रदीप्त राज के अरुण-कपोल निष्काम एवं प्रशान्त थे। मस्ती थिरक रही थी, कामना का उद्वेलन तनिक भी न था।

कामना का उन्मेष–वासना की प्रच्छन्न छवि, है। कामना निर्विकार भी होती। क्या वासना पाप है? क्या यह, आत्म-रुझान नहीं? विचार-तरंग एक-एक उठती, फिर मिट जाती। माधवी की चंचलता हिरणी-सी दौड़ लगा रही थी।

माधवी की अवस्था क्या थी, हाँ, वीस से अधिक नहीं। रूप की गरिमा थी। यौवन छलछल-कलकल था। अमर-कंटक की नयन-तारिका होकर भी राज को आकर्षित न कर सकी, बड़े आश्चर्य की बात थी।

रूप-गर्विता नारी की ईर्ष्या बड़ी प्रचण्ड होती है। नारी का रूप पूर्ण सौन्दर्य नहीं, नारी स्वतः ही सौंदर्य है। नारी का

सौंदर्य उसकी जवानी की रवानी है, किन्तु, सम्यक्-सौंदर्य उसकी, उमा, रमा, शकुन्तला, श्री सीता, की मंगलमयी भावना है। नारी का सौंदर्य, पुरुष का पराजय है, एक मोहक-सम्मोहक मोह की विस्मृति है।

कई चार-वर्षों से माधवी का जीवन, काल के कराल थपेड़ों से छिन्न-भिन्न होता जा रहा है। जिधर देखती निराशा, जिधर झुकती खटका। न कोई परिवार, न कोई अपना कहने वाला।

परिवारिक-जीवन भी जीवन का एक शृङ्गार है। सौख्य-पूर्ण एक मंगल-रागिनी है। माता-पिता का दर्द माधवी न तो जानती, और न वात्सल्य-रस की अनुभूति और अनुभव उसे हुआ। विशाल सम्पत्ति की मलिका तो थी, किन्तु सम्पंत्ति ही क्या आत्म-रोचन कर सकती है? धन एक भाव है, उसकी आवश्यकता है। किन्तु, जीवन, जीवन का नाम नहीं। बचपन से ही जीवन की आवश्यकताएं पल-पल बढ़ती जाती हैं। आवश्यकताएं कभी नहीं थकतीं, जीवन भले ही थक जाए।

माधवी की, इन दिनों, हरि-भजन ही, एक आवश्यकता थी। हरि-भजन आत्मा की एक आवश्यकता और अवस्था अवश्य है, किंतु निष्काम जीवन भी यत्किंचित निष्कलंक नहीं होता। निष्कलंक-जीवन केवल एक ख्याल है। क्या किसी ने निष्कलंक-जीवन की झलक देखी? जीवन कभी भी सम्पूर्ण निष्कलंक नहीं होता। और यौवन की छवि? यौवन की छवि करुण एवं दयनीय होती है। और यौवन की लज्जा?

लज्जा जीवन का शृंगार है, नित्य-नवीन-यौवन है। यौवन की लज्जा कभी भी निष्काम एवं निश्छल नहीं होती। सिर्फ, छटा ही छटा है। ओस ढुलकना जानती है। संवरण-शक्ति यौवन नहीं परखता। कभी कभी कोई विचार भी एक स्वप्न-मात्र ही होता। माधवी का यह स्वप्न मनोविकार था।

धीरज का प्याला छलक उठा और वह बोली—"देखिए, मेरा विलास-गृह, आप करीब-करीब पहुँच गए। सूरज भी उग्र होता जा रहा है। किन्तु, आप तो चुप हैं?"

राज ने नजर उठाई। अरे यह क्या? लोग मुझे देख-कर हंस रहे हैं। फिर भी मुसाफिरों की दृष्टियां एकटक क्यों हैं? क्या अमरकंटक मेरी साधुता से खिन्न हो उठा है? नहीं, नहीं, बिल्कुल नहीं। लम्बी जटाएं एवं घनी दाढ़ी तो कहीं उपहासात्मक नहीं? किंतु, माधवी तो मुझे देख नहीं हंसी थी। किनका, किसका विश्वास करूँ। क्या तीस वर्ष का जंगली-जानवर हूँ? क्या युवक की तपश्चर्या दुनियां वालों को पसंद नहीं?

योगी उपहास से डरता है, तप का अहम-भाव तार-तार हो उठते। विचारों का कुहराम मचा। राज विचलित हो उठा। सहसा, कानों में एक ध्वनि आई और समा गई।

"देखो, जवानी में भभूत लगाए, यह युवक जीवन का सौंदर्य नष्ट कर रहा है। जरा जटाएँ तो देखो, मानो डाल पर उल्लू। और आया है अमरकंटक? विलासगृह की स्वा-

मिनी को तो देखो, कितनी मन मार पीछे-पीछे चल रही है।" एक मुसाफिर अपने साथियों से कह रहा था।

राज ने इन बातों को सुना। मन में ग्लानि की हिलोरें आईं। यौवन क्या तप का विषय नहीं? संसार की क्षण-भंगुरता का ध्यान सांसारियों को नहीं? क्या मैं मूर्ख था, जीवन के तीस साल कठोर तपस्या में वीते? मानसिक आन्दोलन के सजीव-चित्र आजतक राज ने कभी अनुभव नहीं किए। किंतु, आज मानसिक-क्रांति का जो क्षोभ, जो निराशा हुई, राज ने कुछ सोचा और कुछ भूल गया।

विलास-गृह क्या था?

गृह था विशाल, स्वर्ण-जटित गुम्मज, दीवारों पर नग्न, अर्द्धनग्न युवतियों की चित्रकारियाँ, झलमल, झिलमिल धरातल, श्वेत—संगमर्मर की जगह-जगह पच्चीकारियां दीवारों पर, धरातल पर, सम्मोहक चित्रकला वलियां। दूरी से देखने पर एक विशाल—मंदिर मालूम पड़ता था, निकट से, एक विलास-गृह छटा ही छटा थी। परकोट की बांई ओर एक छोटा सा पुष्कर था, नवीन—कोमल पंकजावलियां इधर थीं, उधर थीं। विलास-गृह के अंतराह्म में छहरती निर्झरणियां, किनारे-किनारे रंग-बिरंगे फूलों की न्यारियां। प्रकृतिक के सौंदर्य की आंशिक छटा सर्वत्र व्याप्त थी। और यही माधवी का निवास-निकुंज था।

और राज ने पूछा:—'इतने विलास महल में तुम अकेली

रहती हो ? सचमुच में, तुम्हारा विलास-गृह गम्भीर एवं भव्य है ।'

"नहीं, मैं अकेली नहीं रहती, मेरे साथ पांच कुमारी—परिचारिकाएं भी हैं । और माधवी ने पुकारा—सुलेखा !

दौड़ आई सुलेखा, पूर्ण आह्लाद में, कि उठी भौंरे की निगाहें:—

सुलेखा की जवानी—ज्योत्स्ना सम्यक् थी, निष्काम, निष्कलंक थी । अंग उभार पर था, तिरछी भौंहें अनजान-प्रतीक्षा में झुकी थीं । कलियाँ इधर चटकीं, उधर चटकीं । आँखें मस्ती में बेसुध थीं ।

"आज तो बड़ी देर लगी । पूजा की सामग्री ज्यों की त्यों पड़ी है । वीणा बिखरी पड़ी है । हम लोगों का मन नहीं लग रहा था । और ये ?"— सुलेखा ने सजग हो कहा ।

हाँ, सुलेखा ! आज प्राण- वल्लभ की पूजा में विलम्ब तो हुआ, हाँ, प्रियवासकी से कहो इन्हें विश्राम-कक्ष में ले जाए । मैं अभी ही पूजा करूगी । हाँ, इन्हें किसी बात की न्यूनता न खल जाए, तुम भी ध्यान रखना ।" ज्यों ही सुलेखा बढ़ी कि माधवी ने फिर पुकारा । "हाँ, सुनती जाओ । मंगल-घट तो इनके लिए जलपूर्ण है ? जरा देखकर आओ तो ?"—

माधवी के हृदय में हर्षातिरेक की लहरी उठ रही थी । हर्ष के अतिरेक में भावनाएं चंचल हो उठती हैं, आह्लाद में जीवन, सजीव जीवन हो जाता है ।

"नहीं, मैं विलास-कक्ष में अभी विश्राम नहीं करना चाहता। जाओ, तुम अपनी पूजा देखो।"—राज ने कहा। थके को विश्राम चाहिए। मैं आपको विलास-कक्ष ले चलती हूँ। पूजा का हर समय होता है। "न्यूनता खलती है, नवीनता झलकती है"—माधवी ने पूर्ण अनुभूति से कहा।

राज विलास-कक्ष में पहुँचा। समृद्धि की सामग्रियों से सारा कमरा झलमल था। स्वर्ण-कलश पर आम की दो-चार टहनियां मंगल-कामना की ओर तटस्थ थीं। विश्राम के सभी परिधान—भूमि पर रंग-चितरंगीन कालीन, शुभ्र-झलझल तकिए, रजत्-पीकदान, झिलमिलाती वीणा, जगह-जगह अनेक वाद्य-यंत्र—खिड़की खोलते ही झरने का विहंगम्-दृश्य् नूतन, अभिनव एवं पूर्ण सजग प्रतीत होते थे। इधर विलास-कक्ष में राज पहुँचा और इधर पूजा-मन्दिर में माधवी की वीणा निखर पड़ी। वीणा की स्वर-लहरियां तार-तार बोल उठीं। भक्ति-आवेग की वेदनामयी रागिनी झंकृत हुई। आत्मा और अहम् का पूर्ण विश्लेषण हुआ। अहम् भागा, आत्मा अनवरत संगीत-प्रयास से सजग हो उठी। संगीत की विलक्षण तन्मयता में माधवी की गोरी-नन्हीं अंगुलियां वीणा के तारों पर नाच उठीं कि तार ही बजने को आतुर हो उठे। श्रीकृष्णचन्द्र की मूर्त्ति के समीप करुण-वेदना की जो समग्र अनुभूतियां उपस्थित हुईं,। पूजा-मंदिर गूंज उठा। एक युवती का आत्म-समर्पण, एक सगुण-उपासना का मोहक गान राज के लिए नूतन और

विलक्षण प्रतीत हुआ। राज हिरण-गति से विलास-कक्ष से भागा और पूजा-मंदिर की देहली पर खड़ा-खड़ा कभी तो श्वेत-संगमर्मर की हरिमूर्त्ति को और देखता, तो कभी माधवी की तन्मयता को हृदयंगम् करता। चितवन ठौर-ठौर भागती फिरती। चैन नहीं, विश्राम नहीं। X

आज राज ने देखा तन्मय यौवन, विमुग्ध नारी का सम्मोहक सौंदर्य, सगुण-भक्ति की विलासिता, अहम् एवं अविनाशी का अनमिल-मिलन, प्रेम-संयम्, अनुभूति का विरल उद्रेक।

स्वर-लहरियां रह-रह कानों में पहुँचतीं, और विमुग्ध-चित्रवत् राज खड़ा का खड़ा ही रहा। सहसा एक ध्वनि माधवी के कानों में पहुँची।

—"इस सगुण-तन्मयता को बंद करो। निर्गुण-उपासना का अट्टहास रोक दो। रागिनी बुझा दो!"—

—"तो नृत्य की तन्मयता देखिए। निर्गुण-भावना सम्यक् अनुभूति-चित्र नहीं। निर्गुण, गम्भीर कार्य-कलाप भले ही हो, सफल-सजल-आवेदन चित्र कदापि नहीं। किस उन्माद में भूल पड़े हो योगी!" —राज उत्तर न दे सका। नृत्य का समारंभ व्यग्र हुआ! नाच उठी माधवी, नूपुरों की कलकल, अनुभूतियों की अनंग-अंग-अंग उछाल, कामना-पूंज यौवन, उरोजों की प्रगाढ़ काम-साधना में माधवी लवलीन हो उठी। तन्मयता आई, बेहोशी भागी।

पंकज-चरण-दल अरुण हो उठे। नयनों की इंगित विपुल भाव-राशि छलछला उठी! अंग-तापमान को अंग-अंग की विकसिता जवानी ने आत्म-विभोर कर दिया। भावों की तड़प-दिव्य-अंगों की विरह-वेदना में खिलखिला उठी! अंग-अंग में नई मस्ती थी। नये-नये भावानुकूल संदेश थे। चिकुर-जाल में जवानी उलझ रही थी। नारी की प्रफुल्ल जवानी-समाधि पर अद्भुत मोहक-रूप-राशि खिलखिला उठी थी! नृत्य, भावानुकूल अगो की उछाल है। विरह तथा उल्लास की पृष्ठ-भूमि में, यौवन का निष्काम आवेदन है। नारी की मोहनी-छटा, कमनीय-रति का उद्वेलन उसकी पार्थिव रूप-छवि में नहीं, वरन नृत्य के आत्मिक-संस्कार में अवश्य है। नारी का रूप जवानी नहीं, जवानी ही रूप की संज्ञा है। स्वलित यौवन नृत्य में वासतिक छटा नहीं ला सकता। नृत्य, यौवन-संयम है, विकसित-ज्योत्स्ना की एक फूट है।

माधवी नृत्य कर रही थी! राज अचंभित हो रहा था। रागिनी एवं नृत्य की जो प्रतिमा राज ने देखी, एक विचित्र अनुभव हुआ, एक नया संदेश मिला। फिर भी, राज अवाक् रहा। यह नवीन-विचित्रता उसे खल उठी। उसका अहम्-भाव कुछ काल के लिए विलीन हुआ। नारी-सौंदर्य की तीव्र-अनुभूति आज तो, जाग उठी। योग की साधना में इतना आनंद उसे न मिला था, आज आनन्द तो न मिला, हाँ, आनन्द की अनुभूति अवश्य हुई!

आनन्द होना, दुस्तर था। फिर भी वातावरण रंगीन नितांत प्रतीत हुआ। वातावरण तभी रंगीन मालूम होता है जब हृदय में कामनाएं जाग उठती हैं, महालस की तंद्रा में मन नाच उठता है। मनोरंजन तो राज को हुआ, किन्तु विचारों की क्रांति मच गई। सगुण-उपासना में क्या इतनी सजीवता है? क्या इतनी भावुकता के बाद उपासना सिद्ध होती है? युवती की रूप-छटा पर भक्ति की यह भाव-भंगिमा मानवीयता का चरम उद्देश्य था। माधवी की पूजा समाप्त हुई और वह धीरे-धीरे विलास-कक्ष की ओर चली! राज अपनी साधना में लीन था। आंखें खुली थीं, फिर भी भावनाओं के स्पन्दन से मुखमंडल सजग था। सरल आंखों से माधवी ने राज को देखा। गम्भीर रही और विलास-कक्ष से निकलना ही चाहती थी कि राज ने पुकारा:—'माधवी।' लौट गई।

"क्षमा करें, आपकी समाधि मेरी आहट से भंग-भंग हो गई।"

"नहीं तो—" राज ने उत्तर दिया।

"लेकिन, देख तो रही हूँ"

"हाँ, नारी तपस्या क्या, सारे विश्व में विप्लव सृजन कर सकती है। नारी के लावण्य में लवलीन हो मेरी इन्द्रियां साधनाओं से विमुख हो उठी हैं। यह लावण्य, ज्योत्स्नात्सी कमनीयता में आत्म-विभोर क्यों हैं?

राज ने पूछा।

"भूल करते योगी! लावण्य एक भ्रम है, मृगतृष्णा है। रूप मोह है, और यौवन-एक उन्माद। किंतु, लावण्य से भय-भीत होना कायरता है। योगी तो कायर नहीं होते? आप व्यग्र क्यों हैं?

माधवी का उत्तर एक कटु-सत्य की भांति अप्रिय तो राज को अवश्य लगा, किंतु, पिंजड़े का पंछी अपनी स्वतंत्रता खो बैठा था। एक बार फिर माधवी की रूप-छटा को जी-भर देखा, देखता रहा, पर कामनाएं बढ़ती ही गईं।

नारी की रूप-छटा से कामनाएं जागरूक हो, उद्दाम हो जाती हैं और आकर्षण धीरे-धीरे लिप्साओं में परिणत हो जाता है।

क्या लिप्साएं, कामुकता नहीं? फिर क्या है? नारी का यौवन कपोलों पर तो करुणा, पर बाहर से एक मस्ती ही मस्ती है। आंखें आशाएं बरसाती हैं, और अंग-अंग उभार की अंगड़ाई लेता है।

राज की विचार-मालिका टूटी, टूटती रही, और रमणी ने पूछा—"क्या अभीतक सोच रहे?"—अरी, ओ सुलेखा, स्वर्ण-थाल में भोजन की सामग्री तो ले आओ।" किन्तु तत्परता का प्रयोजन? "आतिथ्य-सत्कार क्या मानवता का प्रयोजन नहीं? भारत का यह सत्य क्या कभी भ्रम में भटक सकता है?"—माधवी ये बातें तो बोल गई, पर योगी की गंम्भीर-मुद्रा के सामने सक्ति की भांति अजेय रही।

उधर से खनखनाती हुई, सुलेखा, स्वर्ण-थाली में कुछ फल रख गई, फिर नक्काशी किए दो गिलास रखे, एक में जल, और दूसरे में दूध—

योगी ने आज वैभव और नारी पर एक विहंगम दृष्टि डाली। संसार कितना सुनहला दीख पड़ा। किन्तु, मृगतृष्णा की यह दौड़ कितनी लम्बी? योगी चौंक पड़ा।

"हाँ सत्य भी कभी-कभी भ्रम में भटक सकता है। भ्रम के बाद ही तो वास्तविक सत्य प्राप्त हो सकता है। वैभव और नारी ये दोनों विष हैं, और मैं विष-पान नहीं करना चाहता।" योगी ने अपने विचार प्रकट किए।

"किन्तु, विष-पान ही तो एक बड़ी शक्ति है। जब पुरुष की शक्ति वैभव और नारी से भयभीत हो सकती है, तो 'नारी' की शक्ति किस दामन में अपना मुंह छिपायेगी? निर्भय पुरुष 'ॐ' को छोड़ कर और भी किसी शक्ति से भय खा सकता है, यह तो मैंने आज ही, आपके मुख से सुनी। आश्चर्य?"

"भूल कर रही हो, माधवी। वैभव और यौवन के समय कोई भी निर्भय नहीं रह सकता! खटका तो लगा ही रहता है। गम्भीरता का निर्भय, निर्मम भले ही हो, पर उसे अहम् समझना भी तो एक भूल ही है। गम्भीर ही निर्भय हो सकता है। चंचल यौवन और बहता वैभव—क्षण का प्रमाद, विलासिता की भूख, मानवीय-प्यास की लम्बी भूमिका है।"

यौवन चंचल भले ही हो, किन्तु, उम्र की एक आवश्यकता भी तो है। यौवन का हरसिंगार तो केशर-काया की एक अनुभूति है। मुरझाए फूलों से तो उपासना नहीं होती। यौवन की विदग्धता भी एक आकांक्षा है। आकांक्षा ही आवश्यकताएं सजग कर देती हैं।

यौवन की सभी आवश्यकताएं पाप हैं, आकांक्षा, निष्करूण दुर्गुण है। द्रौपदी—चीर की तरह इच्छाएं बढ़ती ही जाती हैं, अंत तो काया की विभीषिका है। यौवन का अंत कठोर निराशा है।

भोजन समाप्त हुआ। विलास-कक्ष में राज को अकेला छोड़, माधवी विश्राम-कक्ष में चली गई। भोजन-सामग्री लेकर, प्रियवासकी और सुलेखा, ये दो युवतियाँ, खड़ी खड़ी स्वामिनी की ओर देखती रहीं। स्वामिनी की ध्यान-मालिका आहट पाकर भी न टूटी। खुली और बिखरी केश-राशि, आंखें एकटक दीवाल की ओर लगी हुई, गम्भीर-मुद्रा-में, माधवी की एकाकी, इन दोनों के लिए एक सचित्र अनुभव था।

यौवन की चंचलताएं विकल हो उठी थीं, और अंग-अंग कंटकित। वैभव का सुख माधवी को अवश्य था, यौवन का पूर्ण उद्रेक, आज, नारी का पिपासित हो उठा था, संतोष न था, प्यास बढ़ती ही जा रही थी। योगी का ब्रह्मचर्य, आकर्षण-शक्ति का गौरव, माधवी के लिए नूतन उत्कंठा थी।

यौवन और विशाल-सम्पत्ति पाकर भी वह खुश न थी। पूर्ण मुखरित-यौवन उत्कंठित हो पुरुष-कामना की ओर दौड़ लगा रही थी। स्फुट मस्ती, चपल आंखें हरिभजन में निमग्न न हो सकी। अंग अंग का आवेदन एक अद्भुत अनुभव हो चला था।

पुरुष-सम्मिलन से दूर रहने की इच्छा तीस बर्षों से मनन करती जा रही थी, फिर भी राज की प्रतिभा के सामने नारी की महती कल्पना सांसारिक यथार्थता में परिणत हुई जा रही थी। आज अपने को युवती समझ बैठी। राज भी युवक था। योगी-एक पहेली ?

माधवी के रूप की प्रशंसा- संस्कृत नारी के रूप में, अमर-कंटक के लोगों के लिए एक प्रतिष्ठा की बात थी। लोग आश्चर्य करते-उसके चरित्र-संगठन पर—जब कभी हरि-भजन और नृत्य तल्लीनता देखते तो मीरा-बाई की याद हो आती। पर, राज के मुंह से प्रशंसा के शब्द न निकले तो उसका आत्म-सम्मान कुंठित हो उठा। शेरनी की तरह झुंझलाई। क्या साधारण-शृंगार राज को न भाया ? पुरुष शृंगार के लोभी होते। परम-सुन्दरी की माया योगी पर न चली, न सही; फिर भी योगी तो एक पुरूष ही है। कामनाऐं क्या कभी शांत होती है ?

सुलेखा खड़ी-खड़ी स्वामिनी के मनोविज्ञान का अध्ययन कर रही थी। अम्लान छवि पर यह अमावस्या कहाँ से छाई ? भोजन जहाँ का तहाँ पड़ा रहा।

"सुलेखा, मेरा शृंगार तो करो।" सुलेखा, यह सुनकर आश्चर्यित और स्तंभित हो गई। स्वामिनी कहा करती थी, "देखो सुलेखा, शृंगार कामनाओं को उन्मत्त कर देती है। यौवन-संवरण की क्षमता दूर हो जाती है। पुरुष का भौंरा मंडराने लगता है।" ये चार साल पहले की बात अभी तक सुलेखा के कानों में गूंज रही थी। किन्तु, आज, यह अनायास परिवर्त्तन? क्या नारी के धैर्य का प्याला छलक उठा? कितने विचार प्रश्न बनकर सुलेखा के सामने आए, फिर भी वह मौन रही। एक कौतूहल—

माधवी ने एक दृष्टि भोजन की ओर डाली, नीरस ही नीरस, जल थोड़ा पीकर फिर मौन पड़ गई।

सुलेखा और प्रियवासकी शृंगार का सामान लेकर आई। शृंगार आरंभ हुआ। काले-काले केशों की दो लटें कमर की ओट में छिप गईं। सघन केश-राशि के मध्य का स्थान रिक्त रहा, मांग सूनी रही। मुख में उबटन लगे। रेशमी केशों पर सुवासित तेल डाले गए। आंखों में आंजन लगे। पर मांग सूनी तो जीवन रूखा! वर्षों से रखे हुए शृंगार-दान खोलते ही स्वर्ण की छोटी सी डिब्बिया नजर आई। सुलेखा ने देखा तो सिंदूर भरा था।

सिंदूर की डिब्बिया देखते ही माधवी घबड़ाई।

आंसू छलके, फिर गम्भीर-मुद्रा। सिंदूर की डिब्बी रख दो, सुलेखा! मेरे सिन्दूर के दिन अब आने को नहीं। तुम व्यर्थ परिश्रम करती हो।"

सुलेखा ने सिंदूर की डिब्बी को फिर ज्यों की त्यों रख दिया। स्वामिनी की आँखों में आंसू आज पहली बार देखे। धानी रंग की साड़ी माधवी ने पहनी, रेशम की चोली झिलमिला उठी, उसमें जड़े रत्नों की आत्मा से सारा कक्ष उद्भासित हो उठा। विकल यौवन, चोली की ओट से, विकस कर निखर उठा। हिरणी-सी चंचल आँखें दर्पण की ओर भागीं। सौंदर्य का अहम् जाग उठा। जवानी का दर्पण धोखा तो नहीं? अंग-अंग के उभारों को मोदमयी दृष्टि से माधवी देख रही थी! अंग-अंग की खिली जवानी थी। निष्काम मुख-मंडल पर भोला यौवन, अनजान पथिक की तरह ठिठक उठा था। करुण-उद्दीपन छिपा-छिपा, अन्यमनस्क हो चुका था। आज वसंत-उद्दीपन के संचार से अंग-अंग सिहर उठा। आँखें लज्जा से झुक गईं। कपोल रक्तिम हो गए। पूर्ण शृंगार कर माधवी चली। पैरों में उल्लास, दिल में धड़कन लिए विलास-कक्ष में पहुँची। राज अपनी तपस्या में लीन था। उन्नत रूप पर शांत-भाव खिल-खेल रहा था। नुपुर की कमनीय-कांत वातावरण में राज की तपस्या भावनाओं से कभी-कभी आक्रांत हो उठती, फिर भी, इच्छाओं का अतिरेक, न तो तीव्र होता, और न इन्द्रियां विचलित होतीं।

कुछ आहट हुई, और टूट गई योगी की शांत-भावना।

एक तो यौवन का वसंत, फिर शृंगार का किंशुक, दोनों झिलमिल और सरस उद्दीपन— आंखें खुल गईं। शृंगार की

नवीनता का अनुभव प्रथम-प्रथम योगी को हुआ। यौवन से बढ़कर शृंगार इतना विराट क्यों है? ओह, शृंगार कमनीयता नहीं, कितनी कल्पित् मोह-भरी रात्रि है। क्या शृंगार वासना प्रस्तुत करती? योगी ने नारी के शृङ्गार का अट्टहास किया। शृङ्गार का विनाश-रौद्र रूप, फिर भी एक आकर्षण क्यों?

"इस नई-नई छवि के लिए, धन्यवाद!"— उसके मुख से निकले।

माधवी ठिठक गई। केवल धन्यवाद! न तो रूप की प्रशंसा और न हृदय के मुक्त-उद्गार। नारी रूप की प्रशंसा चाहती है।

नारी—शृंगार से यौवन, उद्दाम होता और वासना की लहरियां विकल कर देतीं। किन्तु, योगी विचलित न हुआ, बड़े आश्चर्य की बात? माधवी की नारी का अहंकार-भाव तिरोहित हो गया! रूप में यौवन छिपा और शृंगार खिलकर मौन हुआ। पर, इच्छाएं दौड़ मारती रह गईं। नारी का अपमान, एक सम्यक्-विभीषिका तो न हुई।

संध्या हो चली थी। पंछी लौटे घोंसले की ओर, पूर्ण प्रसन्नता लिए, पर, माधवी खड़ी रही, मानो, प्रभात-सन्देश सुनाने बड़ी तत्परता से आई हो। योगी की आंखें खुलतीं और रह-रह कर बन्द होती रहीं।

सहसा, बड़ेजोरों की घंटों की आवाज आई। और, राज ने चौंककर पूछा— "क्या नजदीक कोई मन्दिर तो नहीं?"

"है तो, भानुमति-मन्दिर—लेकिन, मुझे मतलब ?" माधवी ने रोष-भर कर कहा।

नारी के क्रोध में ऐसी करुण-कमनीयता देख राज का मन व्यग्र हो उठा। मानवीयता के यथोचित् गुणोवगुण की मीमांसा उसने कभी न की थी। मानवता के कोमल-भाव योग की ज्वाला में भस्मीभूत हो चुके थे। क्षणभंगुरता, निराशा, जीवन का मनोमालिन्य, ये ही तीन ज्ञान-चक्षु में समाए थे। योगी के समीप निराशा ही सत्य, आशा ही भ्रम, और इच्छाएं ही सांसारिक-विपद्-जाल की श्रृंखला प्रतीत होती है। यदि संसार सुन्दर है, तो ये मृत्यु, जीवन का निष्करुण अन्त क्यों है ? रूप, यौवन, श्रृंगार, अहम्, ये सभी स्मशान के मार्मिक-पक्ष क्यों हैं ? ओह नारी से दूर भागना मूर्खता तो नहीं ? किंतु, यौवन का अन्त एक विषाद-पूर्ण बूढ़ापा है। जवानी हिरणी-सी भागती है तो जीवन हल्का पड़ जाता है।

योगी सोचता रहा, मन ही मन। आत्म-संगीत सुनने की लालसा से वह योग-मार्ग की ओर झुका था, किन्तु, न तो सत्य हाथ आया और न योग की महिमा का पूर्ण विश्लेषण कर सका। इच्छाओं को रोके, किन्तु, आत्म-दर्शन, तो अभी तक न हुआ। जीवन का असफल योगी भानुमति-मंदिर का नाम सुनकर, उसे कोई घटनाएं याद आईं। समय-चक्र के कारण घटनाएं विस्मृति के अवगुन्ठन में छिप गई थीं, अचानक याद आई, शंकाएं भी जाग उठीं। खड़ी क्यों हो, माधवी ! आओ,

मृग-छाला पर बैठो तो सही। मेरे पास मृग-छाला के सिवा और हो ही क्या सकता? मेरे भी कभी तुम्हारी तरह सलोने दिन थे, चांदी-सी रातें थीं। वैभव, कुछ न पूछो, अटूट। किन्तु, आज, सभी सपने की परिभाषाएं हैं, और मैं चलता फिरता मुसाफिर हूं, आज कहां, और कल कहां। अपनी परिछाईं का मूल-स्वरूप देखना चाहता हूं, पता नहीं, कब तक मंजिल पहुंचूंगा। हां, भानुमति-मंदिर क्या तुम मेरे साथ चल सकती हो? यह मंदिर बहुत पुराना है क्या?

योगी के हृदय में करुण-भाव जाग उठे थे। योगी का रूच-हृदय मानवीय-अनुभूतियों से ओत-प्रोत हो रहा था।

और, मृग-छाला पर बैठी माधवी योगी की भाव-भंगिमाओं का अध्ययन कर रही थी। भानुमति-मंदिर की ओर योगी की जिज्ञासा देख, संवेदन के स्वर में माधवी के कंठ खुले।

"हां, २० वर्ष तो, इस मन्दिर के बने हो चुके। वह तो अपना नाम अमर कर गई।"

"वह कौन?" राज ने जिज्ञासा के स्वर में पूछा।

"भानुमति। सुनती हूं, एक वेश्या थी। संगीत में प्रवीण थी। एक पुत्र भी था, बारह वर्ष की अवस्था से ही लड़के का पता नहीं चलता। हताश होकर, लाखों की सम्पत्ति मन्दिर को दान दे, पुत्र-शोक में बेचारी मर गई। कहने को तो एक वेश्या थी, फिर भी पापाचार से दूर, संगीत-लय में निरत रहती थी। देश-विदेश के राजे-महराजे, सेठ-साहूकार राज-फाटक की ओर

लालायित रहते थे। नंदन-नगरी की, वह तो एक आदर्श थी। आज भी राज-फाठक अतीत के स्वप्नों में विभोर है। मरते समय उसके मुख पर पुत्र का ही नाम रहा। उस समय मन्दिर-निर्माण-कार्य पूरा नहीं हुआ था, एक बार अधूरे मन्दिर में ही हरिकीर्त्तन में आत्म-विभोर हो मतवाली मीरा सी नाची थी। राज-फाटक के भीतर एक मौलसिरी के वृक्ष के निकट ही समाधि-स्थान अभीतक ज्यों का त्यों है। मौलाना मिर्जा अशरफ़ राज-फाटक की देख-रेख करते हैं। सुना है, वे बड़े सज्जन हैं।"

माधवी सारी बातें यों कह रही थी, मानो घटनाओं से पूर्ण-परिचित हो। कहानी सुन्दर थी, पर थी अधूरी। राज को ऐसा लगा कि वह अपने जीवन की ही कथा सुन रहा, स्मृति के पट खुले, धुंधली-सी कई बातें याद आईं, फिर भी चुप रहा। उत्कंठा बढ़ती गई।

"राज-फाटक यहाँ से कितनी दूरी पर है?" राज ने बड़ी उत्कंठा से पूछा।

"क्या आप वहाँ जाना चाहते हैं? वह तो कोई रमणीक-स्थान नहीं, अब तो वह स्थान पापाचार का केन्द्र हो गया है। फिर, आप योगी।" माधवी ने उत्तर दिया।

फिर भी, न जाने क्यों, मुझे राज-फाटक देखने की प्रबल उत्कंठा हो रही है। पाप कहाँ नहीं। क्या मन्दिरों में पाप नहीं होते? हमारी भावनाएं ही पाप के कारण हैं। पाप से बचने का यह अर्थ नहीं कि पाप शब्द से ही घृणा करने लगें।

पाप आंखों से देखा जाता है, आफवाहों से ही सुना जाता है। फिर, पाप से घृणा क्या, परिस्थितियाँ ही पाप के मूल-कारण हैं। पाप से डरना एक भीरूता है।

हाँ, तो राज-फाटक कितनी दूरी पर है ?

"देखिये, संध्या का अंधकार छाया जा रहा है। मन्दिर भी जाना है न ? ये बातें, फिर कल के लिए भी रख छोड़ें। अरी ओ सुलेखा, स्वर्ण-खड़ाऊँ तो ले आ। आरती का समय हो रहा है।"

सुलेखा खड़ाऊँ ले आई। राज ने देखा, लक्ष्मी का विकृत रूप, माधवी का सौजन्य।

"मुझे खड़ाऊँ की तनिक भी आवश्यकता नहीं, योगी के खाली पैर नहीं थकते। मैं ऐश्वर्य का अभिलाषी नहीं।"—राज ने कहा।

"कंटीली राह है, कांटे चुभ जाने की संभावना है। इसीलिए मैं कहती हूँ, मेरी बात तो मानें। हठ करना भी अहंकार है।"

माधवी की इन बातों के सामने योगी की वाक्य-चातुरी न चली। उसने खड़ाउँ पहन ली। माधवी की जीत हुई।

"ओह, आपके पैर कितने कोमल हैं। अरुण-रत्नावलि से भी सौम्य।" "नारी कोमल-विषयों से ही अधिक प्रेम रखती है। मेरा पैर, और कोमल। आश्चर्य ?"

"योगी संसार को चकित-दृष्टि से देखता है।" और भोगी········ ?"

"और भोगी, मोहभरी-दृष्टि से"—राज ने माधवी के अधूरे वाक्य जोड़ दिए।

सुलेखा आरती-थाल ले आई। दीपों से थाल जगमग था। हवा से लोटती-पोटती दीप-शिखाएं चंचल हो उठी थीं। दीपों के स्निग्ध-प्रकाश में सुलेखा और प्रियवासकी को हरी-हरी साड़ी झलमला उठी थी। मुख-मंडल पर जवानी खेल रही थी। उम्र झलक उठी थी। और माधवी के कोमल-कपोलों पर लालिमा कभी खिलती, कभी छटकती, और ओझल हो जाती।

आगे-आगे राज, पीछे माधवी और पीछे-पीछे सुलेखा और प्रियवासकी। कौन सी सनातन-शक्ति खींच रही थी कि ये लोग मंदिर की ओर जा रहे थे? राज का मन तो राज-फाटक की ओर लगा। चलना जानता था, चल रहा था। शांत प्रकृति, और शांत-बुद्धि, न कोलाहल और न भीड़भाड़—पथ सुरक्षित।

क्या शांत-बुद्धि धर्म का मापदंड नहीं?

शांत रहा वातावरण, चुप रहे ये चारों।

अचानक सुलेखा बोल उठी—"कल ही तो वसंतपूर्णिमा है। रास-लीला तो कल ही से होगी। सुना है मृदुला भी रास में भाग लेगी। उसके पिताजी ने अनुमति कैसे दी?"

झटाक राज ने पूछा— तो क्या रास-लीला भी भानुमति मंदिर में होती है? मंदिर और रास लीला! बड़ी अनूठी बात है।"

माधवी चुप थी। राज की बात सुनते ही, बोल उठी—"रास-लीला का नाम सुनकर आप घबड़ाते क्यों हैं? कल तो रास में मृदुला ही गोपी बनेगी। कृष्ण तो आप रहेंगे। मैं तो निराश हूं।"

देखिए, सामने ही शिव-मंदिर दीख पड़ता है। एक स्त्री शिवजी सामने हाथ-जोड़े खड़ी। मुख से कुछ पटपटा रही। स्त्री रो रही। आंसू कपोलों पर टपटपा रहे! आंखें बन्द। जवानी छलक चुकी। ढल रही। यौवन अपराधी की भांति खड़ा रहा। ढलमल यौवन निष्काम हुआ। दीप की ज्योतियों के बीच खड़ी-खड़ी शिवजी से न जाने किस समय से, कुछ कह रही थी, पता नहीं, कितने समय बीते।

राज इसी स्त्री के समीप आकर खड़ा हो गया। स्त्री का रोना जितना प्रभाव डालता है, उतनी शायद, गुरु की गुरुता नहीं। रोना मर्म छू लेता है। सहृदयता आ जाती है। कपट का रोना हंसना है, दिल का रोना ही अपना है। रोता खींच लेता है, यों तो, चलने वाले; चल ही देते हैं।

यह स्त्री रो रही थी—पीड़ा के कारण। कौन सी पीड़ा? निराशा की पीड़ा तो नहीं? निराशा की पीड़ा जितनी विदग्ध कर देती है, जितनी आत्म-हत्या कर सकती है; जितनी दर्द-भरी चोट दे सकती है, उतनी, शायद; न तो बिच्छू के डंक, और न फांसी की तख्ती। फिर भी, न जाने क्यों; कभी निरांशा, उद्दाम आशा हो जाती है।

"हाँ, रास भी क्या लीला है। कहने को तो सुन्दर, पर, पाप भीतर ही भीतर। भक्ति का यह शृंगार इसीलिए तो सुन्दर है। नाचो, गाओ, खुशियाँ मनाओ, सभी करो, पर अपने को न भूल जाओ। लीला से आत्मा भय खाती है।" राज ने कहा।

"आप तो भावुक ही बने रहते। जरा, दुनियां को सोचते भी हैं?" माधवी बोली।

"अति भावुकता बुरी है, पर, मैं भावुक नहीं योगी हूँ; तुम्हें यह न भूलना चाहिए। राज की ये बातें तीर थी, लगी और माधवी चुप सी रह गयी।

मंदिर की झलक सामने आई। दीपों से सारा मंदिर जगमग था। दीप-शिखाओं से संगमर्मर की दीवारें झलमला उठी थीं। रंग-विरंग की ज्योति मुखर उठी थी। मन्दिर के द्वार पर एक बड़ा-सा घंटा लगा था। टन-टन की आवाज गूंज रही थीं। कई आ रहे थे, कई जा रहे थे। मंदिर में लोग यों पैर धर रहे थे, मानो चोरी करते समय शांत-भाव से पैर रख रहे हों। कुछ आहट हुई, और उस स्त्री का ध्यान राज की ओर झुका। अरे, यह क्या? युवक-योगी, असंभव।

योगी, कवि, लेखक, गायक की प्रशंसा तो लोग खूब करते। किन्तु, लक्ष्मी, भावनाओं का शृंगार नहीं देख सकती।

उस स्त्री ने राज को देखा तो सही, कुछ बातें मुख से नि- नारी को थीं ही कि—क्यों कंचन-काया को योग की ' देवता भी

झुलसाए जा रहे हो? संसार क्या इतना सूना दीख पड़ता? संसार से विरक्ति तो 'आदमी' की एक बड़ी हार है, व्यक्ति की हार तो सबसे पहले।

लेकिन, ये बातें मुख से न निकली और स्त्री चुप की चुप ही रही। ब्रह्मचर्य से स्त्री पछाड़ खाती है। क्योंकि यह रूप-रस है।

ध्यान की लहरी जब चंचल हो उठती है, तो मन कभी इधर भागता है, तो कभी उधर। मन की गति को रोकना, हवा की विधि नहीं। हवा कभी रूक-सी जाती है। मन चलता ही रहता है।

राज स्त्री को, ढुलकते आंसू को, देख रहा था। मांग में सिन्दूर दिनमान था। उषा की मधुर चितवन थी। विवाहिता-ऊषा, मांग से झांक रही थी। जड़ो की साड़ी पहने थी। गले में मोती के हार, हाथ में रत्न-जटित सोने का कंगना—ढलती जवानी का शृंगार सुन्दर था। नारी, यौवन के बाद भी इठलाती ही रहती। यदि, पुत्र-रत्न पा लेती है। यौवन का दावा अधिकार में मिल जाता है। यौवन की अधीरता थिरक कर, शांति के लिए उन्मुख होती है। अधीरता जवानी समझती है। पीछे, उपहास का व्यंग ही प्रतीत होता है।

जवानी का यह व्यंग-चित्र योगी के लिए नूतन था। राज और ॰॰ के आंसू देखे थे। धन मिलने पर भी निराशा होती उद्दाम आश।

हाँ, धन एक भाव है, और निराशा है—एक अनुभव। स्त्री अनुभव कर रही थी—अपनी निरर्थक जवानी को। यौवन का पराग टूट चुका था—केवल प्यास रह गयी थी। यौवन प्यास नहीं, अतिरेक है। वासना अतिरेक भी है, और प्यास भी।

फिर भी स्त्री गर्मी की दोपहरी-सी उदास थी। न उल्लास, न तो खुशियां। आत्म-ग्लानि के भार से दबती जा रही थी।

वह सोच रही थी—अपने अंधकारमय भविष्य को। सुहागिन होकर भी, पति का प्यार उभंख प्रतीत होता था। उसके कानों में न जाने पति के ये शब्द बेर-बेर कुहराम मचा रहे थे। पति की झिड़कियां, धीरज की खिड़कियों से बेरोक-ठोक लू सी चली आ रही थी। कलेजा टूक-टूक हो चुका था। उसे आश्चर्य हो रहा था, पति के मुंह से ये शब्द कैसे निकल पड़े।

वे एक दिन बोले:— "देखो माधुरी, मैं दूसरा विवाह कर रहा हूँ। तुम्हें दुख तो अवश्य होगा, पर मैं क्या करूँ, लाचार हूं। बीस वर्ष व्यतीत हो चुके, संतान हुई तक नहीं। बंजर-मरुस्थल की मृगतृष्णा में मैं अब भटकना नहीं चाहता। इधर, मेरी सम्पत्ति छाती तान खड़ी है, उधर तुम अमावस्या-सी मायूस और मनहूस हो खड़ी हो। हठ जाओ, मुझे तुम्हारी छाया से भी नफरत है। मैं उदासीन बनना नहीं चाहता।"

माधुरी के मन में आया कि वह भी खरी-खोटी कुछ सुना दे। लज्जा के कारण अबला, सबला नहीं हो सकती। नारी का अबला-रूप जितना निर्दोष है, उतने निर्दोष हमारे देवता भी

नहीं। जी में आया कि कह दें कि जरा, अपनी सूरत तो देखिए, उजली मूंछों में जवानी किधर भाग छिपी है। नस-नस ढीली पड़ती जा रही है। झुर्रियां पड़ती जा रही हैं, फिर भी विलासिता नहीं भागी? जवानी को बाजारों में खाली कर, घर में अफसोस करने बैठे हो। तो भी, संतान न होने का दोष मुझे दे रहे हो। यौवन को खिलवाड़ समझते हो, फिर भी, योग्य-संतान की इच्छा रखते। मानती हूँ, सोने-चांदी, हीरे, पुखराज, नीमल, मूंगे, और पन्ने के बड़े सौदागर हो, करोड़ों की सम्पति है, लेकिन नारी वैभव से बढ़ कर पुरुष को चाहती है। बचपन में मेरी शादी हुई, उस समय सुनती हूं कि आप की अवस्था पैंतिस साल की थी। उस समय मैं पाँच साल की थी। विकसते फूल को मसल दिया। दया न आई। आज संतान नहीं तो झिड़ेकियां देते समय शर्म नहीं आती। तुम सेठ कहलाते हो। एक क्या, पचासों शादियां रचा सकते हो।

नारि दुःख सहना जानती है,। पर, अपमान सहना मेरे लिए कठिन ज्ञात होता है। पुरुष इतना बेदर्द होता है। रस चूस लेना ही क्या; पुरुष का पुरुषार्थ है? लज्जाशीला नारी पुरुष के इशारे पर चलती है। यही लज्जा का अभिशाप है। संतान की लालसा जितनी मुझे है, उतनीं आप को नहीं। गुस्से में 'तुम' 'तुम्हारा' अपने को संचित कर 'वे' 'आप बोलने की भावना जागती। विचारों की नहीं, भावनाओं की लहरियां एक के बाद एक आतीं, जातीं। क्रांति मची थी, माधुरी की

मुख-मुद्राओं में। बदलती-बदलती उदासी की निर्मम-अवस्था में परिणत हो जाती है। हृदय में क्रोध का विकार विकल हो उठा था। नारी अपने विषम-क्रोध को लज्जा के दामन में छिपाने की कोशिश रखती है, किन्तु, क्रोध, वासना, पापाचार, और जवानी छिपाए नहीं छिपती। प्यार छिपाया जा सकता है, वासना रूक कर भी चंचल हो उठती है। छिपाना बड़ा दुस्तर है। छिपी हुई लज्जा, जीती-जागती हुई याद किसी न किसी दशा में बिल्कुल नग्न हो जाती है।

'मंदिर में आकर भी संसार साथ ही लगा रहता'— राज माधुरी की मुख-मुद्राओं के अनेक रूपों का अध्ययन कर इसी निष्कर्ष पर पहुँचा। उसने सोचा कि मनसा-देवी शांत रहना नहीं चाहती। दयालु-भगवान तो है, फिर भी दया की उसकी अपनी पद्धति है। दया की भीख अकर्मण्यता है। आलसियों को भगवान भी साथ नहीं देता। कर्म से उदासीन रहनेवाला भविष्य का स्वर्ण-विहान नहीं देख सकता। किए चलो, यह न सोचो कि सफलता कि मंजिल दूर है देवताओं की अनुकम्पा से कार्य सिद्ध हो सकता है, यदि आस्था पूर्ण विश्वास के साथ हो। भारतीय—आत्म-ऐक्य का संदेश बुद्ध, शंकर, कबीर, रस-खान, सूर, आदि की वाणी पूर्णतः मिल चुका है।

माधुरी की आत्मा रो थी। आत्मा का रुदन भयंकर होता है। आत्मा अहिंसा का एक मात्र है, और पूर्ण आत्म-समर्पण निराशा की घड़ियों में ही होता। नारी का रुदन जितना करुण

होता, उतना पतझड़ के रूखे पत्ते भी नहीं होते। पतझड़ से हम भय खाते और नारी के रूदन से तो आत्म-हत्या तक हत्-भाग्य कर लेते।

माधुरी का चेहरा उदास था, ठीक उसी तरह जिस तरह एक भिखारी-बालक अवाक् ताकता रह जाता— अरे, यह क्या रोटी के टुकड़े चील झपट-छीन ले गए।

वह बालक तो अवाक् रहता, अपनी नादानी पर। किन्तु, माधुरी के चेहरे में जो हवाइयां उड़ रही थी, कारण तो उसकी नादानी नहीं।

ओह, ईश्वर का न्याय इतना निर्मम एवं कठोर क्यां है? माधुरी ने सोचा, आज उसे एक बच्चा होता तो, वह भी पति की राजदुलारी होती। ओह, पुरुष कितना कठोर है? अपना मतलब पुरुष तो निकालना खूब जानते। जवानी लूट गई, क्यों? नारी का सौंदर्य, आत्मा का अहंकार है। रूप, जवानी की विहंगम-दृष्टि है। आज मैंने समझा, नारी, पुरुष का भोजन है। क्या संसार के सारे पुरुष मर गए— मेरी असहायता पर किसी को तरस नहीं आती? यह तो नारी का बड़ा दुर्भाग्य है कि वे पुरुष के प्रेम में सकुचा जाती हैं, मुख से बोल नहीं सकतीं, टुकुर-टुकुर पुरुष-जाल में फंसती, डूबती रह जातीं। अक्षत-यौवन बड़ी निर्दयता से दूषित हो जाता। पुरुष का हृदय नील-आकाश है, जहां से शंकाओं के बादल, वासना की रिमझिम, लिप्साओं की बून्दें, छा जाते, पड़ जाती, और टपक पड़ती।

अपमान नारी का नग्न-सौंदर्य है। विलासिता की कोटि में नारी का सौंदर्य-अहंकार छिप-सा जाता है। अहम् की अंगड़ाई देखनी हो तो वेश्या की चपल-आंखों में देखिए, विधवाओं की सुकुमार-आशाओं में देखिए, नंगी तलवारों में देखिए या योगी के ज्ञान में देखिए। माधुरी का अहम् उसे पतन की ओर ले जाने को प्रस्तुत हो उठा था। जीवन-धन जिसे कहा करती, वही आज बेगाना बना हुआ है। कौन कहता, मुझे रूप नहीं। कौन कहता मेरी जवानी मुरझा गई। कौन कहता, उरोजो की उभार लता सी झुक गई। कौन कहता, भौंरे मुझ पर नहीं रीझ सकते। कौन कहता, मैं नागिन-सी डंस लूंगी। कौन कहता, इस जीवन से तो वेश्या की रुपहरी नजाकत ही अच्छी।

वेश्या नहीं ! नहीं !! समाज के साथ अत्याचार न करो। कहाँ से इतनी बुरी भावना आई ?

घटना और भावना अपने-आप नहीं आती परिस्थितियां घटना उपस्थित करती। भावना तो तरंग है, घटना को बहाकर कहाँ ले जायगी, पता नहीं। घटना वातावरण की दासी है। दुनियाँ का नाम कहीं घटना ही तो नहीं। घटना सत्य होती है और भावना परोक्ष।

मन के चक्कर में माधुरी फंसती जा रही थी। मन्दिर में केवल अभी दो थे। एक माधुरी, दूसरा योगी। राज माधुरी की ओर देखता-देखता थक गया।

अचानक थपेड़ों-सी चोट लगी। "खड़े-खड़े क्या देख रहे

हो? नारी की ओर आंखें फाड़-फाड़ कर देखना कहाँ का इन्साफ है? साधु के भेष में आत्मा का अपमान क्यों कर रहे। तुम भी मेरी असहायता पर हंस लो। जटाएं रखते हो, फिर भी तुम पुरुष हो। क्या यही तुम्हारा पुरुषार्थ है? यह कहकर माधुरी योगी के सम्मुख हुई और बोलती रही! "योगी आत्म-कल्याण कर सकता है, यह मैं मानती हूं। मेरा कल्याण तुम कर सकते हो। मैं अभागिन हूं, मुझे संतान नहीं! मैं धनी-मानी जीवन-धन की पत्नी हूं। आंखें फाड़-फाड़ कर क्या देख रहे हो? कह दो, सुहाग-अखंड रहे तुम्हारा। इसके सिवा तुम कर भी क्या सकते हो? अरे, तुम क्या समझो, सुहाग पाकर भी नारी प्रसन्न नहीं हो सकती। तुमतो योगी हो, अरे नहीं, साधु। माधुरी यह कहकर कुछ रुकी, विषाद की गहराई में बोली:—"मुझे पति निकाल रहा है। उन्हें विश्वास है, विलास-गृह की स्वामिनी से विवाह करने पर संतान की अवश्य प्राप्ति होगी।"

माधवी का उल्लेख पाकर राज चौंका। मानो, मृत्यु की घड़ी ही आ पहुँची। योगमाया में भटक रहे हो? देखो, सामने बड़ी ही खाई है। गिर न पड़ना। माधवी का यही आकर्षण तुम्हारे विलास का कारण होगा। कंचन को देख तुम्हारी सादगी, किधर, भूल रही है। उसे कंचन नहीं, कंचन-काया कहो। किसे, माधवी को? रूप पर रीझे हो, उसके भीतर पैठने की कोशिश कभी की है? अचानक देखा, अचानक

रीझा। हाँ, उसका विलास-गृह है, सम्पत्ति उसके पैरों चूमती है। वैभव के नृत्य में उसको जवानी झूम-झूम रही है। क्या झूमते चले जाते हो, जरा झुक कर देखो तो सही, कितना बड़ा रोड़ा है। रोड़े से चोट खाने के बजाय रोड़े को रास्ते से हटा देना ही तुम्हारा प्रथम-कर्त्तव्य होना चाहिए। जवानी कुस-बिकुल कर जब झड़ जायेगी तो, हाथ मलते-मलते रह जाओगे। अभी सबेरा है, डेरा कुच कर दो। आगे मंजिल झिलमिला रही है। आगे क्या है, किसी ने देखा है। मंजिल है या अंजुमन हैं, विश्राम है या आना-जाना है। आगे अन्धकार है, या आत्मा की सुनहली डोर है। आगे क्या दिखावा है। आगे देखते हो, पीछे की सूधी नहीं लेते। और फिर किसने-धोखा दिया? आत्मा और परमात्मा के चक्कर में क्या खोया-सा रहता। जीवन की रंगीनी देख, और देख तेरा, कायाकल्प हो जायेगा। शबनम की ढुल ढुल को देख, मिलजा—सूरज की किरणों में। चाट जा सारी ओसों को। है, इतनी शक्ति तुममें? तुम एक स्त्री की तरह है। जो दुनिया से अपना मुंह छिपाती है और मन ही मन इच्छाओं को तड़पाती है। तुम भी तो विनाशी है; फिर इतना संयम क्यों? योगी अविनाशी है क्या? प्रकृति तुम्हें बुढ़ापा देगी ही, फिर मन को क्यों रोके खड़ा है? तुम्हारी प्रकृति अभी जवानी की है, और यह जान कर भी, प्रकृति के साथ अन्याय कर रहा है? प्रकृति के साथ अन्याय करने पर तो तांडव ही तांडव है। जवानी को, जटाओं में गंगा की तरह

छिपाए बैठा है। गंगा भी गिरी थी। कहाँ? इसी दुनियां में। जवानी रोके रुक नहीं सकती, पावस में मेढ़क रुक नहीं सकता। गायक रोए बिना रह भी नहीं सकता। चंचल-नदियां किनारे को तोड़े बिना रह भी नहीं सकती। कवि कोलाहल में रुक भी नहीं सकता। जन-रव जीवन के साथ घूमता है। जन-रव को आनाकानी कर तुम आगे बढ़ भी नहीं सकते। जन-रव इसीलिए तुम्हारा साथ नहीं देता, तुम्हें तुच्छ समझता है। लोक-कल्याण का आदर्श योगी नहीं हो सकता। दुनियां में आए हो, कुछ जौहर तो दिखा दो। आदर्श को यथार्थ बना दिखा दो। कल्पना आदर्श नहीं हो सकती। आदर्श कुछ नहीं, केवल प्रत्यक्ष-भाव-मात्र है।

अंध-विश्वास के कारण योग-मार्ग तुम्हारा आदर्श हो रहा है। जरा, अपनी चढ़ती-बोलती जवानी को देखो तो सही, एक बालक की तरह लज्जा से आंचल में अपना मुंह छिपाए है। शिशुता छोड़ो, तुम्हारी साधुता तो, दूसरी शिशुता है। मस्ती का हलाहल पीओ। रंगीन-शराब में डूब जाओ। देखो, समुद्र में सूरज भी डूबता नजर आता है। सत्य कहाँ तक, यह तुम आप ही समझ लो। पीछे न कहना, चेतनाओं ने धोखा दिया। गला फाड़-फड़ कर न चिल्लाना कि मैं ने पाप किया है। सुन कर मुग्ध अवश्य होंगे, फिर क्षण-क्षण घृणा भी करने लगेंगे। और, समाज का कटु और कठोर नियम बन जायेगा। स्वप्न की लहरें लेता मनुष्य अपने को जगा ही समझता है। कभी-

कभी विलक्षण-चेतनाएं सपने में ही आती-जाती हैं। हाँ, भांग पी लेने से भावुकता नहीं आ सकती, एकाग्र चेतना ही भावुकता है। रूप, गुण, जवानी, निराशा, मस्ती, मृत्यु की चेतना ही कविता, संगीत, वेणु-वीणा, और कला है। इन बातों को समझ लो। हंस लो, बिना धोखा का भी कहीं धोका होता है। आशा की आश बड़ी लम्बी होती है। निराशा का नैराश्य बड़ा घना होता है। आशा के तरंगों को यौवन की फुहारों में देखो, कितना साफ नजर आता है। आंखों से जवानी ढूढ़ते हो, बिलकुल गलत तरीका है। रूप में जवानी की झलक देखो, अंग-तपमान में वासना। रंगीन झरोखों से कंचन-काया निहारो। फिर, न जाने बुद्धि की थपेड़ लगीं। थपेड़ों से साहस आया। अरे, मिट्टी के कारणों को नहीं देखता। बड़ी गीली मिट्टी है।

अचानक संज्ञा आई। शांति ! शांति ॥

कहो। कहने में डर, मालूम होता है, क्या ? फिर मन का वातावरण बोला। सुनो, परिस्थितियों के साथ दो। परिस्थिति किसी की दासी नहीं, भले ही इसके अधीन भगवान भी हो। पापी भगवान को पुकारता है, आत्मा की पुकार सुनता तक नहीं।

फिर वही आत्मा और परमात्मा की बकवाद शुरु कर दी। प्रवृत्ति बोली। चेतना की नैया इच्छा के मझधार में फंसी थी। कामनाएं डूबती-उतराती थीं। जिधर देखो, भूल भूलैया की नगरी ही पड़ी थी। सजीले दृश्य, ठगा कर भी ठक-ठक रह जाए, और आत्मा को धोखा ही देता रह जाए। यह तो,

मानवीय-न्याय नहीं। याद रहे, संस्कार क्षीन होता जाता है। कहाँ आन फँसे हो, योगी? राज घवड़ा गया। निश्चित न कर सका, ये मन की भावनाएं थीं या विचार का भ्रम था। क्या-क्या फिजूल की बातें सोचता रहता, पागल हो गया है क्या?

समय उतना सुन्दर नहीं होता जितना वातावरण। समय तो स्वतः सुन्दर और विरुद्ध है। वातावरण अधीर न हो तो संसार से पाप का नाम ही उठ जाये।

मन के विकार में जब चेतना घूम कर लौटी, तो राज ने सोचा, स्त्री को क्या उत्तर दे साहस कर बोल उठा:— "हाँ, मैं योगी हूं। पति के द्वार आर निकाली जा रहीं हैं? विचित्र संसार! साहस न छोड़िए, सिंदूर की लाज रखिए। अपमान की शांति चाहिए। आत्मा का अहिंसा-व्रत धारण कीजिए। इच्छा और अपमान से ऊँचा उठने का प्रयत्न कीजिए। संसार के सारे पुरुष नहीं मरे। मैं योगी भी हूं और पुरुष भी। पुरुषार्थ की मुझे आकांक्षा है। जब स्त्रियाँ इतनी अधीर हो जायेंगी, तो पुरुष का क्या हवाल होगा। निराश न हूजिए, ठोकर खाकर ही आदमी, आदमी बनता है। भावनाओं का शमन सीखिए। आपकी चिनगी दूर नहीं।"

राज इतना कह कर चुप गया, यह सोचकर कि कोई मेरी गलतियों को क्षमा तो नहीं कर रहा।

माधुरी ने पैनी आँखों से राज को देख लिया। शिव-

मंदिर में भीड़ जमा हो रही थी, किधर समा गई, पता नहीं।

भीड़ जमती-जमती जम गई। कोई शिव-मंदिर की ओर फुखरा, कोई मुरली मनोहर की कमनीय-कांत झलमल में विखित हो गया। राज ने कई धक्के भी खाए। भगवान् श्री कृष्ण के मन्दिर की ओर बढ़ा? माधवी किधर चली गई, माधुरी की धुन में राज ने सोचा, सब कुछ भूल गया। एक के साथ न्याय, तो दूसरे के अन्याय- कितनी भोली बात है। भीड़ की परवाह न कर दो-तीन बार जोरों से आवाज लगाई— माधवी! माधवी!! रात बढ़ती जा रही है, घर चलना है न? प्रश्न ज्वाला की तरह उठे। यकायक जोरों से धक्का आया, और विपुल भाव-राशि में डुबा हुआ राज घसकता-घसकता मंदिर के फाटक तक पहुंच गया। भक्ति इतनी अधिर होती है कि धक्का भी मार देती है। बड़ी उत्कंठा की यह पुकार संम्पूर्ण भीड़ को चेतना नहीं दे सकी, कुछ लोगों का ध्यान योगी की ओर आकर्षित हुआ।

योगी के लिए यही सबसे बड़ी सफलता थी। राज को देखकर कई मन चले हंसे। वाह री दाढ़ी, नहीं जटाएँ, दुनियाँ को धोखा देने की सबसे अच्छी तरकीब। एक दूसरे के कानों में कह रहा था। एक बड़ा विचित्र तमाशा देहात के मेले में आया था। कनफूसकियों से अफवाह फैलती हैं। लोग मुझे देखकर क्यों हंस रहे हैं?

क्या मेरी सूरत भद्दी है? तो, फिर माधवी मुझ पर क्यों

रीझी ? जटाओं से क्या ? नहीं, नहीं मेरी सूरत पर। राज के मन में आया कि हंसने वालों का गला घोंट दूं। विचारों में डूबा ही रहा कि एक बूढ़िया सामने से हो गुजरी, कुछ ही डेग के बाद रुकी। बूढ़िया की कमर पतझड़ की डार-सी झुकी हुई थी। सफेद साड़ी, साफ दुपट्टे, सफेद चांदी की दो-चार चूड़ियां, सफेद भूट्टे की रेशों की तरह तिरमिराए बालू-से अलग-अलग बिखरे केश, अंग-अंग में मकड़ी के जाल-सी बिछी झुर्रियां—बूढ़िया की रूप-रेखा थी। धारा की तरह सटती हुई, धीरे-धीरे राज की ओर लौटी आ रही थी। राज ने देखा तो सही, पर वह चौकन्ना होकर चंचल-आंखों से माधवी का बाट जोह रहा था। नैन अधीर थे और नीलिमा प्रतीक्षा में थी। और, राज ने फिर आवाज़ दी। जनता की अपार भीड़ और कोलाहल में सत्य और निष्काम आवाज भी किधर जा छिप जाती, राज के लिए पूर्ण रहस्य ही रहा। बूढ़िया सम्मुख आई। राज के पहले दाहिने हाथ छूए, फिर बांयें और छाती तक अपने दोनों हाथों को लगाती हुई बोली:—

"किसकी खोज में हो ?— बेटा।"

इतनी भीड़ में माधवी तुम्हें नहीं मिल सकती। जरा, मेरी ओर देखो।

क्या मेरी सूरत भद्दी है ? घुटने के बल चलती हूं। जवानी में हर फूल सुन्दर है। बोलते क्यों नहीं। सर उठा-उठा क्या देख रहे हो ? थाती को जटाएं घेर रही है। मुझे सुझता नहीं,

रोशनी भी धीरे-धीरे धीरज छोड़ रही है। अच्छा बेटा, अब जाती हूँ ?"

राज के मन में आया कि कह दे आप को किसने बुलाया। जो आते, उपदेश ही झाड़ देते। पागलपन के बिना होश की दवा क्या है ? लेकिन—

वह कह नहीं सका। सोचता-सोचता रहा।

बूढ़िया धीरे-धीरे इस तरह चली जा रही थी कि मानो गर्मी से बचने के लिए कोई टहनियों की छाया खोज रहा हो।

इतने में किसी ने कहा:— "यह कूटनी, अभी तक— मंदिर में भी, अपने व्यापार छोड़ने से बाज नहीं आती। कितने घरों को बरबाद और तबाह कर भी चैन नहीं लेती।"

यह सुन दूसरे ने कहा:— "जानते नहीं, भाई यह भी राज-फाटक में रहती थी। सुना है, मिर्जा अशरफ ने इसे निकाल बाहर कर दिया है। अब तो दर-दर मांगती चलती है।"

राज-फाटक का नाम सुनकर राज भयभीत हो गया। बूढ़िया चली जा रही थी— मन्दिर के फाटक से दूर हटती हुई। एक-बार फिर बुढ़िया ने उलट कर देखा। राज उसकी ओर दयनीय-दृष्टि से देख रहा था। बछड़े मां की ओर देखते, उसी दशा में, कि ग्वाला एक भी बून्द दूध छोड़ने को तैयार नहीं।

इतिहास की घटनाओं के कुछ पन्ने राज के सामने आ-आ कर खुल जाते, फिर भी विस्मृति का झरोखा बंद ही बंद रहा। कुछ याद, कुछ घृणा, कुछ अवसाद, फिर विचार, और बाद क्रांति।

राज का चित्त उद्विग्न हो उठा। मनुष्य के हृदय में चाहे जितनी भी चिन्ताएं घर करती हैं, फिर भी परिस्थितियों के बीच अपने को परदा डालकर ही वह चलना चाहता है। लोग उसकी दयनीय-दशा न देख लें इस विचार में मनुष्य जितना सतर्क रहता है, उतना सतर्क, शायद, वेश्या के घर घुसते समय भी नहीं। यही सोच, राज मौन रहा। कपट के झरोखों को बंद कर दिया। फिर, घूंघट की आड़ में जवानी की आड़ में जवानी की शमा देखता रह गया। माधवी का कुछ उत्तर न पा, वह मंदिर के विशाल फाटक से दूर हो गया।

क्या नारी का आतिथ्य-सत्कार इतने थोड़े समय के लिए है? राज ने पीछे उलट कर देखा— गजगामिनी चली आ रही थी। साहस न हुआ कि दूर से पुकारे, लेकिन वह तो विल्कुल नजदीक होती आ रही है, धीरज का प्याला छूट पड़ा। और, उसने पुकारा:--

"माधवी! अरी ओ सुलेखा, प्रियवासकी तुम भी नहीं सुनती।"

किन्तु, कोई उत्तर नहीं। रात की जवानी बढ़ती जा रही थी। घोर अन्धेरा, और पथ का ज्ञान सिर्फ— भरोसा। मेरी आंखें कहीं कहीं धोखा तो नहीं खा रहीं। भ्रम मस्ती में तो नहीं, अपने को भूल रहा। अंधकार में तो लोग धोखा खाते, यह तो कोई अजनबी वात नहीं। ओह, अन्धेरे में मुझे दूर की सूझी। यदि वह माधवी होती, तो अवश्य उत्तर देती। अंधेरा

है तो क्या, मनुष्य अपने को भी पहचान नहीं सकता।

फिर—

योगी का पूर्व-संस्कार काम कर रहा था। भूल करते योगी, अंधकार में, अपने को तो क्या, भगवान को भी भूल बैठता। कौन ? "मैं"

तो—

ऊफ़, माधवी कितनी सुन्दर है और तू कितना कुरूप है। जरा, आईने में अपनी सूरत देख। झाड़ियों की तरह ये जटाएं, तुम्हारे रुप को, तुम्हारी जवानी को, कितना छिपा रही है।

और हम—

वादल की घूँघट में चांद को निकलते कितना सुन्दर, कितना अभिनव देखते हैं।

यह भी—

तुम्हारा मनोविकार है।

नारी की मदिरा का पान करने पर, बच क्या जाता है—मृत्यु और कर्म। क्या मैं मृत्यु को जीत सकता हूँ, क्या मैं अमृत-पान कर अजेय और अनादि हो सकता हूँ, मूर्ख ! महामूर्ख !! भाग्य पर भरोसा करता है, क्या ? भगवान का सत् चित् आनन्द क्रमशः सौंदर्य और भाग्य, भावना और भूख, ज्योति और तरंग के निर्विकार रूपों में कभी चमकता, कभी धोखा देता, कभी सहायता देती, कभी आशा के अवरोध के वाद निराशा का स्वांग रच देता। समझ ले।

तू माधवी से क्या आशा करता है? मेरी आवाज तो सुन "मैं" कह-कह कर किधर भाग रहा है—राज। पलभर की जान-पहचान वाले से तू तो इतना ममत्व और सहृदयता दिखला रहा है, अपने पुराने साथी को भूल बैठा है। शून्य से कोई हंसा और निर्विकार चेतना फिर मौन हो गयी।

राज का हृदय धड़क रहा था। चल रहा था—राह पर, कि कोई दुल्हन अपने अज्ञात-प्रियतम से पहली बार हौले-हौले हौसला बांध आँखों से पैरों की गति देख रही हो। भविष्य सुन्दर होगा या कोलाहल—पता नहीं। नियति की डोर उतनी सुनहली नहीं, जितनी तुम समझते हो। यह दुनियां है, योगी! यहाँ जितनी अच्छी बातें हैं वे उतनी ही बुरी हैं। माधवी स्वयं सज्जन है, किन्तु, उसका रूप, उसकी जवानी, उसका वैभव, नागिन की फूंफकार से भी बढ़कर भयावह, निर्मम, एवं धोखा है। दुनियां देखने में जितनी भोली और नादान है, उसका अनुभव उतना ही कटु, तीखा, फिर भी चटपटा है। अनुराग को लोग प्रेम कहते हैं, किन्तु, प्रेम के नाम पर मरने वाले कितने हैं। प्रेम करते हो, तो मरकर दिखा दो। जीना चाहते हो, तो प्रेम करना छोड़ दो। जिन्दगी में परिश्रम का मूल्य भले ही ठुकरा दिया गया हो, किन्तु एक न एक दिन पैसों की खनखन में, जीने वाले की मिहनत उतनी नंगी नहीं प्रतीत होगी, जितनी होगी, जितनी कभी हुई थी और आज भी हो रही है। दुनियां के वास्तविक योगी बनो। पैसों की धूमधाम में अपने परिश्रमयोग

को, आंधियाँ सह कर भी, उसी तरह ठीक रखो, जितनी एक माता अपने पुत्र के लिए रखती है।

धर्म का पक्ष सुन्दर होता है, तो दुनियां का पक्ष मार्मिक। धर्म को व्यवहारिक क्षेत्र में लाने की क्षमता प्रायः किसी में नहीं। चाहे महात्मा बुद्ध हो, चाहे ईसामसीह। समझे, राज! नाना प्रकार की भावनाएं राजराघव के मन में चक्कर काट रही थीं। अंधेरी रात। भयावनी भावनाएं। भक्ति के स्वांग जो तुम मंदिरों, मस्जिदों या तत्काल माधवी के नाच-गान में देख रहो, देख लो बड़ी खुशी से—किन्तु, तुम्हारी आंखें चकाचौंध न हो जाएं, इसी का डर तो मुझे है। मंदिर बनाकर लोगों को ठगना चाहते हो। स्वर्ग और नरक की कल्पना कर तुम पाप और पैसे को आबाद रखना चाहते हो। स्वर्ग और नरक की तस्वीर जो तुमने खींच रखी है:— ओह, कितने अनजान कितने नादान धोखा खा-खा कर चले गए—वे विचारे! वे अभागे॥ हर मन्दिर-मस्जिद पाप की चिन्गारी पर खड़े, आँखों में धूल झोंक रहे। इसकी खबर किसे है?

राज ने सोचा, ये तो मन के विकार हैं, और मन के सारे विकार एकान्त-पाकर तिलमिला उठते, ठीक, अंधा भी तिल मिला उठता है, जब धनीमानी 'परिश्रम की शिक्षा' देकर आप वो झोपड़ी का तमाशा देखने लिए अपने को दरकिनारे कर लेते हैं। अंधे हो, भीख कोई नहीं देता। दुनियां ही तुमने ऐसी बना रखी है कि ठोकरें खा-खा कर भी तुम्हारी नींद नहीं टूटती।

जटाएं उखाड़ फेंक दो। गेरुआ-रंग छोड़ दुनियां का शराबी-रंग पकड़ो। भानुमति तुम्हारी कौन थी? कुछ याद भी है या अमृत देख कर जहर पीना छोड़ दिया है। अथवा, ये सारी बातें दिमागी फतूर तो नहीं?

रास्ते के दोनों किनारों पर पेड़ों की कतारें सिपाहियों की तरह खड़ी थीं कि कहीं कोई क्रांतिकारी भाग तो नहीं रहा। अन्धकार में पेड़ों का इस तरह पहरा देना, वह भी मीठी हवा के झोकों के साथ-साथ, मन के तरंगों को और भी वहका देना नहीं तो और क्या है? राज सोचने लगा। मंदिर आते समय तो इतनी देरी नहीं लगी थी, लौटते समय इतनी देरी क्यों हो रही? रास्ता भूल गया। हिम्मत बांध वह चलता ही रहा। विलास-गृह, मन्दिर से इतनी दूर तो नहीं। अच्छा होता मंदिर के द्वार पर ही खड़ा रहता और माधवी के साथ-साथ ही चला आता। फिर, सारा मंदिर खोजा, न तो, माधवी मिली न सुलेखा और न प्रियवासकी। ये चले कहाँ गए? कोई गुप्त-राह तो नहीं। मैं अतिथि हूँ, माधवी से पूछ कर आना चाहिए था। वह क्या समझेगी—पुरुष का भरोसा! बालू की भीत!! नहीं, वह ऐसी नहीं। विदुषी है। भावुक है। नारी है। सहृदय है। उसके गीत, कितने सुन्दर। कितने विश्छल!!

और रूप?

मेरी जिज्ञासा है।

तो जवानी ?

उसकी रसलतिका है।

और झुक्का गई तो—धोखा है। निराशा है !! युवकों की हाय-हाय है। नहीं ! नहीं !! उसको जवानी विकल है, यह कोन सी धारा, चट्टानों से टकराना चाहती है। टकराने दो। आप ही संभल जायेगी। मैं नहीं तो क्या, अनेकों पड़े हैं। और उसकी आंखें—प्रतीक्षा की है, दूर से दिखाई देने वाली, सुन्दर जुगूनियों से भी सुन्दर-अति सुन्दर। मस्ती में डूवी हुई, आशाओं से खेलती हुई, कामनाओं से सताई हुई है, फिर भी कितनी निर्लज्ज ! कितनी वासनामयी !! शरबती आंखें तो कामुकता की एक स्वच्छंद भावना है। हिरणी के केशों सी, भूल-भूलैया में डालने वाली नारी की ये आंखें कितने को वेजार कर चुकी हैं, इतिहास क्या अधूरा ही है। आंखो से किसी के भाव को परखना, मूर्खता है।

राज घबड़ा गया। मुझे इन बातों से सम्पर्क ? भूलते हो, तुम भी एक पुरूष हो योगी हो तो क्या हुआ। कोई बड़ी वात नहीं। पाप को छिपाने वाला ही घबड़ाता है। डरता है। सकुचाता है। मंदिर बनाता है। मनुष्य मनुष्य से डरता है, क्यों ? क्योंकि एक दूसरे को धोका देना चाहता है। किसी बात को छिपा कर रखना पाप है। समझे राज ! किन्तु, राज तो ······ पुलक रहीं है यामिनी— नारी के अधरों पर।

और राज ने सोचा, उसकी जवानी ? ऊषा की लालिमा

लिए अधरों पर खेल रही है। रंक्तिम हैं—कपोल। राग-सी छायामयी है—जवानी। बौरनियों की वक्र चाल में विभोर हो उठा है— उसका अंग-अंग।

और उसके उरोज —वसंत-सी मस्ती। कामनाओं की लोल धड़कन। स्वच्छंद पंछी की भांति निर्भीक। स्फटिक। लज्जा-सी सिसकती उभार। पल-पल प्रगति। आघात की प्याली। आवेदन की प्यासी। निद्रा-सी उनींदी। चोली की चिनगी। कभी शीतल, कभी चंदन तो कभी लज्जा-अम्बर से झांकती हुई वियोगिनी की गोल-आंखों-सी टुकटुक नज़रें। युवक का भ्रम। बिथरने को अचेतन। कामुकता की आंधी। पतन का संकीर्ण पथ। व्याकुल। छटपट। नोकझोंक की दो नोंकें। स्निग्ध। कठोर, फिर भी मीलित-कलियां। एक नहीं। दो। विचित्र समस्या। जोरों से या धीरे से। एक रस, आनंद अनेक। क्या ये कल्पना तो नहीं? राज ने सोचा। तो, नारी का सौंदर्य भी कल्पना की उड़ान। छि: राज, एक नारी के विषय में तू इतना सोच सकता है? क्या माधवी का तन चाहिए। क्या चाहिए, क्या नहीं। आत्मा की इस पुकार की ओर राज का ध्यान टिकता, किंतु टिक कर भी टूट जाता। टेक लगी रह जाती, किन्तु, कबतक?

नारी का सौंदर्य, राज अपनी आंखों के सामने देख रहा था, यूँ तो उसके सामने माधवी सशरीर न थी। अनुभूतियों के सुनहले पंख, देखने में जितने सुन्दर और अभिनव होते,

व्यावहारिकता की कसौटी पर खरे, अधिकांशतः नहीं उतरते। नारी को देखकर जागता ही जागता मनुष्य स्वप्न देखने लग जाता। कारण, नारी-दर्पण में जवानी झलकती है, पुरुष अधीर हो इन्द्रियों का आखेट बन जाता।

राज ने समझा— माधवी अपना प्रेम दे रही है। लेकिन, नारी का प्रेम जितना अव्यवस्थित होता है, उतना पागल का पागलपन भी नहीं। प्रेम के नाम पर इन्द्रियों को लालसा दी जाती है, और लालसा उद्दाम हो तन के झीने आलोक में विकीर्ण, कंटकित हो जाती। मन की बात। तन की तड़प। मिलन-यामिनी की सम्मोहक कल्पनाएं। कड़कती जवानी और दम तोड़ती लल्साएं जब कभी मिल जाती, तो नारी का सौंदर्य हो जाता— नग्न! घिनौना!!

और—

नारी की चंचलता एकबार दम तोड़ सदा के लिए नग्न हो जाती है। पौ फटी और चेतना आई।

हिरणी-सी लज्जा एकबार भागी, तो प्रेमी चुप हो मौन हो जाता। पुनः राज ने सोचा— जवानी का रंग? कुछ नहीं। कोई सांवली। और कई गोरी।

फिर भी जवानी का रूप?

रात की रानी। एक भूख, नियमित, आवश्यक। और, यौवन का प्रयोजन— सृष्टि और विनाश। तन चंचल। बेसुध वाणी। कलकल-लोल लहर। नितांत आवश्यक।

जवानी छिपाए न छिप सकती है और न बिना दिखाए रह सकती है। नारी की जवानी ही उसका व्यापक सौंदर्य है यह सौंदर्य अनुभूति है, कल्पना है, फिर भी चिरंतन-सत्य है। जवानी एक भाव है, नारी की विशेषता नहीं। रूप से बढ़कर भाव सुन्दर होता।

आज, योगी की जवानी उमड़ी थी। पता नहीं, किधर से आई। राज मनुष्य था। युवक था। योगी हुआ, तो क्या हुआ। इच्छाएं, घूंघट की ओट से निखर उठीं। अंग-अंग कंटकित।

जवानी भावुकता ला देती है और भावुकता की आंधी में मन व्यग्र होता है और तन मलिन।

ओह, मैं क्या-क्या सोच रहा हूँ। कोई सुन तो नहीं रहा। क्या सोचेगी दुनियां। क्या सोचेगा समाज। मानसिक-पाप से तो खुला-पाप ही अच्छा।

राज ने सोचा तो सही, ठीक। समुचित। व्यावहारिक। किन्तु, वह निश्चय नहीं कर सका। अल्हड़ जवानी मस्त हुई— बात की बातों में, और चेतनाएं असफल हुई— भावनाओं में।

जवानी की रात— काली-काली। उल्लास— पूनों का चांद। मन में कामनाओं की जो चित्रावलियां लुक-छिप रही थी, कारण, न तो योगी समझ रहा था और न राजराघव! सोचता-सोचता, वह झुंझलाया। मानसिक-व्यथा की ग्लानि से योगी की आंखें क्रोध से तन गईं। पैरों की गति बढ़ी। उसके पांव चलते नहीं थे, भाग रहे थे। जोरों की सांसें धांय धांय चल उठीं।

एक मिले और फिर, अनेक। चौराहे पर लोगों की भीड़ देख राज ने सोचा, सचमुच वह रास्ता भूल चुका। सामने का वर्त्तमान देख वह ठक हो गया। दीपों से झलमल बड़े-बड़े महलों की अटारियाँ, कुछ तो संगमर्मर के बने मकान, कुछ काइयों से कज्जल मकानों की दरफटी दीवारें—राज की नजरों के सामने आईं। गुजरीं। अटारियों पर नव-नव शृंगार में कई-कई युवतियां इधर-उधर तांक झांक रही थीं। कहीं तलवों की ठनठन, कहीं नुपूरों की झमझमाक। पायल रुनझुन और सुरीली स्वर-लहरियाँ। रसिकों की टोलियां एक ओर से, तो कहीं दूसरी ओर से आ रहीं और जा रहीं। कहीं, सीढ़ियों पर से आना और जाना लगा हुआ था। लोग अचरज भरी दृष्टि से राज की ओर देख रहे थे। किन्तु, किसे मतलब, स्वार्थ की पट्टियां बंधी हुई थीं— मन चले की आंखों पर। कोई आए, कोई जाए। मुफ़ की झंझट कौन सर मोल लेता।

जेब गर्म हो, तो आदमी आदमी को नहीं पहचानता। मन में पाप हो तो इंसान इंसान नहीं रहता। न तो किसी ने पूछा— कहाँ से आ रहे हो? कहाँ जाना है? और न किसी ने नमस्कार किए और न प्रणाम। जरा भी बड़ों की तमीज नहीं। बड़ी सचरित्र दुनियां है। बड़े विचित्र लोग हैं। एक पान वाले की नजर राज पर पड़ी।

उसने पुकार कर कहा:—"जरा, सुनिए तो!"

मलमल का कुरता बर्फ से भी सफेद मालूम पड़ रहा था।

घूंघराले बाल चमक रहे थे। पर, दूकान की सजावट और भी बढ़कर, जगमगा रही थी। राज दूकान के सामने आकर रुका। दो पान के बीड़े, दूकानदार ने आगे बढ़ाए। कुरते के अग्र भाग पर कथ के छींटे एक दूसरे से अपरिचित दीख पड़े। गले में सोने का हार हिल-डोल रहा था। पानवाले की सूरत बड़ी बेढंगी थी। चेचक की अच्छी-सी नक्काशी मिल चुकी थी। बड़े-बड़े निकले दाँत, वह भी काले-काले। राज गौर से उसे देखता रहा।

"मैं पान नहीं खाता।"— राज ने कहा।

पानवाला झुंझलाया। फिर हंस कर बोला:— "आप थके मालूम पड़ते। कहाँ से आ रहे हैं ? कहाँ जाना है ? चलिए, मैं ले चलूं। आप घबड़ाए क्यों हैं।

पानवाले का प्रत्येक प्रश्न, यह प्रगट करता था कि वह चालू आदमी है। फंसाना खूब जानता है। राज चुप रहा। अपलक पानवाले की ओर निहारता रहा। कई आए, पान लेकर चलते बने। राज का यह मौन-व्रत पानवाले के लिए एक पहेली, एक अनजान समस्या।

पानवालों को जितना अहंकार अपनी दूकान से होता है, उतना उन रसिकों को भी नहीं होता जो भरी जेब खाली कर फिर कल के लिए नया प्रोग्राम बनाते। रसिक जेब खाली करना जानते और पानवाले उनकी जेब सही सलामत रहने का फक्र रखते। फिर भी, उधार-चंदों से वे डरते नहीं। आज न सही,

कल 'रईस' कह दूनी बड़ी प्रसन्नता से ले लूंगा ही। रईसों की इज्जत करते समय, ऐसा मालूम होता कि वे सज्जन हैं, कद्र पसंद हैं और जब इज्जत लेने को तुल जाते तो मालूम होता कि गाली-गूफ़ों के शब्दकोष-संस्करण एक बारगी ही छपकर निकलते।

किंतु, यह पानवाला उलझन में पड़ गया। "ओ माफ़ कीजिये। आप पान नहीं खाते। तो, इलायची ही लीजिए" यह कहकर, इलायची के कुछ टुकड़े राज की ओर बढ़ाता हुआ बोलाः— उधर, क्या देख रहे हैं। आप नहीं जानते, उस सामने के महल में विष्णु-प्रिया रहती है। क्या नाच, क्या रंग, क्या उठती जवानी, क्या लोच, क्या नाम। सब नया ही नया है।"

एक आदमी को पान देकर, वह फिर बोलाः— "साधु का भेष तो खूब बनाया है। फिक्र, मत कीजिए किसी को बातें मालूम नहीं होगी। आप घबड़ा क्यों रहे हैं। विष्णू-प्रिया मशहूर भानुमति की बेटी है। माँ की तरह बेटी भी खूब नाम कमा रही है। आप तो ऐसे घबड़ा रहे हैं कि यह दुनियाँ कभी देखी ही नहीं ?"

बिजली गिरती है, किन्तु, यह कोई नहीं जानता कहाँ और कैसे गिरेगी। राज पर मानो बिजली गिरी। वह तिलमिलाया। क्रोध से भवें तन गईं। आँख लाल हो गई। उसने कुछ बोलना चाहा। किन्तु क्या बोलूं। सोचता रहा। बात गम्भीर थी, समझ में झट न आई। पानवाला देख रहा था कि न जाने, किस मनहूस से पल्ला पड़ा है। लेना देना साढ़े बाईस, टुकुर-

टुकुर क्या ताक रहा है। राज कुछ देर चुप रहा। जो उसे देखता हंस देता और न जाने, क्या-क्या कहता सुनता चल देता। पानवाला समझ न सका कि माजरा क्या है।

उसने हिम्मत बांध पूछा:—"क्या आप अपना नाम बता सकते हैं, यदि कोई हानि न हो तो······राज फिर भी चुप रहा। राज ने सोचा, दुनियांवाले हंसना तो खूब जानते। एक दूसरे की दशा देख हंसता, दूसरा भाग्य पर संतोष कर उत्तर देने से लाचार हो जाता। धनी का धन हंसता है, प्रेमी का प्यार रोता है, और गरीब की आशाएं रोती हैं। विष्णु-प्रिया के महल की ओर राज देखता रहा। हर दृष्टि में नया आनन्द, हर भावना में नई जिज्ञासा, हरबार नवीन उत्कंठा। राज यों देख रहा था मानो कोई इतिहासकार पुराने खंडहरों का अध्ययन कर रहा हो। कुछ शंकाएं जागी और राज ने पूछा:—"कौन भानु-मति? क्या तुम भानुमति को जानते हो।"

पानवालों ने समझा, आखिर पंछी पिंजड़े में आन फंसा। वह हंसकर बोला:—

"क्यों नहीं। राज-फाटक वाली भानुमति का नाम कौन नहीं जानता। मर गई बेचारी, लेकिन भानुमति-मन्दिर आज उसी की जायदाद पर खड़ा है।"

"तो, विष्णुप्रिया राज फाटक छोड़ कर यहां क्यों चली आयी। राजफाटक तो उसे नहीं छोड़ना चाहिए। क्या तुम मुझे विष्णुप्रिया के पास पहुँचा दे सकते हो? मैं उससे मिलना चाहता हूँ। धन्यवाद दूंगा, भाई।"

"भाई" शब्द पानवाले को इतना मीठा लगा कि प्रसन्नता से उसकी आंखें स्नेह-भाव पाकर बरस पड़ीं। जो कोई उसकी दूकान, पर आता था, 'पानवाला' 'तम्बोली' कह पुकारता। तुम पान वहुत देर में लगाते हो, "तुम पान क्या लगाओगे, गांजा पीओ भांग घोंटो।" जो कोई आता बड़ी ओछी निगाह से देखता। एक शराबी भी बड़े रोब से कहता" ब···ना चार बीड़े पान। यह तो पैसे की हुकूमत थी और इज्जत की तबाही। जो कोई पान लेता, इतने ताव, से पैसे फेंक देता कि किसी भिखारी को दान मिल रहा हो। दुनियां इज्जत देखती है, शराफ़त पेश नहीं करती। बाहरी इज्जत! पैसेवालों की शराफत देख-देखते अब दुनियां ऊब चुकी है। चालीस साल से पैसेवालों की काली करतूतें देखते-देखते पानवाले की आंखें थक चुकी हैं।

पानवाले को न तो कोई अपना है और कोई न बेगाना। जिंदगी गुजर रही है, इतना ही वह जानता है। पैसे उसके अपने हैं, अपनी इज्जत वह खुद समझता है। काठ की सजी-सजाई उसकी दूकान ही अपनी है। पान लेने वालों को वह बेगाना नहीं समझता। हंस कर देता है, हाथ बढ़ा कर लेता है। पैसा वह खूब कमाता है, फिर भी अपने को फटेहाल ही पाता है। शराब पीना वह रोज का कर्त्तव्य समझता है। कोई रईस कुछ इनाम दे देता, तो वह अपने को धन्य, धन्य समझता है। किन्तु, कोई उसे भाई कहकर नहीं पुकारता। आज, योगी के मुंह से स्नेह से भरा 'भाई' शब्द सुनकर उसने समझा कि

गरीबों के पास शराफत बराबर बरामद हो सकती है। जिसे कोई अपना कहने वाला नहीं, उसे संसार की ओर से विरक्ति, या यों कहिए कि संसार के सारे रंग फीके और नीरस जान पड़ते। मनुष्य का सारा जीवन आवश्यकताओं की बड़ी लम्बी कहानीं है। प्रत्येक क्षण की प्रत्येक आवश्यकता अनुभव के साथ ही साथ चलती है। पानवाले की यथा संभव सभी आवश्यकताएं पूरी हो चुकी थी, केवल एक अधूरी रह गई थी। भाई शब्द राज के मुंह से सुनकर ऐसा मालूम पड़ा कि उसका ही छोटा भाई वैसी ही भोली और मीठी आवाज से 'भाई' शब्द बोल उठा हो। उसके भाई के मरे कई साल बीत चुके हैं। पानवाले ने गौर से योगी के चेहरे को देखा। मालूम पड़ता था कि कोई पिता अपने परदेशी-पुत्र को वात्ससल्य-भरी दृष्टि से देख रहा हो। वात्ससल्य भावना को वह न रोक सका। धीरे दूकान से उतरा और गले लगा, और राज देखता रह गया। उसके मुख से वाणी निकली:— मुझे साधु समझ गले न लगो, भाई। मैं तुम्हारे ही जैसा आदमी हूं। मुझे ले चलो, विष्णुप्रिया के पास। वह, शायद, मुझे पहचान नहीं सकेगी।" पानवाले ने यह सुन झट कहा:—"वेश्या जिसे एकबार देख लेती है, पहचानने में भूल नहीं करती। आदमी को पहचानना ही तो वेश्या जानती है। आबरू बेचकर, अस्मत खोकर, धोखा देती ये इतनी चालाकी से काम लेती हैं, कि सहज समझना जरा टेढ़ी खीर है। जाना तो वहां न चाहिए, फिर भी, मैं; वहां ले चलता हूँ।"

पानवाला, यह समझ रहा था कि विष्णुप्रिया से योगी की जान पहचान बहुत दिनों की होगी। नहीं तो, "पहचान नहीं सकेगी" यह बात राज के मुंह से नहीं निकलती। किंतु, गेरुआ-वस्त्र और लम्बी-लम्बी जटा में यदि कोई रहस्य छिपा हो, तो कोई भेद-भाव कैसे जान सकता है।

एक, फिर दो, इस तरह कई सीढ़ियों को पार करता राज और पानवाला कोठे पर पहुँच गये। एक बड़े से कमरे की ओर राज की दृष्टि गई। कमरा जगमग था। कमरे की किवाड़ लगी हुई थी। वीणा की स्वर-लहरियां गूंज रही थीं और सारा कमरा तालियों की गड़गड़ाहट, और वाह-वाह के झूठे धन्य-वादों से भरा पूरा था। किवाड़ लगा था, किन्तु कमरे की बाईं ओर, किवाड़ से कुछ हट कर एक झरोखा खुला हुआ था। कुछ तो किवाड़ की ओर से, और उससे अधिक रोशनी झरोखे की ओर से आ रही थी।

झरोखे के पास आकर राज खड़ा हो गया। संगीत-ध्वनि और वीणा की लहरों में विष्णुप्रिया लवलीन थी। मसनद की ओर पीठ का दबाव डाले कई आठ रसिक तानों की गुन-गुन में, लय की लहरों में अनजान दीख पड़ते थे। हरे रंग की साड़ी में विष्णुप्रिया की जवानी रुठ-रुठ कर हंसना सीख रही थी। कंधे पर का नीला दुपट्टा कपोलों को जब-तब छू रहा था। दो दासियाँ रईसों को पंखा झल रही थीं। एक दासी प्याले में मदिरा भरकर विष्णुप्रिया के हाथ रखती जाती और

वह रुक-रुककर नाज़ोअदा से साकी की अल्हड़ अदाओं में प्याले पर प्याले पिलाती जाती। बेसुध था— सारा वातावरण।

पानवाले ने झरोखे से देखा, तो, देखते ही डर गया। पांव थरथराने लगे। आंखें चकाचौंध हो गईं! उसने राज के कान में धीरे से कहा:—इस शहर के धनी मानी जीवनधन, देखिए, कितनी मस्ती में झूम रहे हैं। आप ठहरिए, मैं तो अपनी दूकान पर जाता हूं। कहीं उसने देख लिया, तो मेरी खैर न होगी। लक्ष्मी इनके पैरों नाचती है। इतने बड़े धनी को छोड़कर, भला विष्णुप्रिया आप से कैसे मिल सकती है?

"क्या कहा, जीवनधन? मैं आज मिलकर ही चैन लूंगा। मसनद की ओर बांया-कंधा डाले, क्या वही नर-पिशाच तो नहीं? घर में पत्नी बिलख रही है और यहां शायरी हो रही है।"— राज ने भावुकता के स्वर में कहा।

"जरा चुप भी रहिए। किसी ने सुन लिया तो हमारी जान न बचेगी। इस प्रांत में जीवनधन जी का बड़ा दबदबा है। सारी ग्राम-पंचायत इनका आदर करती है। बड़े दानी, बड़े दयालु, सब कुछ बड़े ही बड़े हैं।"— पानवाले ने धीरे से दबे-दबे कहा।

"क्यों चुप रहूं। जनता बराबर अमीरों की प्रशंसा करती रही है। उसने मन्दिर बनवाये। इसने धर्मशाला और अमुक ने अनाथालय। गरीबों से चूस-चूस पाप का दामन दान से न भर दें, तो उसका जीना दूभर हो जाय। पाप के ये ढोंग, अब

संसार देखता-देखता ऊब गया। ये मन्दिर की दीवारें, ये बड़े-बड़े महल, ये वेश्या-मंडियां, आज भी पुकार-पुकार, चिल्ला-चिल्ला, काफी शोरगुल करती हुई कह रही हैं कि अमीरों के पाप पर छाया डालने के लिए ये मन्दिर गरीबों के श्रम पर बने हैं। गरीब अपनी क़िस्मत को कोसता-कोसता दो टुकड़ी रोटी के लिए सुबह-शाम चिल्लाता चलता, भगवान की दुहाई देता इस दर्द-भरी दुनियां से चल देता। और, उनकी माताएं, कफ़न के लिए, धनिकों के द्वार-द्वार, भटकती फिरती, और सुहाग-बिन्दियां, अमीरों की वासनाओं, महाजन की चक्कियों, मनचले की आखों, दिलजले की भूखों में कराहती-कराहती दमतोड़ देती हैं। आकाश सुनता है। पवन सांय-सांय, हृ, हृ, हृ, करता। पृथ्वी मौन हो जाती। कुछ भावुक सोचते तो हैं, पर "समय नहीं" कह अनजान हो जाते हैं। अमीरों ने जीवन-संसार को दर्द भरी दुनियां बना दिए, जहाँ भावुकता जागती है, अकर्मण्यता का मोह बढ़ता ही जाता है। केवल, दर्दभरी दुनियां ही नहीं, जीवन-अनुभूतियों, उच्चविचारों, और मर-मर कर, रह-रह कर मरना, संसार की सभी प्रसन्नताओं को पलपल जला उखाड़ फेंकना ही उनकी गीता बन गई है। यह दुनियां ठगों का मेला है, जो पूरा ठग निकल सका, दुनियां की बाजी मार ली और बिचारे गरीब किस्मत का माथा ठोंक, इन धूर्त्त अमीरों के चकमें में आ गए, पीसे गए, कफ़न के लिए, दिए, गए। क्या ? चांदी के चार-चार टुकड़े। अमीरों ने एक शब्द बनाया है—क्या तुम जानते हो—संतोष। पानवाले ने सिर हिला दिया।

"इस शब्द में कितनी बड़ी धोखे की टट्टी है कि आज गरीबों की झोपड़ियां शीत से ठुठुर कर बेजान बनी बैठी हैं। आग लग गई, कोई बात नहीं। पानी घर में चूता रहा, राम-राम का नाम ले लिया। यही तो हम गरीब जानते हैं। और—संतोष। हर असफलताओं में— संतोष। हर क्रांति में—संतोष। अस्मत बेचने में— संतोष। वेश्या-मंडिलां बनते देने में— संतोष। हर अपवित्र गर्भ— में संतोष। हर सूद में— संतोष। हर हुजूरी में— संतोष। हर दबाव में—संतोष। हर बेईज्जती में—संतोष। हर जूतों में— संतोष। संतोष-पाठ तो सुबह से शाम तक हम गरीब किया करते। और, उधर सोने-चांदी, हीरे, मोती उसी संतोष की आड़ में अमीर खरीदते रहते। पैसों पर हुजूरी बिकती है, टके-टके पर यौवन बिकता है। गरीब-नारी का नग्न-सौंदर्य मक्खियों की मोल बेचा जाता है। वह नारी-सौंदर्य जो भगवान श्रीकृष्ण की वांसुरी, बनी थी, आज अमीरों की लिप्साएं बन रही हैं, और गरीबों का सुहाग-यौवन चांदी के टुकड़ों पर नाच उठा है। धनिकों का नग्न-पाप, पैसों का नग्न-सौंदर्य इन वेश्या-मंडियों, गरीब की झोपड़ियों में देखकर भी अमीरों से डर जाते हो।" राज ने क्रोध के आवेश में कहा।

पानवाला खड़ा-खड़ा सुनता रहा। उसे डर लग रहा था कि साधु की जोर-जोर बातें भीतर के लोग न सुन लें, और तो, कयामत ही आ जायेगी। राज को बड़ा आश्चर्य हुआ कि गरीब अमीरों से इतना भय क्यों खाता है। गरीब भी आदमी

है। इन आदमियों के पैर धनिकों ने इस तरह बाँध रखा है कि न तो निकलते बनता है और न जड़ उखाड़ फेंकते। गरीबों का सन्तोष धनिकों के लिए एक अच्छा तमाशा हो गया है। कितने तमाशे! किननी निलज्र्जता!! कितने अमीर!!! कितनी वेश्या मंडियां! कितनी झोपड़ियां!! कितने मंदिर!!! हर मंदिर अमीरों का संतोष है। हर चिराग झोपड़ी की आग है। प्रत्येक वेश्या अमीरों की चुहल है। हर पाप, पैसों की काली-करतूत है। गरीबी गरीबों की मीठी संतोष-कल्पना है। गरीबी हमारी कल्पना है, जब तक संतोप-सिद्धान्त पर हम गरीब अटल हैं। गरीबी हमारी सबसे बड़ी कमजोरी है। पैसा इज्जत है। पैसा परिश्रम है। पैसा आदमियत है। किन्तु, गरीबों को अपनी सन्तोष-कल्पना ही मीठी है।

जीवनधन भी आदमी है। जैसे हमलोग हाड़-मांस के आदमी हैं। धन, उसकी ठगई और गरीबों के सन्तोष भाव का यथार्थ है। उसका धन हमारी कल्पना है और उसकी विला-सिता हमारी असमर्थता है। गरीबों के चिराग से इनका महल रौशन होता है। वहाँ दीप बुझता है, तो यहाँ बाती जलती है। वहां हाय-हाय, तो यहां वाह-वाह। वहां युवतियां खिलती हैं, तो यहां अमीरों की भूख जाग उठती है। मसल दो, तोड़ डालो, गालियां दो, जूतियां मारो, ठग लो, इज्जत के दामन में अपना मुंह छिपा लो, पर, कुछ न बोलो, देखते रहो, अजनबी बने रहो, हुजूरी बजाओ, जूठियाँ मलो, और अर्द्ध-नग्न अवस्था

में भी चुपचाप सिसकते रहो, बहूओं को बेच दो, बेटियों को भेंट चढ़ा दो, फिर सन्तोष की मीठी-कल्पना में फाकेमस्त रहो, यही तो हमारी गरीबी है। यही हमारी असमर्थता है। यही हमारी घिन्न-निलर्ज्जता है। फिरभी, कैसे आबाद हो? पानवाले तुम भी तो बता दो! उस नर-पिशाच जीवनधन से डरते हो। छिः छिः छिः। उसे मैं पाऊँ तो, कच्चा ही चबा डालूं। इन भूतों से जितना डरोगे, उतना ही पीसे जाओगे। मैं जंगल का योगी नहीं। गरीबों में परिश्रम की मांग का अलख जगाने आया हूं। भरपूर परिश्रम करते हो, तुम्हें भी जीने का अधिकार है, जीवन के सारे आनन्दों का उपयोग करना है। अमीरों से डरते रहोगे, तो एकदिन न एकदिन आकाश के नीचे, अभी तो आधा कपड़ा ढंका है, पूरे नग्न चक्कर काटा करोगे नंगे सारी दुनियाँ तुम पर थूकेगी। तुम्हारी कमजोरियां तुम्हारी दुहाई देती फिरेगी। भाग्य! भाग्य!! चिल्लाते फिरोगे और भगवान भी कायरता से दुःखी होकर लज्जा से अपना मुंह छिपा लेगा। उसने सब को एक-सा बनाया है। यहां धोखे बाजी से अमीरों ने अपने इशारों पर नचाना शुरु कर दिया है। जो जितना ठग सकता है, वह उतना ही अमीर हो सकता है। अमीर दानी क्यों नहीं होंगे। तुम्हारा ही पैसा अपने नाम पापों को धूल झोंकने के लिए ये मंदिरों में दान देते। मंदिर बनवाते। धर्म के नाम पर गरीबों को अंधा और लंगड़ा बना ये धूर्त्त-सियार हमारी झोप-ड़ियों को भी चैन से खड़ी रहने नहीं देते। अफसोस है, गरीबों

की बुद्धि क्यों मारी गई ? क्यों भेद-भाव की कल्पना की गई ? क्यों परिश्रम को पैसों की मोल खरीदा गया। जीवन को परिश्रम के द्वारा सफल बनाने में, जो अड़चनें आती हैं, अमीरों की ही धांधली है। जेब-काटना, वह भी सफाई के साथ, ये मक्कार, नर-पिशाच, अधम निशाचर अमीर खूब जानते हैं।

महलों को जलते शायद, ही देखा है। झोपड़िया तो रोज-बरोज जला करती हैं। तुम तो संतोष-कल्पना में मस्त रहते हो, पर, धनी धन से न तो संतोष और न सन्यास लेता। उसे और चाहिए, और, और। जो जितनी सफाई से जेब काट सका, वही दिन-दूना रात चौगुना अमीर होता गया। पैसे से आदमी आदमी को भूल जाता है। भाई बहन की इज्जत लेता है। बहनें वेश्याएं बन हमारी इज्जत लेती हैं। देख रहे न, कैसा नर-पिशाच एक बहन की इज्जत ले रहा है। वासना की भूख चढ़ी हुई है। पैसे का सियार नारी की इज्जत को खोदता नज़र आ रहा है। आज जीवनधन है या मैं। यदि मेरे जीवन-दीप बुझ भी गए, तो हमारी दीक्षा ग़रीबों को नहीं भूलनी चाहिए। जरा, बाहर तो निकल— धनोमानी जीवनधन ! जरा मैं भी देखूं, धन की घिनौनी सूरत ! संतोष तो हो जायेगा ! तुम डरो नहीं।

पानवाला समझ गया कि वास्तव में योगी कर्मठ-योगी है। उसकी कल्पनाएं ही उसके उच्च-विचार हैं और हमें भी साथ देना चाहिए। यही सोच वह खड़ा रहा। फिर भी, डर से

उसका पैर थर-थर काँपने लगा। चेहरे पर हवाइयां उड़ने लगीं। आंखों में अन्धेरा छा गया। गरीबी असहायता में बिलख पड़ी। कल्पना का नशा भंग-भंग हो गया। हाय री गरीबी ! कमरे के भीतर का वातावरण शराबियों की निलर्ज्ज टोली से आक्रांत था। हंसी के कह-कहे लग रहे थे। लोग झूम रहे थे। खिड़की की थोड़ी-बहुत आवाज़ विष्णुप्रिया की दासियों को भनक-सी मिली थी। किन्तु, पंखा झलने से फुर्सत हो, तब तो, बाहर की बातें जानी जा सकती थीं।

भीतर पाप। बाहर चिंतन। एक फलित, दूसरी कल्पना। किंतु, कई बार जब दासियों को भनक मिली, तो चुप भी कैसे रह सकती थी। शायद, कोई और रईस आया हो। शायद, भानुमति-मंदिर का महंथ हो। चाहे, कोई हो। कोई न कोई तो होगा ही। पापी द्वार खटखटाता है। वासना छटपटाती है। पैसा ठन-ठन बोलता है। नामी वेश्याओं को रईसों की उतनी परवाह नहीं होती, जितनी रईसों को होती। कारण वहाँ तो रोज का यही हाल है, और यहाँ पैसों की गर्मी है। रईसी का ठाट है। गरीबों की बेजान आबरु है। अमीरी की लू है, गरीबी की तड़प है। असहायता का दुःखान्त है। भगवान् की दुहाई है। जीवन का सोता भाग्य है। अमीरों की विलासिता है। गरीबी छिपाए नहीं छिपती। अमीरी दिखाए नहीं रूकती। गरीब जितनी मिहनत करता है, उसका आधे से अधिक प्राप्ति अमीरों के ही काम आती

है। बेचारा गरीब सामने की थाली छीनते देखते रह जाता। मुंह से कोई बात नहीं निकलती। जब इतना ही संतोष धरे रहते, तो दुनियां से संन्यास लेने में, फिर, इतनी हिचकिचाहट क्यों है ?

सोते सांप को जगाना और अमीरों की हुजूरी दोनों खतरनाक हैं। एक काट कर जीवन ले लेता है, दूसरा डंसकर रोता छोड़ देता है। यही है हमारी दुनियां और ये ही हैं हमारे गरीब-संतोष की मूर्त्ति, अभिशापों की सृष्टि पैसों का तराजू। मिहनत करा लीजिए, बाद में टांका दे दीजिए। पलभर में लक्ष्मी आपके पैरों घूमा करेगी। कुटला लक्ष्मी, और पापी, चोर—ये अमीर। इज्जत के ठेकेदार। दान की प्रतिलिपि। इज्जत लूट लीजिए, इन्हें शर्म नहीं आती। किस्मत की दुहाई ये गरीब खूब जानते हैं। किस्मत-पत्थर। भगवान पत्थर। दिल-पत्थर। दिमाग पत्थर। संतोष आशा। आशा मृत्यु। भोला—रूप। भोली—सूरत। भोली नादानी। भोली और भोली। भाग्य फूटा और गंवार लूटा। गरीबों की जवानी— घिनौनी। अमरों की मौज—तफ़री। दिल वहलावा।

राज, अभी विष्णुप्रिया का नृत्य देख रहा था। नुपूरों की छमछम, घूंघरूओं की झमाझम। अंग-अंग की तिमिरमयी वासना—चोट कर रही थी, यौवन के उत्ताल-तरंगों में, भावनाओं की झूठी नीमरज़ा आदाओं में, दलमल उरोज कंचुकी से आवद्ध, और कटि-उछाल की ओर तटस्थ था। जवानी शवनम-

सी मिटी जा रही थी। वासना एकाग्र। फांसने का जाल—समग्र चांदी के टुकड़े फेंके जा रहे थे। हीरे की अंगूठियाँ, सोने के हार, यूं ही मुफ्त में एक पर एक दिए जा रहे थे। विष्णुप्रिया की नजरें इन दानों पर पड़ती। अपना भाग्य मन ही मन सराहती। जवानी का यह धोखा अमीरों को भी फांस लेता है। मुफ्त के पैसे यूं ही आते और चले जाते। इज्जत कराहती रह जाती है, शराफत चादर ओढ़ सोने का उपक्रम करने लग जाती

और वेश्या—नग्न-सौंदर्य में कामुक कुत्तों को कितनी दुत्कार देती रहती, फिर भी धनी अपने को ठगा समझ कर भी सोने को परवाह नहीं करता वे क्या जानें, पैसे की कीमत। इज्जत की शराफत। नारी का निश्छल-प्रेम।

विष्णुप्रिया की रसीली, उनींदी आंखें समाज के उन ठीकेदारों पर झुकी हुई थीं, जिनके कारण नारी की अबला-मूर्त्ति चूर-चूर कर दी गई थी। हर अदाओं में प्रतिशोध, प्रत्येक नखरे में—धोखा। बदला! हाँ बदला!! नारी का अबला-रूप सुंदर है, पर उसकी कहानी—बड़ी घिनौनी! बड़ी लोमहर्षक!! रुढ़ियों के अत्याचार से सताई, ये अबलाएं जब प्रतिशोध की ओर आमुख होती है, तो समाज वेश्याओं का परिष्कार नहीं करता, बल्कि, रईसी की दिलकश तस्वीर समझ बैठता। यह भी कोई संतोष-भावना है?

नाचती रही। बेसुध थे—जीवनधन। नाचती-नाचती बिष्णुप्रिया जीवनधन के समीप, लता-सी सट गई। जीवनधन की

वासनाएं जाग उठीं। अधखुले नग्न उरोजों पर, वह हाथ रखने को आतुर हो उठा।

"नाचो! नाचती रहो। हसरत की निगाहें तड़प उठी हैं। लो, यह सोने की बीस मुद्राएं। जीवनधन ने कहा।

"जी नहीं, इन सोने के चन्द टुकड़ों से हमारी भूख नहीं मिट सकती। मैं मुद्राएं लेकर क्या करूँगी। इश्क को सोने की तौल तोलना चाहते हैं। मुझे इनटुकड़ों की आवश्यकता नहीं। आपका आना-जाना आबाद रहे। यही मेरे लिए सब कुछ है। आप ही जैसे रईसों पर ही हमलोग आश लगाए रहती हैं।" विष्णुप्रिया नाज़ोअदा में बोली।

जीवनधन को प्रसन्नता की सीमा न रही। उसका मन-मयूर बिना पावस ही नाच उठा। अपनी प्रशंसा से वह बासों उछल उठा। और धीरे से, दबे-दबे चोली खिसक गई। नारी का नग्न उरोज जीवनधन के हाथों पड़ कर तिरमिरा उठा। जीवनधन के साथी झेंप गए। बुढ़ापे की विलासिता व्याकुल हो उठी। नग्न-नग्न था कमरे का सारा घिनौना वातावतरण। पैसा नारी सौंदर्य को बड़ी बेदर्दी से अड़े हाथों ले रहा था। जीवनधन के उजले-उजले बाल, विष्णुप्रिया के ऊदे-उदे मेघ-मालाओं के बीच ऐसा प्रतीत हो रहा था कि कबूतरी को बाज झपटने को प्रस्तुत हो।

निलर्ज्ज जवानी उमड़ी थी—बुढ़ापा की अंतिम विषया-सक्त अवस्था में, धन की रंगीन चादरों में, पैसों की मोह मयी

लिप्सा में और स्तब्ध थी महल की दिशाएं—पाप की छिन्न-छिन्न घड़ियों में। अमूल्य यौवन बाजार में रो-रो कर कह रहा था—हाय रे पैसा। हायरी, हतभाग्य अबला। बिष्णुप्रिया लजा गयी। किंतु, जीवनधन को लाज कहां। पैसे का मूल्य चुकाए बिना वह कैसे रह सकता था।

बुढ़ापे की वासना जवानी से भी बढ़कर नंगी, भूखी और मदहोश रहती हैं। बूढ़ापे की लिप्सा मृत्यु तक बराबर एक-सी रहती है। उद्दाम यौवन कामुकता की हरी-हरित हरियाली में झूमने लगता है। प्रकृति के प्रति यह भीषण-विद्रोह अमीरों की धांधली में, काली-करतूतों में, एक महत्वपूर्ण समस्या है। अमीरी रहेगी तो वेश्या रहेगी। जरूरत से अधिक पैसों से ही नारी की इज्जत खरीदी जा रही है। हम तमाशवीन देखने में ही अपना धन्य-भाग्य समझ बैठते हैं। कामुक रूप पर रीझता है। लज्जा पैसों पर नाचती है। नग्न-सौंदर्य बड़ी कठोरता से छिन्न-भिन्न किया जाता है। अबला की बिलखती आशाएं रूढ़िकी सनातन जंजीर में इसतरह बांध दी गई हैं कि टके-टके पर रंग खोलना इतना सस्ता हो गया कि गरीब भले ही भूखे मर जांय, लेकिन वेश्याओं की मांग पूरी होती रहें, यही अमीरी बड़प्पन है। अभिशाप है। पापाचार है। फिर भी, पापी उन्नति के शिखर पर पहुँचता जाता है। पाप की यही सुनहली माया है। पाप सुन्दर होता है, पापी सफलता पाता है। गरीब मरते हैं, और अपनी इज्जत पैसों की अंधी-दुनियां में खो देते। अमीरों

को इज्जत की निगाह से देखने वाले ये पददलित गरीब यदि चिल्ला उठें, तो गरीबों का कायाकल्प ही हो जाय। खानदान के धोखे में गरीबी झख मारती है। गरीबों के आंसू में भगवान के दयामय-रूप की कल्पना हमारा संत समाज बड़े ही मार्मिक शब्दों में उपस्थित कर चुका है। भगवान् दीन-वत्सल हैं। पर, गरीब भाग्य पर संतोष और भगवान् की दयालुता पर श्रद्धा रख अपनी जीवन-नैया खेता चला जाता है। कर्त्तव्य का पथ-रथ एक ही लीक पर चला जाता है। उन्हें वर्त्तमान से असंतोष नहीं। भाग्य का भरोसा है।

बुढ़ापा की कामना वासना है और जवानी की कामना प्राकृतिक एवं आवश्यक है। बूढ़ापा की कामना जितनी भयंकर होती है उतनी नागिन की फूंफकार भी नहीं। पानवाले ने मन-मन योगी की सराहना की। पर, वह परिणाम से डरता था। फिर भी जीवनधन से अकारण भयभीत था। भावना भाव की प्यासी थी। भाव सुन्दर और आदर्श-समाज का मापदंड-राज की भावना-कथा में परिलक्षित हो, अमीरों को चुनौती दे-दे खिलखिला हंस उठा था। पानवाला, इतना समझता था।

जीवनधन नशे में चूर थे। उजले-उजले केश कामुकता की आंधी में इधर-उधर बिथर गए। विष्णुप्रिया को आनन्द मिला—अपनी सफलता पर। ठगा गया समाज—अपनी ही गलती पर मंडरा रहा था—पाप, कमरे के इर्द-गिर्द। राज अपनी आंखों से रईसी की रंगीनी देख रहा था। क्या करे और क्या

नहीं। सोचता-सोचता ठगा-सा, थका-सा, महसूस करने लगा। एक ओर विलासिता नाग-फण काढ़े खड़ी थी। दूसरी ओर राज अपनी भावुकता में लवलीन था। न जाने, कबतक ये लोग, समाज के ये हत्यारे, अपनी पाप लीला में मस्त रहेंगे। पता नहीं। कबतक राज की अपलक- दृष्टि विषैले-वातावरण का चक्कर खाती रहेगी। अमीरों की यह विलासिता इतनी पुरानी होती जा रही है कि समझ है पड़ता समाज में नैतिक-शक्ति का ह्रास अवश्यंभावी है। समाज की नैतिक शृंखला इतनी जल्द-जल्द टूटती जा रही है कि यदि अमीरी और रईसी रही, तो, भाई-बहनों को आदर करने में भी बड़ी हिचकिचाहट होगी। ये वेश्याएं हमारी वे बहनें हैं, जिसे समाज की रुढ़ि और अमीरी के फालतू—पैसे, इन्हें नंगी कर सरे बाजार में अस्मत का सौदा चांदी के चन्द टुकड़ों के साथ बेहद कर चुका है।

राज ये बातें मन ही मन सोचता गया। क्रोध की चिन्गारी शराफत की लपटों में उग्र हो गई।

एक और फिर यों चार धक्के। बंद किवाड़—कड़कड़ा उठा। कमरे का रंग भंग हुआ। सोता साँप जाग उठा। राज की पूरी ताकत। ब्रह्मचर्य, फिर भला अपमान का प्रतिशोध। कौन है, कौन है ? की कई आवाजें गूंज उठीं। पापियों का मन सकपका गया। "देखते क्या हो, जल्द किवाड़ खोलो। और जीवनधन तुम छिपने का प्रयत्न न करो। विष्णु, किवाड़ तो खोल दो। देखो, मैं कौन खड़ा हूं।" राज ने धक्का देते हुए जोर से कहा।

भीतर से कोई कड़क कर बोला:—"जा बे जा। क्यों हमारे रंग में खलल डालता है। विष्णु के सोने के दिन समझो कि धनीमानी जीवनधन इसके द्वार आए हैं।" "बात का बतंगड़ क्यों बनाते हो। सीधे मन से किवाड़ खोलो।" राज ने गरज कर कहा।

विष्णुप्रिया को आश्चर्य लगा कि जीवनधन से टक्कर लेनेवाला इस शहर में कौन है। हो सकता है, कोई परदेशी-मुसाफिर हो। या भानुमति-मंदिर के महंथ--श्री १०८ रामदास हों। और तो कोई नहीं हो सकता। विष्णुप्रिया के पास अयरू-गैरू नत्थू-खैरू नहीं आते। जब फंसता है—मालदार।

पर, जब किवाड़ खुला, तो विष्णुप्रिया को काठ मार गया। यहाँ साधुओं और भीखमंगों की क्या आवश्यकता? आश्चर्य। जरा, नजर उठाई, तो वह योगी की दीप्ति से सहम गई। गोल-गोल चेहरा। उन्नत भाल। ऊँची ललाट। प्रफुल्ल बसंत। एक नवयुवक। उसकी साधुता। जटाएं। गेरूआ-वस्त्र।

देखते ही सभी आश्चर्य करने लगे। शराब की मस्ती में झूमते जीवनधन और उनके साथी का नशा फट गया। होश, और बेहोशी भागी। किंतु, अमीरी रोब टूट कर रह गया। जीवनधन की इससे बढ़कर अधिक बेइज्जती भला क्या हो सकती थी। अमीरी की गीदड़भभकी जाग उठी। वे कड़क कर बोले:—"जानता नहीं, मैं कौन हूँ। मेरी सूरत क्या टुकुर-टुकुर ताक रहा है। कुछ भीख चाहिए, तो बोल। राज-फाठक की

सारी जायदाद मैंने खरीदी है। मेरा बनवाया हुआ मन्दिर मेरी शराफत का डंका बजा रहा है।" राज कमरे के लोगों का चेहरा यों देखता रहा कि मानो ये लोग षड्यन्त्र के द्रोही बन साक्षी देने न्यायालय में भेजे गए हों।

प्रत्येक के चेहरे पर शराबी-रंगीनी थी। चेहरा फक् था। पाप करते पकड़ लिए गए। यह तो बड़ी बुरी बात है। लोगों को चकमे कैसे दूंगा। सामाजिक-रूढ़ियां कैसे मजबूत रहेंगी। इज्जत डूब रही है। हमारी रंगीनी तो लोग जानते ही हैं। लेकिन, आज चोरी करते देखे और पकड़ा गया। अब तो सभी-लोग हेटी निगाह से देखने लगेगें। यह कमबख्त कहां से पहुँचा। चेहरे पर हवाईयां उड़ रही थीं। शराब के प्याले ज्यों के त्यों धरे रह गए। अंगूरी कलपती रह गई। सारी स्वच्छंदता जाती रही।

पाप करते लज्जा नहीं आती। समाज के ठेकेदार तो बने हो और लम्बी-चौड़ी हांक भीतर-भीतर छिपे-छिपे अपनी बहनों की नंगी-जवानी अपने हाथों बरबाद करते हो। शर्मोहया कुछ भी नहीं। धन ने तुम लोगों को अन्धा कर दिया।

और जीवनधनजी, सूद के रुपए एय्याशी में, कामुकता में, बेपर्दगी में, खर्च करते मोह नहीं होता, गरीबों की झोपड़ियां उजाड़ने में भला कौनसा आनन्द आता है। जरा, अपनी उम्र तो देखो। चेहरे में झुर्रियां छायी हुई हैं। बूढ़ापा मृत्यु की घड़ियां एक-एक कर जोड़ती जा रही है। माधुरी को कलपती छोड़, यहाँ

रंगरलियों में कौनसा आनन्द मिलता है। माधुरी की जवानी तड़प रो रही है। न बाल, न बच्चा। फिर विवाह माधवी से करना चाहते हो। तुम यहाँ तराने में मस्त हो, वहाँ पत्नी शिव-मंदिर में शंकर की चेरो बनो पड़ो है। यहाँ से उठते हो या दूं दो-चार धमाके।"—राज ने बड़ी स्वच्छहता से कहा।

विष्णुप्रिया के सामने एक बड़ो समस्या आ खड़ी हुई। योगी की इस निर्भीकता से विष्णु स्तंभित हो गई। साथ ही जीवनधन की पत्नी, माधुरी, की दर्दनाक कहानी भी उसके सामने झूलने लगी। अपने जीवन के प्रति जो घोर अश्रद्धा हुई, भावना उसीके रंग में उच्छृंखल हो उठी। समाज साथ नहीं दे रहा है। समाज के सुधारक भी इस ओर अपनी आंखें बंद किए चुपचाप घिनौनी बातों को सहते जाते हैं। अमीरी के दामन में अवारगी खिला करती है। इस पेशे के प्रति असंतोष विष्णुप्रिया इसीलिए प्रगट नहीं कर रही थी कि लोग तिल का ताड़ समझ बैठेंगे। कोई माई का लाल नहीं, जो पेशे में तब-दीली ला सके। पापी समाज अपनी ही काली-करतूतों का फल इन चकलों में बड़ी निर्लज्जता के साथ सहर्ष पाता है।

विष्णु विचारों में डूबती ही रही। वह घटना से अवाक थी। किस लखलखे की खोज में, यह युवक-योगी पहुँचा था। वेश्या और साधुता। कभी न मेल खाई है और न कभी मेल खा सकती है।

फिर, इस युवक का अकारण-प्रयोजन क्या हो सकता था? शायद, जवानी के ये तराने हों, चाहे वासना की ज्वलंत-भूख

हो। या अमीरों के प्रति प्रतिशोध की भावना हो या नाद का प्रेम हो, या कोई स्वजन-ममत्व हो। नहीं तो, योगी इसतरह चौड़ेआम कैसे भीतर प्रवेश कर सकता है? जीवनधन से उसकी निजी दुश्मनी नहीं। फिर युवक की प्रतिभा, भाव-भंगिमा, उन्नत चेहरा, संस्कारपूर्ण ललाट नैतिक-पवित्रता की ज्योति से जगमग है, जगमगा रही है। स्वरूप नादान। और अनजान।

लेकिन, जीवनधन बारूद उबल पड़े।

तड़प कर बोले:—छोटा मुंह और बड़ी बात। जानता नहीं, मैं कौन हूँ। पलभर में तेरी सूरत विगाड़ सकता हूं। हट जा यहाँ से। शान बगाढ़ने आया है। माधुरी नापाक है और बिष्णु साफ। तुम्हें घरेलू-बातों से क्या मतलब! जाओ, द्वार-द्वार अलख जगाओ! अरी, विष्णु, इसे निकाल बाहर करो।"

राज ने खड़े ही खड़े कहा:—"हाँ, मेरी सूरत आप बिगाड़ सकते हैं। आदमी की सूरत गरीबी और अमीरी में आप जैसे धनीमानी रईस अवश्य बदल सकते हैं। ये झोपड़ियां। ये अकाल। आपही लोगों की करतूतें हैं। सफेदफोसी आप की वड़े निराले ढंग की होती है। कितने अरमान। कितनी सांसारिक-लालसा। आदमी को दो, अमीरी और गरीबी सूरतों में, बदलने वाले आपही जैसे खल-नायक हजारों-लाखों की संख्या में, सारी दुनियां को भेद-भाव, ऊँच-नीच, झोपड़ी-महल, इधर भूख, उधर भरपूर उत्पन्न करनेवाले भरे पड़े हैं। नारी के सौंदर्य को नंगा, पैसे के धोखे में लज्जा की धज्जियां उड़ाने वाले आप ही जैसे कितने छितराए हुए हैं।"

"विशेष, बात नहीं चाहता।"—जीवनधन ने उत्तर दिया। "ठीक! बिलकुल ठीक। अभी-अभी आप बातों में बिष्णु की लज्जा को इस तरह और लोगों के सामने ही नंगी करना चाहते थे। क्योंकि, आपके पास आवश्यकता से अधिक धन है! परि-श्रम करना पड़े, तब तो धन का मोह जागे।

बिष्ण को इस तरह भरी-समाज में, उसके अमूल्य-यौवन को बिनाश करते समय तनिक भी आप को लज्जा न आई। क्यों नहीं! भूखों तड़पते, झोपड़ियों को जलते, पराई गरीब औरतों को कुत्ते की तरह नोंचते, पैसों पर आदमियत बेचते समय आपकोतो बड़ा उल्लास होता होगा। बोलिए, चुप क्यों हैं?"

नशे की घटा फटती जा रही थी। वासना कमरे में हंस रही थी। इच्छाएं, वासना की होड़ ले रही थी। मौन था कमरा। बाहर रजनी— काली। जीवनधन चुपचाप सुन रहे थे। गरीबी के आठ-आठ आंसू, राज के कपोलों पर सूख चुके थे। जहां वासना धूम मचाती है, रूप उसे ही; सुन्दर कहता है।

राज क्या पहुंचा, कयामत आ गई। डंके की चोट से रईसी अपमानित हुई। कामुक-कुत्ते तिलमिलाते रह गए।

कामुक-कुत्तों का हृदय बड़ा डरपोक होता है। हर पल में शंका। प्रत्येक भावना— दासता।

पापी का अंतर रोता है, पर उसकी उच्छृङ्खल—भावना लखलखाती है। छलमल यौवन! इन्द्रियां छटपट!! आत्मा

एक, भावना अनेक ! एक आदमी दूसरे से भिन्न। यही दुनियां। यह एक सच्चा उपन्यास।

जीवनधन की आंखें क्रोध से लबलबा गईं। सांस जोर-जोर से चलने लगी। यदि छूरे होते, तो मार डालने में भी हिचकिचाहट न होती। किन्तु, लाचारी क्या जाने मुसीवत।

फिर; कभी-कभी कोई-कोई पाप भी एक बहुत बड़ा अनुभव होता है। दुनियां के सारे बड़े-बड़े अनुभव प्रत्येक पाप-परिस्थितियों, कठिनाइयों के ज्वलन्त उदाहरण हैं, जिसे दुनियां समझ-समझ कर भी गलती पर गलतियां करती जा रही है। अफसोस है। कन्तु प्यारी गलतियां, मीठी लगती हैं।

जीवनधन की इच्छाएं धन के गर्व से उठी ही जा रही थीं, शिथिल पड़ती इन्द्रियां आदत से लाचार थीं। अंग-अंग निराश थे, पर, वासना भूखी थी। बूढ़ापा की असामयिक चपलता जवानी तो नहीं, किन्तु, अभ्यास की बढ़ती हुई निराशा थी। पापी आत्म-बल खो बैठता है। डर उसे सताता रहता। उसकी अवस्था बड़ी ही दयनीय होती।

एक तो शरावी-रंगीनी, फिर पाप का यह उद्घाटन, जीवनधन के लिए विशेष अपमान की बात थी, क्योंकि माधुरी का उल्लेख— मित्रों और विष्णुप्रिया के सामने— मानो किसी को सरासर जूते लगाने थे। जीवनधन झल्लाया।

"हट जा यहाँ से, बड़ा समाज-सुधारक बना है। साधु के वेष में बाजारों की हवा लेते, शर्म नहीं आती ! बातें तो बड़ी-

बड़ी करते हो, जरा सोचा भी है कि परिणाम क्या होगा। खैर, मैं इसबार छोड़ देता हूँ, आगे यहां पहुँचने की कोशिश न करना। विष्णुप्रिया मेरी है और मेरी ही रहेगी। कुछ भी हो, तुम्हें दूसरों के मामले में खलल डालने की क्या जरूरत! जाओ, कहीं जगह नहीं मिलती, तो राज-फाटक में अपना आसन जमाओ। जाते हो, या कुछ दूसरा उपाय सोचूं! कुंवर साहेब, जंग सिंह को पुकार कर कहो कि इसे गर्दन डाल बाहर निकाल डाले!"

"इन गीदड़भपकियों से कुछ होने को नहीं! आपलोग सीधे अपने-अपने घर चले जाइए! बहनों की लज्जा लूटते-समय, आपलोग आदमियत तक भूल बैठते! मैं इन बहनों की लज्जा लूटते, अब नहीं देख सकता।"

"तो विष्णु तुम्हारी बहन है न? तभी तो इतनी रहनुमाई कर रहे हो! अच्छा भाई, हमलोग तो चलते। तुम्हीं मज़े काटो।" जीवनधन पूरा बोल भी न पाया था कि राज की आँखें तमतमा गईं और हाथों के चपाट जीवनधन के गालों पर धपाधप पड़ने लगे। जीवनधन के सारे मित्र एक, दो कर चोरों की तरह भाग गए।

सीढ़ियों पर से उतरते, और उचक्कों की तरह भागते, कई लोगों को देखकर पानवाले ने सोचा कि मामला कुछ गमगीन मालूम होता है! झट, दूकान छोड़ वह कोठे पर चढ़ गया। कमरे में तीन, अंधकार की तीन छाया की तरह खड़े नजर

आए। जीवनधन का चेहरा सूखा हुआ था। जीवनधन की नजरें बचाकर पानवाले ने अनुमान किया कि जरूर कुछ ऐसी बातें हुई हैं, जिनके कारण ये लोग स्तब्ध दीख पड़ते हैं।

कुछ देर बाद, जीवनधन अपनी गाड़ी पर चढ़ चले गए। रह गए, दो, राज और विष्णु। कुछ क्षण विष्णु को योगी की प्रतिभा के सामने, बातचीत करने का साहस न हुआ।

"मैं जानना चाहती हूं, कि आप कौन हैं? आपने यह काम अच्छा नहीं किया। जीवनधन बदला लिए बिना नहीं रहेगा।"

राज विष्णु को भलीभांति देखने का प्रयास कर रहा था। जिज्ञासा-भरी दृष्टि थी। घर के जल जाने के बाद, जो निराशा संभव होती है, राज को वैसी ही निराशा, आज; हुई। यदि स्मृति ठीक है, तो रहस्य की कोई बात नहीं। आज से २० या २५ वर्षों की एक-एक घटना याद आ रही थी। राज को घर छोड़े हुए २० वर्षों से ऊपर हो चुके थे। याद नहीं, घटना का बाहुल्य। एक-एक घटनाओं की छानबीन करता-करता राज थक-सा गया। चेहरे में तो अंतर नहीं। आंखें ठीक वैसी ही। जवानी से शरीर उभार पर आया है। कद काफी कदम बढ़ा चुका है। कहीं धोखा तो नहीं खा रहा। बिछुड़े आन मिले थे, यह तो कोई-कोई जान सकता था!

"मैं आप को नहीं जानती।"— विष्णुप्रिया ने फिर प्रश्न किया। "मुझे जान-पहचान कर भी तुम्हारा कोई लाभ नहीं होगा। लेकिन, मैं पूछता हूं, इस यौवन-व्यापार से क्या तुम

सन्तुष्ट हो ? जिस विलासिता को तुम इज्जत समझ रही हो, विष्णु; तुम्हारा उपहास है। तुम हर को धोखा देने में अपनी सफलता समझती हो। किन्तु, इस धोखे में कितना दुर्गुण, कितनी निर्लज्जता छिपी है, जानती हो ? पैसे वालों की गर्दन पर छूरी चलाने में तुम गर्व से फूली नहीं समाती, फिर भी समाज तुमलोगों को निर्लज्ज नारी के अतिरिक्त और कुछ नहीं समझता।"— राज ने कहा !

विष्णु के सामने ऐसे प्रश्न कई बार आ चुके थे। पर, शंका का समाधान दुस्तर एवं जटिल होता जा रहा था। ऐसी सस्ती सहृदयता भी धूर्त्तता है। पर, वेश्या को सुधारने की क्षमता सहृदयता नहीं पा सकती। भावना उन्नत है; फिर भी पानी का बुलबुला है। वेश्या पर विश्वास कोई नहीं करता। ये सारी बातें, विष्णु ने चाहा कि साफ-साफ कह दे, पर कह न सकी। आंखों से मोती ढुलक पड़े। राज व्यथित हो उठा।

सहानुभूति व्यथा देख जागती है। सहृदयता मनुष्य का मार्मिक-पक्ष है। अभी, बहन, एक जो रो पड़ी थी; करुणा का अतिरेक, राज के लिए असह्य हो उठा। राज अपना संकल्प भूल गया। गेरुआ-वस्त्र की एक कोर से विष्णु की आंखें पोछ डाली। नारी के अंगों का स्पर्श, योगी के लिए नूतन अध्ययन था। पर, इस भावना में स्नेह छिपा था। भाव पवित्र, एवं निश्छल था। विष्णु को, आजतक, इतना विराट अनुभव नहीं हुआ था ! वह सोच रही थी; अनेक पुरुष छलिए थे, यह

वर्त्तमान पुरुष आदर्श है। राज के अंगों में न तो सिहरन, और न रोम रोमांचित।

"न रो, विष्णु! मैं जानता हूँ, तुम्हारा हृदय कोमल है, भावना पवित्र है, फिर भी, पैसेवालों की दुनियां में नारी की पवित्र मूर्त्ति भी विषाक्त, भयावह हो रही है! नाच-रंग के बीच वासना की बड़ी-लम्बी खाई खोदकर पैसेवालों ने नारी को सच-मुच अबला बना रखा है। मैं जीवनधन से बदला लूंगा। धनिकों को दंड दिए बिना मुझ जैसे लोग नहीं रह सकते।" राज ने उत्तेजित हो कहा। "क्या दंड मिलेगा?" मृत्यु? "हाँ, खून!! पर तुम्हें साथ देना पड़ेगा! तुमने अभीतक मुझे न पहचाना। आश्चर्य?" राज ने उत्तर दिया। "किन्तु, आप जैसा कह चुके हैं, माधुरी देवी को अनाथ बनाकर आपको क्या लाभ होगा। नारी नारी के दुःखों को समझ सकती है। मैं आप को न तो जानती और न पहचानती। ऐसा मालूम होता भाई-बहन बिछुड़े मिल गए हों।"

"तुम्हारी बात है तो ठीक, किंतु, घरेलू बातों के पचड़ों से डरकर अन्याय कैसे सहन कर सकता हूँ। यदि माधुरी देवी को विधवा होना लिखा है, तो कोई शक्ति नहीं रोक सकती! और सनाथ होकर भी बिचारी कितना दुःख झेल रही है। धन पाकर भी स्त्री संतुष्ट नहीं हो सकती। पैसों से भी कभी संतुष्टि हुई है। वैभव का कौन ठिकाना; आज आना और कल जाना। सोने की लंका आज कहाँ है? रावण का वैभव-प्रताप मिट चुका

है। अच्छा, मैं जाता हूं, फिर, मिलने की कोशिश करूंगा ! रात बढ़ती जा रही है। मुझे विलास-गृह जाना है।" राज ने कहा।

"क्या कहा, विलास-गृह ? आप को यहाँ रहने में कोई कठिनाई नहीं होगी।" विष्णु ने बड़ी जिज्ञासा से कहा ! मुझे यहाँ रहने में कोई असंतुष्टि नहीं ! लेकिन, माधवी; मेरी राह देखती होगी। मंदिर से भटककर, इधर चला आया हूँ ! किन्तु, अच्छा ही हुआ। देख तो लिया, धनबालों की दुनियां। मैं, फिर अवसर पा, मिलने की कोशिश करूँगा ! तुम विश्वास रखो ! मेरी वहन ! मुझे जाने दो, न रोको !" राज ने विह्वल हो कहा।

विष्णु को "बहन" शब्द अनुठा लगा। एक वेश्या को "बहन" कहने का साहस भी कोई कर सकता है। यह बात उसे आज ही मालूम हुई। यह दुनियां है। भलों की भी कमी नहीं, पर, बुरों की अधिकता पैसों की दुनियां में अधिक हो रही है। लोग पैसों के मोह से, आदमियत खोते जा रहे हैं। विप्लव अवश्यंभावी है। आंधियां आने को है, सिर्फ, हिम्मत की आवश्यकता है।

"जाना चाहते हैं, तो जाइए, पर माधवी देवी को मेरा प्रणाम अवश्य कह देंगे।" विष्णु ने कहा। राज चलने को तत्पर हुआ। दो सीढ़ियां पार कर चुका। विष्णु भी साथ रही। पर अंतिम सीढ़ी तक पहुँचते ही, विष्णु ने वड़ी जिज्ञासा से पूछा "और अपका नाम ?"

नीचे उतरे हुए राज ने कहा:—पीछे बतला दूंगा। अब मैं चला जाऊँगा ! व्यर्थ की तकलीफ क्यों करती हो ?

राज चला गया। हाँ गया। क्या आया और क्या चला गया ! एक पहेली रह गई ! और, विष्णु बड़ी उत्कंठा से देखती रह गई। अनजान पथिक भ्रातृ-भाव का संदेश लेकर आया था। संदेश उच्च था।

विष्णु की आंखें सिक्त थीं। सनेह के पूर्ण-आवेग से, कि हृदय की विरल अनुभूति से। विष्णु सोचती रही। काफी बात-चीत हुई, पर उसने अपना नाम नहीं बतलाया। बड़ा भला मालूम पड़ता है। जो बोलता है, साफ, किन्तु, जीवनधन से वैर मोल लेने से क्या फायदा हुआ। विष्णु का कलेजा, यह सोच धड़कने लगा। भगवान भला करे, उत्साही युवक मालूम पड़ता है ! ईश्वर चिरायु रखे। सोने के कमरे में विष्णुप्रिया चली गई। भगवान से मन ही मन मनौती मांगी।

पानवाले की दूकान बन्द हो चुकी थी। राज चलता चला। कुछ दूर पर, लोगों की भीड़ लगी हुई थी। काफी शोरगुल हो रहा था। राज तेजी से उस ओर बढ़ा। मिठाई की एक सजी-सजाई दूकान थी। दो युवकों को घेड़े भीड़ खड़ी थी। दो अस-हाय युवक उदास-खिन्न सर झुकाये खड़े थे। कोई कह रहा था:—तन्दुरुस्ती रहते भी जुआ-चोरी कर पेट भरते लज्जा नहीं आती ! जरा, मुह तो देखो, निरपराध बना बैठा है। आग लग जाये, ऐसे शरीर को ! जब पैसे नहीं थे, तो रामू की मिठा-ईयां खाने में कौन सा मजा आ रहा था। पैसे देते हो या नहीं। कई दिनों तक तो उचक्कों की तरह भाग गए ! न जाने किस बदचलन-मां का दूध तुम दोनों ने पीया है !

भीड़ को चीरते हुए राज ने कहा:—"खबरदार ! भूलते हो, मां किसी की बदलचलन नहीं होती। ऐसी बुरी बातें मुंह से नहीं निकालना। आदमियत दुनियां से लोप हो जायेगी। सारी भीड़ चकित हो उठी। असहाय युवकों को रामवाण मिला। पर-कटा पंछी निःसहाय आंखो से अपनी दयनीय-दशा देख रो उठा था। फरेबों की मतलब-परस्त दुनियां कितनी निर्मम थी।

इतने में दूकानदार ने चिल्ला कर कहा:—जाओ, अपनी अलख जगाओ ! हमारे मामले में बोलने का तुम्हें क्या अधिकार? बड़ी हमदर्दी दिखाने आए हो तो इन उचक्कों की उधार चुकती कर दो, तो हम भी समझें, बड़े हमदर्द हो। नहीं तो, अपना रास्ता देखो ! हमारी मिठाइयां मुफ़्त की नहीं हैं। इन अभागों से चोरी डकैती बढ़ती जा रही है। चेहरा तो देखो, चोर की तरह सकपका गया है। रोज चकमा दे-दे भागता चलता था। अब कहो, यार, क्या खबर है ! ठाकुर देखते क्या हो, कुरते उतार लो !" योगी की ओर देखते हुए, उसने फिर कहा:—झूठे हराम-खोर हमदर्द तो गली-गली मारे फिरते हैं !" योगी का क्रोध उमड़ उठा। सनें तन गईं ! आंखें ज्वालामुखी लबलबा उठीं ! छोड़ दो, इन युवकों को ! ठाकुर इनके कुरते न उतारो ! चलो मेरे साथ विलास-गृह। उधार चुकती की जायेगी !

विलास-गृह का नाम सुन दूकानदार चकरा गया। उसे आशा हुई।

"मुझे माफ़ कीजिए ! मुझसे गलती हुई। यूंतो उधार से मैं डरता नहीं, लेकिन इन लोगों के चकमें से मैं परेशान हो चुका

था। आपने मेरी मदद की। आप क्या बिलास-गृह में रहते हैं?" दूकानदार ने कहा। और भीड़ की ओर संकेत कर उसने फिर कहा:—"और, आपलोगों को काम-धंधे नहीं! जो इतनी भारी भिड़ लगाए हुए हैं। जाइए, अपना-अपना काम देखिए। ठाकुर, इनके कुरते छोड़ दो। सुबह जाकर उधार चुकती कर लेना।" भीड़ हटती गई और योगी इन युवकों के समीप आया। युवकों की आंखें इसतरह झुकीं हुई थी ग्लानि के भार से कि योगी की ओर देखने का साहस भी नहीं हो रहा था।

"जाइए, बाबू साहब, आईन्दा ऐसी हरकतें न कीजिएगा! हम दूकानदार हैं! मुफ़्ख़ोर नहीं।"

युवकों के दिल में आया कि कहदे कि मुफ्तखोरी से ही तो तुम्हारी तोंद बढ़ती जा रही है और कहते हो, मुफ्तखोरी नहीं करते! यह कैसी दंभमयी सफेदपोशी। पर, लाचार क्या जाने, अलीफ लैला की कहानी। लाचारी बड़ी मुसीबत है। बड़ी निःसहाय-पतित-अवस्था है। मनुष्य की कातरता सबसे बड़ा अन्याय है! पर धनिकों की दुनियां मतलब परस्तों की हैं। गरीब की पतितावस्था पर ये अमीर दिलकश हंसी हंसते हैं। पर संतोष गरीबों का साथ नहीं छोड़ता! यही गरीबी का पराजय है।

युवक ने दुनियां की दुरंगी चाल देखी थी। पर, मतलब की दुनियां में आदमियत हताश हो खड़ी थी। बड़े आदमी की आदमियत, दुनियां देख थक और निराश हो चुकी थी। बिचारों

की क्रांति युवकों के हृदय में धूम मचा उठी थी। पर, भावना का कार्य-पक्ष अभी मौन था। लहरियां आ रही थीं और जा रही थीं! और ये युवक धरती की ओर आंख गड़ाए खड़े थे।

योगी ने इन दोनों की पीठों पर मीठी थपकियां लगाईं। युवक चौंक पड़े।

"खड़े-खड़े क्या सोच रहे हो? सोचने से क्या सवेरा हो सकता है। सोचो कम, काम करो अधिक। काम भी सोच-विचार कर करना सीखो! कहाँ रहते?" राज ने कहा। युवकों को कुछ धीरज हुआ। सहृदयता जागी। मौन वाणी निखरी और शब्दों में झलमला उठी! "हमलोग तो आवारे हैं। आवारों का क्या ठौर-ठिकाना? जहाँ-तहाँ सो रहते हैं। दिन कट रहे हैं, इतना ही हम जानते हैं! निराश, असफल युवकों पर दुनियां ताना देती है, अपने लोग भी शंकाएं करते हैं। कांतिपुर-विद्यापीठ से शिक्षा हमदोनों ने पाई है। काम नहीं मिलता! मारा-मारा फिर रहा हूँ! क्या करें, गरीबी के कारण शिक्षा अधिक न मिल सकी! घर में बूढ़ी-मां हैं और दो बहनें! हम दोनों भाई हैं।"

निराशा का स्वर गंभीर हो उठा था। निराश और असफल युवकों को निराशाएं जितनी कठोर होती हैं, उतनी कठोर न तो गुलामी की जंजीर मालूम होती और न विधवा की निर्मम आशाएं होतीं। किंतु, हर असफलता हमारी कमजोरी है, जो बाद में खटकती है, वर्त्तमान से हमारा मोह अधिक रहता।

"क्या मेरे साथ चल सकते हो ?" राज ने युवकों की ओर इशारा करते हुए कहा।

"हम दोनों को साथ ले जाना, आफ़त को निमंत्रण देना है, निराश की छाया भो नैराश्य होती। हमलोगों के लिए, तो राज-फाटक ही अच्छा। आप व्यर्थ कष्ट कर रहे हैं ?" "यह कष्ट नहीं, आवेदन है। राज-फाटक में कितने दिनों से रहते हो ? सुना है, बड़ी पवित्र जगह है। एकबार देखने की इच्छा उत्कट होती जा रही है। ठाकुर, अभी ही विलास-गृह हमलोगों के साथ चलो। उधार सांप-सा काटे डालता है।"

दूकानदार झट बोला:—"यह भी, आप क्या मज़ाक करते हैं। रोजगार रात में नहीं होती। सुबह, ठाकुर जायेगा, उतावलापन से कोई लाभ नहीं। मैं आप पर विश्वास करता हूँ।" "भूल करते हो, दूकानदार ! रात में दुनियां के जितने घिनौने व्यापार होते, दिन तो हंस कर ही रह जाता। दूकानदार और विश्वास। असंभव ?" राज ने उत्तर दिया।

विलास-गृह का नाम सुनते ही, दूकानदार को विश्वास हो गया था कि अब चुक्ती होने में फ़क़त कोई देर नहीं। अपनी झूठी भलमनसाहत क्यों न बघार दे।

राज ने युवकों की ओर संकेत करते हुए फिर कहा:—"चलो भाई, रात अधिक होती जा रही है। रातभर बातचीत होगी। मनोरंजन होगा। तुम्हारी तरह मैं भी एक युवक हूँ, योगी हूँ, तो यह कोई बड़ी बात नहीं।"

दो कैदी धीरे-धीरे चल रहे थे। पैरों में उल्लास की गति न थी। ग्लानि से मन चूर हो चुका था। फिर भी, निराश चलना ही चलना जानते थे। पहरेदार की तरह राज पीछे-पीछे चल रहा था। निस्तब्ध वातावरण था। रात की व्यग्रता को कुत्तों की झपट-झोल भूकें, और भी बढ़ा रही थीं। कुत्ते चिल्लाते नहीं भूकते हैं। क्या, रात की काली करतूतें देखकर? रात काली और काली। अंधकार—भयंकर। निद्रा में जन-रव परिश्रांत, चुप, और अनजान। राह पर तीन; सभी मौन। रात्रि का रौद्र-रूप।

और, राज ने स्तब्धता भंग करते हुए पूछा:—

और, तुम्हारा नाम?

"गोविन्द।"

और, तुम्हारा जी—"निर्मल":—उत्तर मिला।

और आपका—"राजराघव।"

पर, गोविन्द झट बोला:—"गरीबों के कहीं नाम होते हैं। नाम तो धनिकों का होता है। हम तो अवारे हैं, अपना-अपना नाम बता माँ की लाज क्यों तोड़ डालूं।"

"अधिक निराश न हो। तुमलोगों का भविष्य सुन्दर होगा। जब युवक ही निराश हो जायेंगे, तो दुनिया किस पर मचलेगी?"—राज ने उत्तर दिया।

"भूल करते, योगी! पैसों की दुनिया अभागों पर नहीं मचलती। आंसू बहाने से रोना नहीं होता। दुनियां बेढंगी है। हो सकता

है कि मेरे विचार आपसे न मिल सके। अजीब दुनियां है, सत्य-पथ बड़ा कंटकाकीर्ण है। सच्चे बनिए, धोखा खाइए। झूठ बोलए, डाका डालिए, धनिकों की जी-हुजूरी कीजिए, बेड़ा पार है। आप तो योगी हैं, दुनियां की दुरंगी चाल को, शायद न समझ सकें। फिर भी, पैसे वालों ने, इस दुनियां को रहने काबिल नहीं रख छोड़ा। नरक भी शायद, इतना भयंकर नहीं होगा।" गोबिन्द ने साहस-बांध कहा।

"योगी का अर्थ तुम गलत समझ रहे हो। योगी, दुनियां से परे होकर भी, दुनियां से दूर नहीं भाग सकता। दुनियां से भयभीत होने वाला कायर है, नपुंसक है, उसे जीने का कोई अधिकार नहीं। हाँ, तुम्हारे विचार समय के अनुकूल; फिर भी सफलता के प्रतिकूल मालूम पड़ते हैं। ईश्वर करे, तुम्हारा स्वप्न, जग का जागरण हो।" राज ने उत्तर दिया।

निर्मल अभीतक चुप रहा। वह अपने हृदय के मुक्तउद्‌गार छिपाए बैठ रहा। हृदय के उद्‌गार छिपाए नहीं छिपते।

"योगी जी, हमदोनों का चोला बड़ा दुःखी है। द्वार-द्वार घूमे, काम न मिला। अब, आप ही बतलाइए, क्या किया जाय। शिक्षा भी पूरी न हो सकी। घर में चूहे दंड पेल रहा है। न जाने, माँ कैसी होगी। देखे हुए, एक वर्ष व्यतीत हो चुके। समाज हमपर थूकता है, दो बहनें जवान हो गईं, विवाह का पैगाम लेकर-जहाँ जाता हूं, दुत्कार दिया जात। जवानी किसकी फूटी, और दर्द किसे पैदा हुआ। वाह री दुनियाँ।"

निर्मल इतना कह कर चुप हो गया। अधिक बकना भी नहीं अच्छा !

"निर्मल, इतना हताश होने से काम नहीं चलेगा। दुनियां में आबाद रहना चाहते हो तो रईसी का नाश करदो। दुनियां में जबतक धनी रहेंगे, गरीबी भगाए भाग नहीं सकती। मिहनत करके भी पैसे नहीं मिल सकते। यदि, इस दुनियां में; मिहनत की कीमत होती तो आज बड़े-बड़े महल, बड़े-बड़े सिंह-द्वार, बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएं, बेइज्जती की भूखी-तड़पती वेश्या-मंडियां नहीं रहतीं। धैर्य से काम लो; क्रांति धीरज की आनुगामिनी है, याद रहे।"

गोविन्द तड़क कर बोला:— "उपदेश देने से तो काम बन नहीं सकता। योगी के चोले से भीषण चिन्गारी कहाँ से फूट निकली है। आवारे का साथ आप कितने दिनों तक दे सकते हैं। दुनियां मुझपर थुकती है, और आप प्रशंसा की चादर बिछाना चाहते हैं।"

"कोई किसी का साथ नहीं देता। समय सबसे बलवान साथी है। समय के साथ चलो। मौके को चूमो। सफलता कदमों को चूमती चलेगी। घबड़ाते हो। मूर्ख ! जठर मूर्ख !!" राज ने कड़क कर कहा। गोविन्द अचंभित रह गया। क्या कहे, क्या नहीं।

"निर्मल, तुम्हें भी मेरा साथ देना पड़ेगा ! भूलो नहीं, तुम्हारी भलाई इसी में है।" राज ने निर्मल को संकेत कर कहा !

और इधर—

प्रतीक्षा की डोर में माधवी डोल रही थी। निशि की अंधियारी बढ़ती जा रही है। कहां चला गया-- मेरा राज! पुरुष बड़ा छलियां होता है। नहीं; जवानी का दोष है। सुलेखा और प्रियवासकी निद्रा विभोर है, और मैं जाग रही हूँ; मन के कौन से तरंग उठ रहे हैं। पापिन रात, जल्द भाग जा। मेरा पथिक भटक रहा है। प्यासी जवानी उरोजों के बल क्यों इठला रही है। रंगीन नैन कामनाओं से क्यों पीड़ित हैं। बता अयि रजनीगंधा के पराग, अंग-अंग, अनंग-संग क्यों मह-मह कर उठा है!

सुलेखा ने फाटक को बंद कर दिया होगा? शायद, फाटक बंद देख, लौट गए होंगे? क्या समझा होगा, नारी का आतिथ्य-सत्कार कितना ओछा है। क्यों भीड़ में बिछुड़ गई? शिव-मंदिर में ही रुक जाती? तो, प्रतीक्षा की रात नहीं जोहनी पड़ती।

अपने शयन-कक्ष में माधवी चहलकदमी करती हुई सारी बातें सोचती जाती। मन व्यग्र होता जाता। चिन्ताएं भयभीत करती जातीं। हृदय धड़कता जाता। हृदय थाम, दबे-दबे माधवी ने झरोखे खोल राह की ओर कईबार नज़र दौड़ाई, पर, कोई नज़र नहीं आया। फाटक बन्द है, और कोई किस भांति आ सकता है। माधवी, यह सोच, सुलेखा के कमरे में गई। सुलेखा के बाल बिखरे थे। आंखें अज्ञात-प्रतीक्षा में उनीदीं थी। माधवी ने सुलेखा को झकझोरा। उनीदीं सुलेखा माधवी से लिपट गई।

जाग्रत से स्वप्न ही अच्छा। "दीवानी हो गई, क्या, देखो, मैं खड़ी हूँ—माधवी पलंग से हटती हुई बोली"। सुलेखा ने आँखें खोली। साक्षात् माधवी खड़ी थी। ओह, स्वप्न कितना सुन्दर था। जवानी की रातें थीं! मस्ती का पहरा था। और, अक्षत् यौवना सुलेखा थी। फिर भी दासी—

"देखो, सुलेखा, फाटक खोल दो। उनके आने में बड़ी देरी हो रही है। डर लगे, तो कहो, मैं भी साथ हो लेती हूं।" माधवी ने सुलेखा का हाथ धर कहा। "नहीं तो! डर काहे की। आधीरात तो बीत चुकी होगी?" सुलेखा बोली! "पगली कहीं की, रात इतनी जल्दी कटती। चलो मैं तुम्हारे साथ चलती हूँ। प्रियवासकी को जगाना ठीक नही" माधवी बोली। "क्यों? वह भी साथ होगी, तो भरोसा···बातों की भनक पाते ही प्रियवासकी जाग उठी। लो, यह तो जाग गई। बड़ी उम्र हो तुम्हारी।" माधवी ने बड़ी प्रसन्नता से कहा, "देखो, वासकी, सुलेखा अकेले में डरती है। मैं भी फाटक तक चलती हूँ। तुम्हारा सहारा खोजती है—सुलेखा।" माधवी ने प्रियवासकी को संकेत कर कहा।

और तीनों—

चली फाटक की ओर—कितनी सुन्दर भावना-कल्लोल सत्वर फाटक पहुँच गई। शीघ्र। अतिशीघ्र। आश्चर्य की कोई बात नहीं। फाटक खुला। फिर भी, कोई नज़र नहीं आया। विकट समस्या। समाधान प्रतीक्षा ही प्रतीक्षा। तीनों फाटक

खोल लौटना ही चाहती थी कि तीन सज्जन आते हुए नज़र आये! इधर तीन—उधर तीन। "फाटक के सामने कौन खड़ा है? राज ने पुकार कर कहा। कौन राज?" "मैं हूँ, माधवी।" सीधे चले आओ।" माधवी ने पुकार कर कहा। परिचित आवाज़ समझ, राज तीव्रता से आगे बढ़ा। पीछे-पीछे गोविन्द और निर्मल! इतनी देर में प्रियवासकी, रौशनी ले आई। अब चेहरा साफ-साफ झलकने लगा।

सुलेखा बोल उठी:— श्रीराज के साथ, नाटे कद का गौरा युवक—घुंघराले बाल, तेजोमय शरीर वाला चला आ रहा है। "और हाँ, सुलेखा, धरहरा बदन वाला श्यामला, नहीं सांवला एक युवक और उसके पीछे-पीछे चला आ रहा है।" प्रियवासकी बोली। माधवी हिरणी-सी दौड़ फाटक को आई। कौन पुजारिन और किसकी पूजा। जवानी-दीवानी, पुरुष मात्र की पूजा।

फाटक के भीतर आते हुए राज बोला:—"क्षमा करना। कई झंझटों से अधिक देर हो गई। ये दोनों मेरे गुरुभाई हैं। यहीं टिकने का विचार हमलोगों ने ठान लिए हैं। हाँ, मंदिर में खोजा-खाजा, तुमलोग कहीं नहीं मिली। देवी। चुप क्यों हो?" "भीतर चलिए, बातें, पीछे होंगी। रात तो अपनी है।" माधवी ने उत्तर दिया। "धन्यवाद। कोटिशः धन्यवाद।" राज ने मुस्कुराते हुए कहा। राज, गोविन्द; और निर्मल भीतर आए। राज अपने कमरे की ओर इन दो गुरुभाइयों को ले चला। माधवी, सुलेखा, और प्रियवासकी भी उसी ओर मुड़ी।

तीन अतिथि—तीन सेविकाएं। कच्च में पहुचकर मृग-छाला पर राज बैठ गया। वाहें परासते हुए राज बोल उठा:—"आओ, गुरुभाई, इसीपर थोड़ी देर बैठ रहें। मेरा तो यही आसन है। दोनों गुरुभाई बैठ गए—एक ही मृगछला पर। तीन नारी और और तीन पुरुष—सृष्टि, आनंद और प्रलय।

गोविन्द को आश्चर्य हो रहा था कि अलकापुरी तो नहीं पहुँच गया। संगमर्मर के धरातल पर मृगछाला का आसन। स्वर्ग में मानो पवित्र शांत-भावना। इतना बड़ा महल और ये ही तीन रखवाली करने वाली। स्वपन तो नहीं, गरीबों की मीठी कल्पना तो नहीं। सजा-सजाया कमरा। मंगल-कलश। भारतीय-संस्कृति का मंगल-भावना। गोविन्द सोचता-सोचता कुछ भी न सोच सका। एक पहेली रह गई।

गोविन्द की ओर सुलेखा अपलक ताक रही थी। नाटे कद का सुन्दर युवक—फटे-पुराने कपड़ों में ही अपना तेज विकीर्ण कर रहा था। और सुलेखा देख रही थी। एक ओर, जवानी और दूसरी ओर, गरीवी। एक उग्र, दूसरी व्यथित। जवानी में मिट्टी का रुप सुन्दर हो जाता, और बूढ़ापा में रुप मिट्टी में छिप जाता। रुप मिट्टी है, मिट्टी के रुप अनेक हैं! गोविन्द का रुप सुलेखा के लिए चित्ताकर्षक लगा। रुप की प्रशंसा सहज होती है। भावना की प्रतीक्षा पीछे।

इतने में प्रियवासकी भोजन की सामग्री ले आई। मधुर-मीठी मिठाइयों तीन थालों में सजी-सजाई रही।

"तीन थालियां? अनर्थक।"—

राज ने अचंभित हो कहा। माधवी राज का उद्देश्य समझ गई।

"एक बड़ा-सा थाल ले आओ। ये तीनों एक साथ ही भोजन करेंगे। प्रियवासकी! तुम तो नादान की नादान ही रही।" माधवी ने प्रियवासकी को संकेत करते हुए कहा।

निर्मल हंस पड़ा। हंसी भी कहीं रुकी है? पुरुष भी कभी रुका है?

प्रियवासकी ने एक चितवन निर्मल की ओर फेरी, और थाल लाने को चली गई। कैसी लहरें इधर से आईं और उधर से लौट गईं? क्या सितम, हिरणी भाग निकली। निर्मल देखता रह गया। अवाक् रह गईं—दो मिठी-छूरियां। क्या भागी, क्या निकली निकलती-निकलती खिसक गई।

राज निर्मल की मनोदशा का अध्ययन कर रहा था। गोविंद चुप था—गोरी सुलेखा में। मग्न थी इन्द्रियां— कामनाओं के चित्रपट में। माधवी निहार रही थी— राज की भुजाओं को। खिलखिलाती जवानी को। अंग-तापमान तीक्ष्ण था। लोल इच्छाएं लहक उठी थीं।

जवानी लहकती है— अंगों से रार मचाने को।

माधवी अनुभव कर रही थी। पर, लज्जा में कामना विनम्र थी। रूठे को मनाना नारी जानती है; पुरुष कभी भी संतुष्ट हुआ है। उसे और चाहिए, विशेष चाहिए; सभी चाहिए। लेकिन, चाहने से क्या होता है, एक पागलपन है।

माधवी को राज मिल सकता था; पर, रूप को राज नहीं। सुलेखा को गोविन्द मिल सकता था; पर, आत्मा को परमहंस नहीं। प्रियवासकी को निर्मल मिल सकता था; पर, प्यार का अंत नहीं। जीवन का अंत ही निर्मम-दुखान्त है। मैं पागल तो नहीं होगई? माधवी ने मन ही मन सोचा।

बड़ा-थाल आया। तीनों सज्जन एक ही थाल में भोजन करने लगे। तीन युवती मांग की प्रतीक्षा में खड़ी रही। भोजन अंत हुआ, और जभाइयां आने लगीं। आकाश के झिलमिलाते तारे मौन पड़ गए। प्यास तक न बुझी।

राज ने जल पीए। गुरुभाई खाकर निश्चिंत हो गए।

कालीन बिछाई गई, और तीनों खर्राटे लेने लगे। माधवी अपने शयन-कक्ष को गई। सुलेखा और प्रियवासकी भी सोने को तत्पर हुई।

रात ढल रही। अंधकार भागता फिरा। सूनसान रात बीत रही। तारे आंखें भटकाते ही रह गए।

निद्रा में जन-रव धीम पड़ा। क्लांत-मानव स्वप्नों में अपना-अपना रूप संवारने लगा। नवीन-स्फूर्त्ति की प्रेरणा जाग उठी। आत्मा परमहंस से मिला, फिर भी दुनियां की दुनियाबी ही रही। देखने भर को, जग सो रहा।

दिन का परिश्रम रात के स्वप्नों में ठगा-सा रह जाता। परिश्रम से इन्द्रियाँ शिथिल पड़तीं, रात से क्लांति दूर भागती।

माधवी पलंग पर नाना भांति सोचती रही। निंदिया न

लागी। अंग-अंग शांति न पा सकी। मीठे सपने, और रात्रि का एकांत प्रहर। माधवी सो न सकी, उनींदी रह गई। अकेली रात, और अकेला मन, फ़िर अनजान यौवन। नारी और रात–एक पतझड़, दूसरी उदासी। पिरोई माला, हर फूल मंह-मह। चग्घाड़ती दानवी वासना— अधरों में पिपासित, नैनों में बेसुध लज्जा, सकुचाए वस्त्र, तिरमिराई केश–वल्लरियां।

रात बीत गई, उषा की लाली देखने को न मिले, सूरज की किरणें दीवरों को पार करती खिड़कियों के अधखुले द्वारों से झांकने लगीं।

राज आँखें मलते-मलते उठा। ध्यान का समय। अचानक बीत चुका। योगी दिल मसोसकर रह गया। मूर्खता पर बड़ी ग्लानि हुई।

"भाई गोविन्द, उठो तो सही। सूरज उग आया है। और निर्मल, खर्राटे छोड़ो, स्नानपूजादि के लिए भी तैयार होना है।"

राज ने दोनों गुरुभाइयों को झकझोरते हुए कहा।

गोविन्द अलसाया-सा उठा। निर्मल की आंखें किरणें पा तिरमिरा गईं। बड़े आश्चर्य की बात है। न तो माधवी ही जागी है और न सुलेखा, न तो प्रियवासकी।

राज ने सोचा कि न सोच सका! माधवी-कक्ष की ओर मुड़ा।

किवाड़ बंद था, पर खिड़की खुली हुई थी। अलसाया यौवन रूप में जा छिपा था। अंग-अंग के शांत-भाव मुक्त-भावना

से भी स्वच्छंद थे। केवल पीड़ा की व्याधि अविकल रह गई थी। बिथराए केश तकियों को मेघ-मालाओं में छिपाए थे, कि मेघ सघन हो शांतभाव से मुखमंडल को शीतल कर रहा था।

श्वेत-चादर में टेढ़ी-मेढ़ी लकीरें पड़ गई थीं। सूरज कामिनी पर खेल रहा था। माधवी सोई हुई, शांतमूर्ति-सी अचेतन थी।

शरीर के अम्बर शिकनों में पूरे आघात पा चुके थे। राज ने पहली बार नारी को अचेतन देखा था। विचित्र आकर्षण था। नारी की उनींदी आंखों की जिज्ञासा बड़ी ही मार्मिक थी। अधरों की प्याली अधूरी थी। राज ठगा-सा रह गया। दिल धड़कने लगा। भावनाएं दौड़-धूप मचाने लगीं। दिल को पकड़े या भावनाओं को जकड़े। फिर भी, अंतर का रहस्य भावनाओं में ओझल हो जाता। कौन सत्य? कौन अनाम विकार?

राज की आंखें अधिक देर न टिक लगी। खिड़की को धीरे से बंद कर राज उल्टे पांव लौट आया।

"गुरुदेव, इतने हड़बड़ाए हुए क्यों हैं?" गोविन्द ने राज को संकेत कर कहा।

"नहीं तो, यूं ही रात की घटनाएं सोच रहा हूँ। बड़ी विचित्र-दुनियां है। चलो झरने से स्नान कर लें।"—राज ने उत्कंठा से उत्तर दिया।

"इतनी जल्दी क्या है, उनलोगों को भी जगा देना चाहिए। अकेला घर छोड़ स्नान को जाना उचित नहीं।" —निर्मल बोल उठा।

"उचित और अनुचित का विचार मनुष्य भला क्या कर सकता है? भाव जिसे करने कहे, वही तो उचित और भावना जिसके पीछे भागे— सम्पूर्ण अनुचित। मानवीय-मोह का तांता तो लगा ही रहता। मिर्मल, फिर भी तुम्हारा मोह कुछ अंश तक अनुचित ही ठहरता है। गरीबों की सहृयता भूखी होती है। और, तुम्हें तो अपना घर देखना है।"—राज ने उत्तर दिया।

निर्मल कुछ बोलना ही चाहता था कि आ धमकी— प्रियवासकी। अलसाई हुई, कपोलों में फाग उड़ाती हुई; उचित समय पर पहुँची। उसकी छवि क्लांत थी। अंग-अंग का वसंत रस-लीन था; आंखें लज्जाभार से कुछ झुकीं थीं, पलकें तिरछी स्वप्नों में पिरोई थीं। छवि एक; इच्छाओं का समुद्र— अनंत।

इच्छा भी कहीं रूकी है, वासना भी कहीं दबी है। चांद देखने भर को बादलों में छिपा था। ज्योत्स्ना-सी प्रियवासकी साक्षात नारी-रूप में खड़ी थी। निर्मल निर्निमेष पंछी की कातरता निहार रहा था। नारी के सौंदर्य में मनुष्य अपनी स्थिति भूल बैठता है। आनन्द क्षणिक, फिर भी मौन-विज्ञान मन का एकान्त— विश्राम। गरीब के अरमान जब प्यार में खिलते तो क्षण स्वर्णिम-सा जगता। गरीब के भावनाओं की रामकहानी भी क्या रसभरी कहानी है?

निर्मल देखता रहा। मन टिका, कि न टिका फिर भी, भाव को चितवन ने आ घेरा। निर्मल ने सोचा, नारी की कमनीयता

भी कितनी रसभरी होती है। विराट-सौंदर्य का यह अंश कितना मोह-भरा है। गरीबी क्या जाने, नारी की कमनीयता; भैरव-अकिंचन-अनुराग, षट्रस की परिभाषा। हाय री; दम तोड़ती—गरीबी।

राज ने निर्मल की पीठ पर थपकी दी, और निर्मल का स्वप्न भंग हुआ।

"कितनी सस्ती भावुकता है— तुम्हारी। यह दुनियां है; अल्हड़पन से काम चलने को नहीं— निर्मल!"—राज ने तत्काल कहा।

"पर, जिसे दुनियां भावुकता कहती, मैं उसे ही भावना कहता हूँ। शायद, गुरूदेव, मेरा यह बिचार आपको पसन्द न हो। शंका तो इसी बात की है।" निर्मल ने उत्तर दिया।

"तो, गरीबी को भावना ही क्यों नहीं समझते?"—राज ने झट कहा।

"समझने की कोशिश तो कर रहा हूँ, देखूं कब तक समय पल्टा खाता खाता है। गुरूदेव! मैं आपकी बातें अभी समझने में असमर्थ हूँ।"—निर्मल ने उत्तर दिया।

"छोड़ो, इन बातों को। दिनमान प्रखर होता जा रहा है। स्नान भी हमलोगों को करने हैं।"—राज ने कहा।

निर्मल को शंका होने लगी, क्या वास्तव में प्रियवासकी आई थी या मनोविकार का विकल अनुराग था।

झरना झिर-झर झर रहा था। रश्मियों में फूहारें चमचम

कर रही थीं। स्नान किए, और तीनों अपने कक्ष में पहुँच गए। कपड़ों निचोड़ कंधे पर डाल— राज एक भारतीय-किसान प्रतीत होता था।

खुला शरीर, रोम-रोम की कंटकाकीर्ण ज्योति में निहाल हो रहा था। चौड़ी थाती, कसी हुई बाहें, और भड़कती हुई भुजाएं एक से एक बढ़कर सुन्दर थीं। किसकी प्रशंसा करूँ और किसकी नहीं।

पुरूष का सौम्य-संस्कार भाल पर नाच रहा था। रश्मियां पड़-पड़ थिरक रही थीं। राज का रूप, स्नान के बाद, निर्विकार प्रतीत होता था।

माधवी, सुलेखा और प्रियवासकी जाग उठी थी।

"ओह, सूरज कितना चढ़ आया। स्नानागार में पंकज-जल भरा-पूरा तो होगा ही। चलो, स्नान कर लूं।" —माधवी ने सुलेखा को संकेत करते हुए कहा।

तीन नारी स्नान करने को तत्पर थी। इतने में राज, गोविंद आ धमके। लो, मैं तो स्नान कर आया। झरने का स्त्रोत बड़ा ही निर्मल है। गोविन्द तुम भी तो कुछ बोलो। चुप्पी लगाए रहते हो।"—राज ने गोविन्द को इशारा कर कहा।

"स्त्रोत जितना ही निर्मल है, स्नान उतना ही पवित्र हुआ। कहो, निर्मल तुम्हारा क्या विचार है।" —गोविन्द ने पूछा। पर, निर्मल चुप रहा।

और, माधवी राज के कांत-शरीर को विभोर देख रही थी। "ओह कितना मांसल-गठीला-शरीर! कितने सुन्दर, कितने नवीन।"

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

लिया।

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]

[illegible] रूप।"

[illegible]
[illegible]
[illegible] और [illegible]
[illegible] गोविन्द [illegible]
[illegible]
[illegible]

"भैया आप तो व्यर्थ गुरुदेव को तंग करते हैं। सत्य और असत्य तो अनुभव की संज्ञा है।"—निर्मल ने गोविन्द को इशारा करते हुए कहा।

और, स्नानागार में माधवी स्नान कर रही थी। अम्बर खुलने के बाद लज्जा का पट एकबार खुल गया, रोम-रोम कंटकित हो उठे, कमनीयता-पनघट पर एक नई आभा झलक उठी। श्वेत-संगमर्मरगात पर ढुलकती हुई शबनम-सी ढुल-ढुल जवानी अंगों के उभार में जा छिपी। ढुल-ढुल यौवन मस्त हुआ—विकसित अंग-अंग मधुरिमा में। मधु की और उल्लासित कपोल अधरों की रुनाई-लुनाई में परमहंस-सा विहंस उठा। जल-कण अंग-अंग के इधर-उधर बिथरे ढुलकने लगे। एकरस सौंदर्य था। खिड़की की ओर से झीनी-झीनी किरणें आ रही थीं। खिड़की की दांई ओर सुलेखा खड़ी थी। सफेद चोली और किनारेदार रेशमी हल्की-उजली-सी साड़ी लिए अपलक खड़ी रही।

मस्ती इधर छिटकी थी, उधर चटकी, और कुसुम-दल की दो कली खानी को छूती हुई प्रस्फुटित हो हंस पड़ी। माधवी के अंग की अरुणिमा किरणों से रार मचाने लगी। नहाल हो रही थी अंगों के पर्यवेक्षण में।

माधवी का स्वाभाविक नग्न-सौंदर्य कनककिरणों में उलझ रहा। कमर को छूती हुई केश की काली-काली घटाएं बौराई हुई मुख-चांद को कुछ काल तक छिपाती रहीं। कभी घटा फटी और चांद स्वच्छंद मुस्कुराने लगा।

माधवी अंग-अंग पर जल देती हुई अपनी छवि पर मन ही मन मुस्करा रही थी। ओह, नवनीत-सी स्निग्ध जवानी की मंजुल-रूप-रेखा कितना स्वच्छ और नादान है। अंगों की देख-रेख में माधवी का समय कभी भी आज को छोड़ अधिक नहीं बीता था। रूप-बसंत का यह आकर्षण फिर भी साधारण था। विचित्रता केवल अंग-अंग की उभरी तरुणाई थी। मन में कमनीयता का उद्रेक एक पिपासा थी। प्यासा छानबीन नहीं करता, उत्कंठा में लवलीन रहता। प्यासा भूख से संघर्ष करता। माधवी की भावनाएं संघर्ष अंग-अंग-उभार से कर रही थी। अंगों की तरुणाई में यौवन मचल रहा था। मस्ती प्यास से हिलोरें ले रही थी। रूप की ओट से तरुणी आंखमिचौनी खेल रही थी। वासना केशों की रेशमी झिलमिल-झलमल में कटिबांध प्रहरी-सी निर्भीक खड़ी थी।

स्वर्ण-पात्र से छहलता हुआ जल अंगों के भिगोए जा रहा था। प्रियवासकी जल नहलाती जा रही थी।

"देख सुलेखा, मेरी यौवन-चाँदनी खिल उठी है। अंग मस्ती में बेसुध हैं। आज मैं ज्योत्स्ना-सी निर्मल हूँ। जी चाहता है, नहाती ही रहूँ!"—माधवी दो आम्र-दली को स्पर्श देती हुई बोली।

दो-आम्रदली-छोटी-सी टहनी ले जल उछालने में माधवी को अनूठा आनन्द आ रहा था। स्नान करते समय भावुकता की चेरी माधवी जल उछालती रही और अंगों के मल प्रियवासकी

धो भगाने लगी। इत्र की भीनी-भीनी महक स्नानागार के इर्द-गिर्द फैल रही थी!

कपोलों को आम्रदली से सहलाती हुई माधवी ने मीठे-स्वर में कहा:—

"मेरी जवानी देख ईर्ष्या उत्पन्न तो नहीं हो गई सुलेखा!"

रूप की स्पर्धा नारी को विशेष होती है। जवानी की स्पर्धा बड़ी निराली होती। रूप की जलन स्पर्धा नहीं। जवानी मस्ती तक स्पर्धा की चेरी रहती है।

सुलेखा तत्काल बोल उठी:—"उतनी जवानी की हुंकार अंग-अंग लगी हुई है। रूप का चांद मस्ती के बादलों में कबतक छिपा रह सकता है। आज तो रूप-राशि उमड़ रही है। घुमड़-घुमड़ कर वासना घने बादल सा फटना चाहती है। किन्तु, आज यह अनुराग क्यों?"

माधवी ने मुस्कुराते हुए कहा:—अनुराग तो अंगराग है। अंगराग तो ऊपरी और दिखावटी है, अनुराग ही तो जवानी का करुण-अनुभव है। राज तुम्हें कैसे लगे—सुलेखा?

माधवी इतना कह सकुचा गई।

उजलीं-सी साड़ी बढ़ाते हुए सुलेखा ने झट कहा:—मुझे तो कठोर लगे और आप को…? पथरीले-हृदय के मालूम होते हैं। देखने में तो भोले लगते हैं। कहो, प्रिय वासकी, तुम्हारा क्या विचार है। सुलेखा ने प्रियवासकी को संकेत करते हुए कहा।

"मुझसे क्या पूछती हो? अपना हृदय टटोल कर तो देखो। रूप का निर्मल, तथा तेजोमय है।"—प्रियवासकी ने झट उत्तर

दिया। आंचल को कंधों की ओर घेर माधवी स्नानागर से बाहर निकली। चोली शीघ्रता में पहनना भूल-सीगई। साड़ी भी बदली नहीं गई ! भीगी हुई साड़ी में हरि-मूर्त्ति के समक्ष पहुँच गई। हाथ जोड़ भगवान श्री कृष्ण को नमस्कार किया। टेहुने के बल बैठकर माधवी ध्यान में रम गई। राज भी टहलता उसी देहली तक पहुँच गया।

भींगो साड़ी में माधवी का स्वच्छंद यौवन मुक्त-पंछी की की उड़ान में आतुर हो उठा था। झीने वस्त्रालोक से झीनी-सी अंगरूप-राशि ढुलढुला रही थी। उरोजों के उभार, कटि को कटाक्ष से छुईमुई-सो अम्लान झलक उठे। राज की आंखें चका-चौंध हो गई। अंग की नग्न-अवस्था का दूसरा अनुभव तत्काल हो गया। नारी का नग्न-सौंदर्य कितना निर्लज्ज है। उभार की रामकहानी छोटी, फिर भी विदग्घता लिए हैं।

राम ! राम !! राम !!!—राज के मुंह से निकले। माधवी चौंक गई। राज अकेला खड़ा था। रूप का यह उपहास माधवी के लिए बड़ी ग्लानि की बात थी। आखिर, पुरुष है, नारी की कमनीयत से कितनी दूर भाग सकता है, बिल्कुल असंभव ! माधवी राज के सम्मुख हो गई। अंगों के उभार और भी प्रच्छन्न हो उठे। रूप-पनघट से अम्बर-पट, पूरी मस्ती—लहरी में सिर से सरक गया। राज ने आंखें बंद करली। माधवी लजा गई और झट आंचल को उचित-दशा में ले आई।

"सुलेखा। अरी ओ सुलेखा ! कंचुकी तो लेती आना।" माधवी ने सुलेखा को पुकार कर कहा।

राज हटकर अपने कमरे की ओर भाग आया। हिरणी से डर, अमानुषिक—अवस्था। फिर भी राज ने हट जाना ही अच्छा समझा और देहली पर से उल्टे-पांव लौट आया। नारी के विकसित-सौंदर्य, नग्न-अवस्था में इतने सकरुण और मर्माहत क्यों झलक उठे थे? राज ने अनुभव किया, फिर भी विचारों के तुमुल-संग्राम में संघर्ष मचता ही रहा।

रूप सुन्दर है या जवानी। दोनों एक ही वसंत के अलग-अलग अनुभव हैं। रूप करुण होता है, जवानी बेढंगी होती है। चोट लगी और तीर निशाने पर बैठा। विचित्र मस्ती की रूप-हरी-समस्या। और, पास ही बैठे गोबिन्द से राज ने पूछाः—"रूप पीड़ा देती है या जवानी?" "गुरुदेव! मेरी समझ में दोनों। जवानी की क्रांति में वेदना रूप को होती है। फिर भी न तो रूप निश्छल होता और न जवानो। जवानी दो घड़ी की है, और रूप मोह का एक समां। जिसकी तरकश ढीली पड़ी, घृणा का भाव जगा। सच तो, विराग तो रूप से ही होता।" गोबिन्द ने गम्भीर हो कहा। "गोंबिन्द, तुम बड़े भावुक हो। जीवन का गहरा अध्ययन झलकता है। फिर भी मैं भावुकता को कर्म-पक्ष नहीं समझता। भावुकता अकर्मण्यता की पहली पहचान है। विलास-गृह तो रहस्य ही रहस्य प्रतीत होता है। क्या तुम विश्वास करते हो? और निर्मल—तुम?"—राज अपनी गुरुता के स्वर में बोला।

निर्मल झट बोल उठाः—"मेरी एक बात सुनें तो मैं भी कुछ कहूँ। भैया की बात ही कुछ दूसरी है।" "क्यों नहीं, तुम कवि

हो, लेखक हो, फिर भी अंधकार में मारे-मारे फिर रहे हो। मैं तो भावुक नहीं। चाहे गुरुदेव कुछ और ही समझें। तुम्हारी भावुकता गुरुदेव को अवश्य भायेगी। तुम ही उनके प्रश्नों का यथोचित सत्कार कर सकते हो।" गोविन्द ने निर्मल को कहा।

"जोश में बड़ी जल्दी आ जाते हो—गोविन्द ! सहनशीलता भी सहृदयता है, इसे क्यों नहीं समझते ?" राज ने गोविन्द को कहा। ठीक है, गुरुदेव ! गरीबों के रक्त में अब रहा ही क्या है ? परिश्रम करते करते गरीब थक गया। पर, उसकी झोपड़ी महल न हो सकी।" कहते गोविन्द की निराशा झंकृत हो उठी।

"क्योंकि, धनिकों के महल में परिश्रम करते हुए अपनी छोटी मजदूरी से ही संतोष कर लेते। ईंटें लगाते चलो। भूखों मरते चलो। तुम्हारी मिहनत, इज्जत, टके-टके पर बिकती हैं, फिर भी मनमार चुप ही रहते ! उधर, अट्टालिकाओं में राग और रंग होता। बाजार जाकर देखो, मेरी बातें कुछ सम आ जायेंगी।"—राज ने तत्काल कहा।

गोविन्द चुप्पी साधे रहा। खून खौल उठा; फिर भी घर करती रही। भैया को चुप देख निर्मल ने एक दी। "गुरुदेव ! आपका निवास-स्थान क्या यही तीन सुकुमारियां अपकी चेली हैं क्या ? अमरावती गृह से सुन्दर तो नहीं ? स्वर्ग है—स्वर्ग। मुझे तो बड़ा सुहाना मालूम पड़ता है। क्यों भैया ?

"यह स्थान सुन्दर है, क्योंकि माधवी यहाँ र ने कहा। "किन्तु, जब कली टूट जाती है, तो व

पूछता कि कब और कैसे टूट पड़ी ?—निर्मल ने झट कहा।

"चुप रहो, निर्मल। छोटा मुंह और बड़ी बात। तुम मुझ पर आरोप लगाते हो ? मुझे रमणियों का दास समझते हो ? भूल कर रहे हो—निर्मल ! जागकर देखो, सूरज कितना निकल आया है।" राज ने क्रोध के आवेश में कहा। "बड़ा और छोटा, यह भी तो एक बड़ी समस्या है। न जाने कबतक निदान होगा। आदमियत फिर से लौटेगी ?" निर्मल ने निर्भीक उत्तर दिया।

राज यह सुन, सोचने लगा। छोटा हुआ तो क्या हुआ, बात तो उचित कहता है ! भ्रम में मैं हूँ या निर्मल ? झट बोल उठा:—"उचित बात से कोई किसी से नहीं डरते। पापी डरना जानता है। और कोई युवक पापी नहीं होता।"

"पाप तो परिस्थिति कराती है। और परिस्थिति पाप नहीं। नो यही विचार है। यदि परिस्थिति को पाप कहें, तो जिस नि में गर्भाधान रहता, सभी आदमी तो जन्मजात पापी हैं। थति में एक वेश्या को गर्भाधान रहता, ठीक वैसी ही रिस्थिति में साधारण नारी गर्भवती होती। किन्तु, ी के पुत्र को समाज आदर देता, खुशियां मनाता र दर-दर की भीख मांगता। समाज उसे हेटी नजर ा पापिन नहीं, परिस्थितियां ही आदर्श से नीचे परिस्थितियों को कोई पाप नहीं कहता, मनुष्य जाता है। और क्या कहें, भगवान भी तो परि-

स्थिति के वश में अपनी कृपा-किरणों विखेरता है। किन्तु, गुरु-देव आपकी आंखें क्रोध से क्यों ज़लजला उठी?—निर्मल ने गुरुदेव की और संकेत कर कहा।

वेश्या और गर्भाधान। समाज ही कारण और समाज के लोग ही द्रोही। विचित्र-रात। वैषम्य-परिस्थिति। राज की आखें शेर-सी चमक उठीं। क्रोध का शमन हुआ, तो आंखें डब-डबा गईं। रोना और रोना। कितना रोए, कितना हंसे! लनुष्य कभी क्या जान सकता है? माधवी आकर खड़ी थी। पर चिंता में बेसुध राज को इसकी तनिक भी परवाह न की। आंसू थे दुल-दुल कपोलों पर—और राज की रोनी सूरत थी।

माधवी तत्काल बोल उठी:—

"आप तो रो रहे हैं। जब पुरुष ही रोने लगेंगे, तो स्त्रियां क्या झख मारेंगी। रोना पुरुष का ज्ञान नहीं। योगी और दुनियां—क्या सम्पर्क?" राज की भावनाएं करुणा से मंथर रही। समवेदना या स्वार्थ, जो भी हो, आंचल की एक कोर से, राज के आंसू पोंछने में माधवी धन्य-धन्य हो गई।

करुणा या प्यार?

कोई प्यार करे, तो कोई कैसे रुठे। राज योगी हो या मानव, प्यार की स्विग्ध-अवस्था में निलिप्त रहा। मुख से भाव न निकले। अंतर में समवेदना ही संपुट रहा। गोविन्द और निर्मल, झेंप गए। फिर भी, नारी का स्पर्श विषाक्त ही होता। जहरीली, फिर भी माधवी की मोहमयी-चितवन वल्लरी-सी

ऐसी झुकी कि आनन्द को आनन्द कंद मिला, कि प्यास की तड़प रही। आधा प्यासा और प्यास बढ़ी। राज निर्निमेष देखता रह गया। ज्ञान की गोधूलि झट दौड़ी। प्यासे की अधर सूखती रही। अधखुली आंखें स्वप्नों में निमग्न रहीं। निर्मल की कविता जागती रही। गोविन्द का वर्त्तमान निर्जीव रहा।

सुलेखा दौड़ती, हुई, इतने में, आ धमकी !

"माधवी जी, जीवनधन आप से भेंट करना चाहते हैं। द्वार पर खड़े हैं" और, प्रियवासकी हाथ में दो पिंजड़े लेती हुई आई। "ये सोने के पिंजड़े कहां से लाई ? बड़ा सुन्दर काकातुआ है। सुग्गा तो और भी सुन्दर।" माधवी ने प्रियवासकी से पूछा ! हिलता-डोलता सुग्गा बोल उठा:—रामजी ! कृष्ण गोपाल !! पिंजड़े के निकट माधवी चली आई। और, कुछ बोलो; सुग्गे ? "माधवीजी ! माधवीजी !!—सुग्गे ने दुहरा-दुहरा कहा सुग्गा मीठी-बोल बोल उठा था। और, जीवनधन का नाम सुन राज घबड़ा गया था। धीरे से बोल उठा:—यहाँ भी पापी पहुँच गया।

आश्चर्य ?

माधवी झट बोली:—कौन पापी ? "जीवनधन, जो तुम्हें, पिंजड़े, सोने का ले आया है। पिंजड़ा कितना नादान है। बेड़ियां कितनी निर्मम है।" राज ने निराशा के स्वर में कहा। "पाप कहाँ नहीं पहुंचता। गुरुदेव ?" निर्मल ने झट कहा। प्रियवासकी की और देखती हुई, माधवी बोली:—यहीं ले आओ। धन्यवाद

जीवनधनजी आज कैसे पधारे हैं ? आते हुए जीवधन ने झट कहा:—लीजिए, मैं तो पहुँच गया। मालूम हुआ, आप पंछियों से शौक रखती हैं, लेता आया। मेरे पास तो समय नहीं कि पंछियों की बोल सुन सकूं !"

यकायक जीवनधन की दृष्टि राज पर पड़ी। "और तुम ?" तो क्या हुआ, योगी का क्या रैन-बसेरा ? आप घबड़ाइये नहीं, अतिथियों का निरादर भारतीय-सज्जन नहीं करता। राज ने हंसमुख हो कहा।

माधवी को आश्चर्य हुआ। जीवनधन से राज की जान-पहचान कैसे हुई ? राज तो, आज ही आया है ? शायद, पहले कभी देखा होगा ? "घबड़ाइये नहीं विचित्र रहस्य जान पड़ा। उलझन में माधवी पड़ी। जीवनधन का पैर कांप रहा था। दिल की धड़कन और रोम-रोम खड़े हो, भय की गति को और भी बढ़ा रही थी। पाप के रोंगटे खड़े थे। आंख पथराती जा रही थी। अवाक् और अचेतन-अवस्था में जीवनधन भावनाओं के गोते खा रहा था।

विलास-गृह में योगी की पहुँच ? मानसरोवर में बगुले की बड़ी-बड़ी टांगें ? क्या हुआ, योगी की पहुँच बड़े-बड़े लोगों से होती है। आश्चर्य की कोई बात नहीं। पर, मेरे मंसूबे तो अधूरे ही रह जायेंगे। यह द्रोही, रात की बात अवश्य माधवी को कह देगा। स्त्रियां सहज विश्वास करती हैं। शंकाएं तो स्त्रियों का प्रिय-भोजन है। देखा जायगा, कुत्ते से नुचवा दूंगा।

जरा भी ऐंड़ दिखाई कि ऐसी चोट दूंगा कि औंधमुंह गिर पड़ेगा। छिः धनी भी मामूली-गरीब-योगी से डरता है। और, स्त्री वैभव की भूखी होती है। धन का लोभ दूंगा, माधवी कैसे न फसेगी ? धीरे से काम लेना चाहिए। मामला संगीन मालूम पड़ता है। जीवनधन, इन सारी बातों को सोचता रहा। पर, किनारे न लग सका। मुझे धन है, सारी हसरतों को पूरा कर सकता हूँ। माधवी तो क्या, स्वर्ग की अप्सराएं भी धन के इशारे पर नाचती फिरेगी। ओह, माधवी कितनी अनमोल है, सारी सम्पत्ति भी हाथ लग जायेगी। मालिक नारी को हुस्न क्या देता है, बला दे डालता है। मरे फिरो, जियो-मरो। हाय-हाय करो। लबों पर सूर्खी आई कि दिल आप से भागा। दुनियां से यह बला न तो टली है और न टल सकती है। मुझे माधवी का सब रास मालूम है। इतराई कि विलास-गृह में भूचाल आई।

बुरी भावना ही तो वासना है। बुरी इसलिए कि इसका अंत बुरा है। बूढ़े को शौक चर्राया था। वासना कहिए या नारी के अंगों की भूख कहिए, दोनों प्रश्नों का मान बराबर है।

जीवनधन की चेतना अस्त हो चुकी थी कामुकता की आंधी में धन की गर्मी पहुँच चुकी थी। अंग खरीदना चाहता था। कुत्ते की तरह हड्डी काटने में अपने खून का मज़ा बड़ा लुत्फ़ दे रहा था। बूढ़ापा की वासना अकाल से भी बढ़कर भूखी होती है। जीवनधन ने अपनी जवानी देखी थी। रंगीन-दुनियां

देखी थी, पर संतोष प्राप्त न हो सका था। वासना मनुष्य की मृत्यु तक साथ नहीं छोड़ती। नदी का प्रवाह रूक सकता है, आकाश के तारे तोड़े जा सकते हैं; पर, वासना बराबर हमें जकड़े रहती। संस्कार च्युत होने के उपरान्त कलुषित इच्छाएं जागती रहतीं। जीवनधन के पिता दयाराम काफी धन-संचय कर मर चुके थे। लम्बा-चौड़ा-व्यापार छोड़ मरे थे, और जीवन-धन, फिर यौवन-काल से क्यों न मचले? परिश्रम से धन अर्जित करना और पानी की तरह उछालना, तो वह पुत्र करता है, जिसे जीवन के संघर्षों का सामना नहीं करना पड़ता, अगहन की पूर्णिमा-सी शीतल-इच्छाएं पैसों की घूंघट में पतन रास रचतीं।

इच्छा की कली नहीं मुरझाती; भावना की कली मुरझा भी जाती है। जीवनधन यौवन का सौदा कामुकता से करने आया था। कर सका? कोशिशें रहीं। पर, युवती का प्यार युवक सह सकता है, बूढ़ापे की कामुकता युवती से कदापि नहीं पट सकती। प्रकृति का यह संदेश जीवनधन तत्काल भूल चुका था। जीवनधन खड़ा-खड़ा भावनाओं में गोते खाता रहा। माधवी का रूप उसे काटे जा रहा था। अंग-अंग की लिप्सा धधक उठी थी। चोली के अन्दर की चिनगी जीवनधन को ऐसी लगी, कि वह दिल मसोस कर रह गया।

जीवनधन को गम्भीर देख माधवी बोल उठी:—"जरा बैठिये तो सही। खड़े-खड़े पैर फट जायेंगे। बूढ़ापे का शरीर है, थकावट अच्छी नहीं होगी। आसन पर विराजए।"

एक पुत्री अपने पिता को जिस स्नेह-भाव से आग्रह कर आसन पर बिठाती हैं, ठीक, उसीतरह माधवी ने जीवधन का का हाथ पकड़ आसन पर बिठा बड़ा सम्मान किया।

हाथ नहीं, कलाई की विद्युत-आभा लगते ही जीवनधन का मन आनन्द से थिरक उठा। छुईमुई-सी कलाई, माधवी की मीठी बोल, रूपहली चितवन; जीवनधन के मन में सचित्र-महाभारत रच गई। जीवनधन की कोयल बसंत के पहले ही कूक उठी। चितवन पल-पल घर करती रही।

"मुझे तो सुग्गा बड़ा प्यार लगता है। इस कष्ट के लिए धन्यवाद !"—माधवी ने फिर कहा। धन्यवाद की कोई वात नहीं ! सोचा, इन पंक्तियों की तदबीर तुम्हारे यहाँ हो सकती है। इसीलिए, लेते आया। मुझे तो कारोवारी झंझटों से दम मारने की फुर्सत भी नहीं। घर में न वाल है और बच्चा। देखभाल कौन करता।? क्या तुम्हें काकतुआ पसंद नहीं ?"—जीवनधन ने निर्भीक उत्तर दिया।

"काकातुआ को, तुआ, तुआ ही है। कितनी कोमल पाँखें है। कितना निडर ताक रहा है। मुझे पंछियों से बड़ा प्रेम है, क्योंकि अकेली रहती हूँ ! मेरा अपना कोई नहीं।"

माधवी ने जीवनधन को भरोसा देते हुए कहा ! जीवनधन ने समझा, वाजी मार ली। तीर निशाने पर छूटते ही ठीक बैठा। समझदार, इन दिनों इशारे से ही अधिक समझा करते हैं। कली को पराग मिला; मस्ती को झूम मिली। भौंरे ने

प्यार को जगाया। कली खिली, अधखिली हुई, पराग सुरभित हुआ। प्यार का मन मीठा लगा। मिठास का भाव जगा। कंचन को कामिनी मिली। जीवनधन निहाल हुआ। सचमुच नारी बड़ी सयानी होती है, बात ताड़ लेने में कितनी तत्पर रहती। जीवनधन ने आज समझा।

किन्तु, बूढ़ापे को जवानी अंधेरे में सूझी। प्यासे को पत्थर मिला। नैया का खेवनहार डांड़ न चला सका। जीवनधन इतना न समझ सका। अंधेरे में अपनी रोशनी काम नहीं कर रही थी। बुद्धि चकाचौंध थी। अंधकार में आंखें तिरमिरा उठी थीं। समय सुहाना लगा। पुरानी बात नई मालूम हो रही थी। इच्छाएं इतरा कर नाच उठी थीं।

जीवनधन ने बड़ी प्रसन्नता से कहा:—"कहो तो हिरणी भी यहीं भेज दूं? मेरे यहां उसकी देखभाल नहीं होती। मुझे तो देखने में हिरणी बड़ी प्यारी मालूम होती है। लो, कलतक बिचारी भी यहीं चली आएगी।"

राज ने हंसते हुए पूछा:—तो, हिरणी को; देखते ही जवानी याद हो आती होगी?

माधवी, यह सुन, खिलखिला उठी। जीवनधन लालपीले हो चले। पर, क्रोध को रोक कर बोले:—हिरणी को देखकर जवानी याद न आयेगी, तो क्या आप की जटाओं को देखकर? आपबात चीत करने का तरीका भी नहीं जानते? जंगल का भूत क्या जानें, खुली हवा की जिंदादिली। अभागा क्या जाने परियों के अफसाने।"

इतना सुनकर गोविन्द बोल उठाः—"बूढ़ा क्या जाने तड़पती जवानी की दर्दभरी कहानी ?"

जीवनधन ने गोविन्द की ओर देखते हुए पूछाः—"तो, आप का नाम ? क्या मैं जान सकता हूं।"

"गोविन्द":—गोविन्द ने तुरत कहा।

आपको कुछ-कुछ पहचानता हूं। या, याददास्त ही गलती खा रही है ?"—जीवनधन ने पूछा।

"गरीबों को कौन पहचानता ? काम की खोज में, इस शहर में; हम दोनों आदमी भटक रहे हैं। पर, मालूम होता कि दुनियां से सारा काम ही खत्म हो गया। काम क्या रहेगा, अब तो धनिकों के घर पैसा ही पैसा है, काम को तो मानो छुट्टी मिल गयी। धनिकों की सूरत ही सूरत देखने को मिलती है, काम तो दूर से ही भाग निकलता है। राम कहिए, नौकरी की तो तबाही हो गई। भगवान् बचावें, इसी धांधली से !"—गोविन्द ने उत्तर दिया।

गोविन्द ने इतना कह अंगुली निर्मल की ओर बताते हुए जीवनधन से, तनिक ठहर; फिर बातें छेड़ी। यह मेरा भाई निर्मल है। छोटा है, दो वर्ष का। एक ही कांतिपुर-विद्यापीठ में हम-दोनों ने शिक्षा पाई है। कवि है, भावुक है, फिर भी सड़ रहा है।

निर्मल ने जीवनधन की ओर दोनों हाथ उठा कर कहाः—"नमस्ते ! सड़ूं नहीं तो क्या करूँ, जमाना ही बदरंग है। गलियों में लोग रंगीन गाने सुनते, कवि की ओर कोई फूटी

आंखों से भी नहीं देखता। कलाकार का अपमान जनता का अपमान है। कला की निंदा अपनी निंदा है। पर, क्या जाने, हमारे रईस भाई! कवि के गीत मीठे नहीं लगते। मचलते-गीत सुहाने लगते हैं। शराब की बू खुशबू लगती है। गरीबों की लड़की नौकरानी लगती है। क्षमा कीजिए, बातों से मैं बहक गया।" निर्मल ने कहा।

"कोई बात नहीं। आप ठीक कहते हैं। मैं तो गरीबों की सेवा करना चाहता हूं! देखिए न, कई धर्मशालाएँ, कई पाठ-शाले, कई अनाथाश्रम खोल रखे हैं, अब सोचता हूं कि मंदिर बनवाऊँ; और विधवाश्रम। अपाहिजों के लिए गरीबखाना, सफ़ाखाना भी खोलना चाहता हूँ। इच्छा तो है, पर, कई परि-स्थितियों से लाचार हो गया हूँ! नहीं तो, कब की जनता की सेवा करता रहता। आप निश्चिन्त रहें, आप लोगों को नौकरी मैं दूंगा। मैं तो युवकों के साहस की प्रशंसा करता हूँ। युवक जो कर सकता, भगवान भी नहीं कर सकते! मुझे आपलोगों को देखकर, सचमुच, बड़ी तरस आती है। आप दोनों मेरे साथ चलिए, नौकरी तो लगी ही समझिए।" जीवनधन ने सहृदयता के स्वर में कहा।

"पर कहीं बड़ों की आश, पड़े उपवास, वाली बात तो नहीं?"—गोविन्द ने झट पूछा।

"खानदानी झूठ नहीं बोलते! मुझे अपने जैसा ही क्यों नहीं समझते?"—जीवनधन ने पुष्टि की।

बातें बढ़ती जा रही थीं, और माधवी की पूजा का समय टूटता जा रहा था ! बातों का सिलसिला कब टूटे और दम मारने की फुर्सत मिले ! माधवी मन ही मन सोच रही थी। अनमनी-सी माधवी बातों से ऊब रही थी। पर, शिष्टाचार भी मुंह बाये खड़ा था।

इतने में सुग्गा बोल उठाः—"मालिक······घर ! मालिक······घर !!"

जीवनधन चौंक पड़े। सुग्गे को सुनाते हुए बोलेः—

"आज से तेरा घर तो यहीं है। इसे भी अपना घर ही क्यों नहीं समझता। पराए घर में तुम्हें नहीं दे रहा हूँ कि मारे डर से घबड़ाए जा रहा है। टांय-टांय क्यों करता।

सुग्गे की पाखें तड़पड़ाने लगी। उसने असंतोष प्रगट किया। पिंजड़े का पंछी असंतोष कर, ही क्या सकता है? पराधीन के सपने बड़े मोठे होते हैं। सुग्गे ने अपनी टांग चोंच तक सटा ली। चोंच की दो-चार ठोकरें पिंजड़े की कड़ियों में दे मारी। अपना गुस्सा झाड़ने लगा। पर पिंजड़े का पंछी लाचार था। बेबसी थी। काकातुआ भी झटपटाने लगा।

माधवी पंछी की भाव-भंगिमा का अध्ययन कर रही थी। मालूम पड़ता है ये किसी के प्यार का भूखे हैं। ये पंछी, विलास-गृह में प्रसन्न नहीं रह सकते।

उसने झट कहाः—"जीवनधनजी ! पंछी इस घर से असंतोष प्रगट कर रहे हैं। कोई इन्हें बड़ा प्यार करता था क्या ?"

"नहीं तो, मेरा घर और प्यार ! न बाल न बच्चा। फिर, प्यार किस चिड़िए का नाम है? क्या तुम्हें स्वीकार है।" जीवधन ने माधवी से पूछा।

माधवी ने रात की ओर दृष्टि फेरी। शमा ने परवाने को देखा। दो परिन्दें कट कर रह गए। आंखों की पुतली ऐसी तिरछी मुड़ी कि लज्जा के भार से माधवी की पलकें भौं की बांकी छवि में मेघ-सी ऐसी निखरी, ऐसी झुकीकि प्रेमियों को आनन्द मिला और प्यासे की तड़प उठी।

जीवनधन अवाक् रह गया। बूढ़े ने जमाना देखा था, घास नहीं काटी थीं। खैर जीत तो मेरी होगी ही। यह सोच चोट भूल गया।

"ले, लो ! पंछी तो मुझे भी प्यारे-प्यारे लगते हैं। जीवन-धन की खुशी इसी में छिपी हुई है। प्यासे को निराश नहीं करना चाहिए। हर निराशा पाप है। उपहार का निरादर नारी का सौजन्य नहीं।" राज ने उत्तर दिया !

किसे ? माधवी की जिज्ञासा-भरी चितवन को। लज्जा से झुकी हुई—पलकों को, या भावना से कर्त्तव्य को। हर अवस्था में अपनी-अपनी सूझ छिपी रहती है। किस रूप में राम और किस रूप में नटवर ?

माधवी का नटवर अपनी आज्ञा दे चुका था।

माधवी नाच उठी, कि गद्गद्रा गई। कंटकित हो उठे—रोम और रोम। आत्मा और सत्कार ! पूजा और भक्ति ! कौन मिले, यह अनजाने की बात रही।

"इस उपहार के लिए—धन्यवाद ! मुझे पूजा में देरी हो रही है। बातें तो फिर, कल भी हो सकती हैं ?" माधवी ने व्यापारी के भाव में कहा।

जीवनधन ने बड़ी उत्कंठा से कहा:— तो कल इसी समय मिलूंगा ! बैठा-बैठा मन नहीं लगता। हां, मैं तो भूल ही गया, हिरणी भी कल पहुँचवा दूंगा। मुझे भी कई काम हैं। अच्छा, मैं तो चला। कल की बात भला मैं भूल सकता हूँ।

गोविन्द तुरत पूछ बैठा:—"तो अभी ही आप के साथ चलूं या पीछे से आप को कष्ट दूं।"

"भई, अभी तो मुझे दुसरा-दुसरा काम है ! पिंजरापोल मुहल्ले में पहुँच जाना। सड़क के किनारे ही नारियल के पेड़ मेरे हाते में लगे हुए हैं। साम को अवश्य मिलना।" जीवनधन ने गोविन्द की ओर इशारा कर कहा।

"क्या कहा, पिंजड़ापोल ?"—निर्मल ने शंकित हो पूछा।

"हाँ, हाँ, पिंजडापोल........" जीवनधन ने रूखे हो कहा।

जीवनधन इतना कह चले गए। राबी भी साथ गया। बूढ़ा राबी पुराना नौकर और बूढ़े मालिक विलास-गृह से चलते बने।

रास्ते में राबी ने पूछा:—"मालिक लड़की तो बड़ी सयानी मालूम पड़ती है ! पर्दा [illegible]क नहीं करती। न जाने वह साधु कौन था। दो और तो [illegible]च्चके मालूम पड़ते थे !"

तूने कैसे देखा—राबी ? —जीवनधन ने पूछा !

"बूढ़ा और प्रेमी क्या नहीं भीतर ही भीतर देखता! किन्तु, बूढ़ापे में जवानी की रंगीनी कहाँ से आ जाती है?"—रावी ने पीछे-पीछे चलते हुए कहा!

तो, तुम्हारा मतलब, मुझसे है। रावी तुम होश में आओ! वर्ना, नौकरी से हाथ धोनी पड़ेगी! मालकिन को यह बात न मालूम हो!

लेकिन, सुग्गा और काकातुआ के बारे में पूछेगी, तो क्या उत्तर दूंगा—मालिक! रावी ने सशंक हो पूछा।

"कुछ नहीं। चुप रहना। बाद की बात मुझ पर छोड़ देना।" जीवनधन ने कहा!

"लेकिन, मालिक; यह आपने बुरा किया। यह अन्याय है! मालकिन पुत्र से बढ़कर सुग्गा को प्यार करती। पहले पंछी खा लें, तो आप भोजन करती। जिसे पुत्र नहीं, वह तो पशु-पंछियों से ही ममता लगा लेती। इतना बड़ा पाप, मालिक; आप कैसे सह सकेंगे? एक तो तीन बार शादी की। बूढ़ापे में यह चौथी शादी करके आपने एक जीवन बरबाद किया, और आज फिर शिकार खेलना चाहते हैं।"

रावी उत्तेजना में इतना-सा, साहस बांध; बोल गया। क्या न्याय का गला घोंट देने के बाद अन्याय इसी तरह सर चढ़कर बोलता है? अच्छी बात पहले बुरी लगती है, कालांतर में विशेष चेतना देती है। परिस्थितियों से उसे नौकर बना दिया, तो क्या हुआ? गरीबी ने पछाड़ खाई, तो क्या गुजरा? झोपड़ी

में आग लगी तो अमीरों का दिल ठंडा हुआ। इतनी निर्भीकता; आज गरीब को कैसे संभव हुई।

जीवनधन गुस्से से लाल हो गया! कड़ककर बोला:— अपनी बेटी रधिया और घरनी, क्या नाम था, याद नही, मुझे रुपयों के सौदे पर अस्मत तौलते समय, तुम्हारा न्याय कहां सो रहा था, रावी! २० वर्ष की घटना इतनी जल्दी भूल गया। अस्मत का सौदा टके-टके पर हुआ, तो अन्याय करते समय तुम्हारी शर्म कहाँ चरने गई थी। २० वर्ष की की बात याद करो! रधिया और उसकी मां को..................मैंने................ और अधिक सुनना चाहता है...............पापी!

रावी को घटना याद, फिर एकबार हो आई! ओह, गरीबी का मारा पेट अस्मत न बेचे, तो क्या नंगी लाश तड़पती रहे? पेट के लिए शरीफ जादे अपनी ईमान तक बात-बात में बेचते-रहते। गरीव ने अपनी अस्मत पेट के लिए बेची, तो दुनियां को शर्म आनी चाहिए। लाश को कफ़न नहीं तो गरीव की इज्जत ही क्या? तड़पती भूख और कड़कड़ाती जवानी रोके नहीं रुकती। भूखा क्या जाने, इज्जत, सफेदफोशी, शोषण, ठगई और एय्याशी। ये तो धनिकों के वरदान हैं, धनिकों का प्यारा-सुहाना शुभ मुहूर्त्त है, जब गरीबों की लड़कियां रईसों के पहलू को गर्म रखने के बजाय, बराबर सर्द और वेदर्द रखती! रईसों की आंखें इतनी तेज होती है कि मजाल है कि घर की बहूएं किनारे कस लें, और छूरी न चल जाय। हमारे बीच के कुछ

लोग गरीबों की बहू-बेटियां को फांसने का ठीका ले रखे हैं। कुछ तो बेपैसे का अच्छा खासा रोजगार समझ बैठे हैं। इस अभागे देश में गरीबी का अवसान कब होगा। जीर्ण-शीर्ष कपड़ों में युवतियां की लाज, हाय भगवान; कबलौं बचेगी ?

कितना सुन्दर तरीका ! युवतियों के अंग बेच-बेच कौन से गरीब के भाग्य जगे हैं ! रईस ने एक ओर चूसा, और दूसरी ओर उखाड़ फेंका। यह रीत सदा चली आई। गरीबों के भाग्य फूटे, और रईसों की वन आई।

एक तो दो दिनों की जिन्दगी। फ़िर, गरीवी और अमीरी का पचड़ा। फालतू समय, ठगई का पैसा, फिर एय्यासी न हो तो क्या चैतन्य महाप्रभु को लाया जाय।

कठिन परिश्रम के जूए तो गरीबी के बैल कंधे लगाए रहते ! परिश्रम का फल टप से निगल जाती है—स्वार्थ की मछली ! सफेदपोशी के निराले ढंग ! अवढंग !! रावी उन्मत्त-अवस्था में, रधिया और उसकी मां को बेच चुका था, चांदी के चन्द टुकड़ों पर। अस्मत फूट गई थी—गरीबी की बरसात में। सिर्फ, एक याद रह गई थी—बेबसी की घड़ियों की। पेट की तड़पती छुधा-ज्वाला की ! चोचलेपरस्त रईसों की !

और, तनिक और, बीस वर्ष पहले की दर्दभरी घटना रावी को याद हो आई !

रधिया थी, तेरह साल की ! कली खिलने को आतुर थी, चपल-चाल, रसभरी इंगड़ाई, जिधर देखा—गरीबी की तबाही।

और रावी की जमीन छीन गई। सूद, महाजन की हथकंड़ियां। जेवरें बिकीं; पत्नी उदास हुई, जमीन छीन गई—रावी के पैरों सांप लोट गया। उस पर कमवख्त—खाँसी! कई दिनों की झाकेकशी!

और, फिर एक बरसात की रात। काली! अंधेरी!! डरावनी। रावी लिए जा रहा था—रधिया को।

कहाँ? मत पूछिए, जीवनधन की कोठरी में। टूट गई चूड़िया। मसक गई चोली। चिल्लाई। चीखी।

निर्लज्ज, मर जा रावी, तू तो जिंदा है। उसी की नौकरी बजा रहा है, जिसने—मसल दी एक कली, जो नादान थी। अंगों की लोच से दूर थी। कामनाएं वसंत-सी हंसना सीख रही थी! कुमारी कन्या। अक्षत-यौवन। पोर-पोर में मदालस। विकस रही थी—रधिया की भोली दो कलियां!

बेदर्द के हाथ लगे, चीखे नहीं तो चुप कैसे रहे!

और वदले में रावी को याद आई—कुछ चांदी के टुकड़े मिले थे!

और उसकी मां ने सवेरे उसके गालों पर दांतों की उखड़ी लाल-दाग देखी थी तो पूछा था—निगौड़ी कहाँ की। डूव मर! पर, रधिया चुप रही थी! मेरा नाम तक नहीं वतलाया। सचमुच रधिया डूवकर मर गई!

रधिया की मां नौकरानी थी—जीवनधन के घर, जब दूसरी शादी हुई थी! एक रात चुपके से, जीवनधन घुस पड़ा! कहां

गरीब-अबला की दूधभरी थाती पर। क्या मिला? उसका मुर्झाया अंग, न उभार, न मस्ती!

जीवनधन की वासना! छिः धिक्कार! इन रईसों को लाख-लाख धिक्कार!

पर, बेमतलब के धिक्कार से फायदा? नक्कारखाने में तूती की आवाज़! राबी को जब मालूम हुआ। सहना तो, हम-गरीब जानते हैं!

कहाँ है भगवान? है भी कहीं, या पंडितों का ढोंग है, या मिथ्या की परिभाषा है! कायरों को डराना है। धनी बढ़ते ही जाते! गरीब तो ज्यों के त्यों हैं! क्या कारण?

राबी जीवनधन का नौकर ही रहा! जीवनधन की सम्पत्ति ज्यों की त्यों सीना ताने खड़ी रही।

राबी बीती-घटना को संचय कर रहा था। धीरे से बोला:—क्या करूँ, मालिक पेट क्या नहीं कराता। इन बातों को जाने दीजिए।

कुछ देर बाद राबी तुनक कर बोला:—हाँ, मैं अन्यायी हूँ। गरीब हूँ, कोई न्याय नहीं करता! गरीबों का माई-बाप कोई नहीं; सुना है, भगवान दीन-दयालु हैं! पर भगवान भी भांग पीकर कहाँ सो रहता है, पता नहीं! पाप का न्याय मुझे पर-मात्मा देगा।

जीवनधन घर पहुँचे। माधुरी सिर में चंदन लगाए रसोई-घर में घुस पड़ी। महाराजिन रसोई बनाकर अपने घर को जा चुकी थी! दिन ढल चुका था।

स्वामी को देखते ही माधुरी बोली:—न जाने, कहाँ-कहाँ की चक्कर काटते रहते हैं! न दिन, चैन और न रात। आपको मेरी क्या परवाह? ब्याह कर लाए, यह न सोचा पत्नी क्या चाहती है, फिर भी असंतोष, बूढ़ापे की ठेस.........कल रात-भर कहाँ रहे? बतलाइए नहीं तो जहर खा मर जाऊँगी!

जीवनधन कुछ तो सकपकाए, फिर भी जहां पत्नी बांदी की खटती है; क्योंकि आर्थिक-संकटों का सामना करने की राय समाज नहीं देता। अदना-सा पुरुष भी हुकूमत करता है। मार-पीट और गालीगलौज़ तो साधारण बात है!

बाजारों में शराब पीजिए और गुस्सा घर की चूड़ियों, बर्त्तनों और अबला पर झाड़िए। नारी का जीवन जितना दुःखान्त होता, उतना दुःखान्त न तो मृत्यु है, और न, मरघट की चिताएं।

नारी के सौंदर्य बिगाड़ने में पुरुष बड़ी बेदर्दी से पेश आता है। कारण, खुदगर्जी! अबला है, तो मसल डालो कि बूढ़ापा झट आ जाए।

नारी की स्थिति का रूप झलकते ही माधुरी कहते-कहते रुक गई। अवारा पति, पत्नी की सबसे बड़ी असफलता है! माधुरी भाग्य का सहारा टेक चुप रह गई। क्या कहें और क्या नहीं। चिराग जलता है, पर, समय कम है।

जीवनधन को अनायास क्रोध चढ़ आया। तड़ककर बोल उठे:—"तो, तुम्हारी तरह चूड़ियां पहन घर में बैठ जाऊँ?

कारोबार तुम संभाल लोगी ! चार दिन की लौंडी, मुझे समझाने आई हैं ! निकल जा, मेरे घर से..............."

माधुरी सन्न हो गई। पुरुष का भीषण अत्याचार। अबला की दयनीय-दशा; जल के थपेड़ों में जैसे किश्ती !

"सपसपा क्या रही है, निकल जा। मुझे तुम्हारी सूरत से नफरत है ! भरी दुनियां पड़ी है, टके-टके पर रंग जमा। एक सी भूख मुझे लगी रहती। बूढ़ापा आई है, तो दिल का रंग तो नहीं उभरा। खड़ी-खड़ी क्या देख रही है ! सीधे मन से निकलती है या दूं दो-चार धक्के !"—जीवनधन ने कड़ककर कहा !

माधुरी सिसकती रही। पर, पुरुष को दया कामुकता की आंधी में न कभी आई है, और न आने की कभी संभावना है।

जीवनधन ने चौखट की सीध पर ऐसी लात जमाई कि माधुरी गिर पड़ी। संगमर्मर से सर टकराया। खून बह निकले ! नारी की सहनशीलता का आदर्श पुरातन है, चिर-नवीन है।

माधुरी चिल्लाई तक नहीं ! कोई सुन न ले। कोई स्वामी की निंदा न करे। एक-दो और अनगिनत लातों की चोट असह्य हो उठी थी ! चंदन छूटकर गिर पड़ा। कपड़े खून से लतपथ हो गए। राबी दौड़ा ! मालिक आग उबल रहे थे।

"हैं, हैं, यह कैसा काम है, मालिक ! अबला पर हाथ उठाना, सुना है, बड़ी मर्दानगी है। गरीब घर की बेटी ब्याह लाए। मालकिन के कोई नहीं। बिचारी कहां जायेगी ? भरी दुनियां तो आवारी औरतें के लिए पड़ी है। घर की शरीफ

औरतें, कहाँ दामन पसारेगी।" रावी ने मालकिन को सहारा देते हुए कहा!

देखो, रावी! तुम मेरी बातों में टांग मत अड़ाया करो। बचपन से इसी द्वार में रहे हो, नहीं तो तुम्हारी भी खैर नहीं रहती! जाओ अपना काम देखो। घरेलू बातों से तुम्हें मतलब?

नौकरी लाचारी नहीं तो क्या है? लाचार नौकरी की तालाश करता। नौकरी गुलामी की पहली शृंखला है। जकड़े गए कि सस्ते छूटने की नौबत नहीं आती है!

रावी ने अपने कपड़े से मालकिन के सिर को बांध दिया, खून का चलना और छूटना बंद नहीं हुआ!

जीवनधन, इसी बीच में टसक गए। रह गई—माधुरी और रावी।

कुछ देर बाद माधुरी को होश हुआ! सोता हुआ जागकर देखता कि आगे क्या करना होगा, पर, माधुरी के लिए, बेहोशी ही अच्छी थी।

दोपहरी बदली-बदलती सन्ध्या को खींच लाने में तत्पर हो रही थी। गोधूलि की धुंधली छा चुकी थी। महराजिन रात के भोजन की तैयारी में जूट गई।

माधुरी को सर पर सख्त चोट आई थी। कोठे के एक कमरे में खिड़की खोल रास्ते के आए-गए लोगों को देखती जा रही थी। पिंजरापोल मुहल्ले की धनी बस्ती थी। शहर का बाज़ार यहाँ से हटकर कुछ ही दूर पर पड़ता था। नाटे, गोरे,

काले, मोटे, नाना प्रकार के लोग इधर से आ रहे थे, तो उधर से जा रहे थे। लोगों का यह आना-जाना गम्भीर तांता लगा हुआ था। माधुरी प्रत्येक रूप को निहारती जाती।

थक गई, फिर भी कोई बूढ़ा नज़र नहीं आया! जिसे देखा-छैल-छबीला। दोस्तों के साथ बातचीत करते युवक हंस-हंस बोलते जा रहे थे।

पुरूषों को जितनी ही माधुरी देखती प्रतिशोध की ज्वाला धधक उठती।

इन पुरूषों ने नारी को अबला रूप दे कर अपना रास्ता तो विल्कुल साफ रख छोड़े हैं, पर, पराधीन घर की सीकचों में इतनी कठोरता से बांध दी गई हैं कि न तों हाय मार सकती और न स्वतंत्र-हवा में सांस ले सकती हैं।

माधुरी पुरुष के अन्याय-भाव को भली भांति समझ चुकी थी। चोट खाकर यदि कोई न समझे, तो मूर्खता नहीं तो और क्या है?

माधुरी ने इस घर में रहना, अब तो उचित न समझा। जिसे पति प्यार न करे, उसका कौन सहारा!

नारी का क्रोध, प्रतिशोंध की ज्वाला पुरुष से भी बढ़कर होती है। नारी जितना कठोर, निर्मम, हो सकती है, पुरूष चने चबा कर भी नहीं हो सकता।

कमरे के आईने में अपनी सूरत देख माधुरी को कुछ भरोसा हुआ! चोट तो मिट जाएगी। दाग रह गई, तो विशेष बात नहीं!

आईने में झांकने पर पता चला कि रूप पर किसी बूढ़े मनहूस की छाया पड़ चुकी है। बादल में चांद छिप भी जाए, तो भी चांद छूटते ही खिलखिला ही उठता। माधुरी की जवानी बूढ़े की भूख में तड़प खा बलखाती हुई जवानी रूठना सीख रही थी। रूप का रौद्र-स्वरूप, नारी का और भी भयंकर फिर भी कमनीयता सौंदर्य का साथ नहीं छोड़ती !

रूप घूंघट में छिपा था। खिन्नता हटी; कि जवानी; फिर से खिलखिला उठेगी। माधुरी अपने अग-अंग का संदेश आंखों को दे रही थीं

आईने के अंतर से नारी का अहंकार झांक रहा था।

"माधुरी, यदि रूप पाकर भी दुःख पा रही हो, यह, कौन सा न्याय पुरुष के साथ कर रही हो?"

"जिसे भगवान रूप देता है न जाने उसका सौभाग्य क्यों छीन लेता ! सुन्दरी-अलकापरी-सी नारी दुर्भाग्य की थपेड़ों खाती-खाती चेत नहीं सकीं, यह तो नारी की लज्जा का अभिशाप है।" आईने में रूप देखने की इच्छा जवानी में हर कोई को रहती है। मीठी-छविं, न जाने किसे रूलाए, और किसे हंसाए।

आईने के पास खड़ी-खड़ी माधुरी अपने भविष्य के प्रति निश्चित हो गई ! दुनियां में रूप बिकता है। कहाँ ? बाजार में। कौन खरीदता— धनीमानी शरीफ गुंडे। दाहिने हाथ से देता है, तो बांए हाथ से पाता है। बेश्या ! ओह, बड़ा दुखान्त है। घिनौना जीवन है। एक दूसरे को बटमारना चाहता है। फिर भी रईसी यहाँ ही कटती है। शराब की बोतलें खाली

करने का पहले-पहले यहीं से चस्का लगा है। वाद में छूटता है, जो तकदीर की ठोकरें खाकर सीख लेता है—एय्याशी और विकल-घिनौना जीवन! संस्कार छीन जाता है। पर, कोई नहीं देख सकता! कब छीना गया, कब ठगा गया। रईसी की दोस्ती जब टूट चली। तो वेहोशी भागी।

माधुरी के अंतर ने कहा, कि पुरुष अन्याय करे और नारी सहनशीलता की देवी बनी रहे! यह कौन-सा न्याय है? स्त्री-धर्म की शक्ति का अंदाजा धर्मशास्त्रों में अटकल लगाया जा चुका है। पुरुष ने नियम वनाए हैं, पक्षपात की काफी गुंजाईश है। फिर, जाऊँ कहाँ? मां रहती, भाई रहता, तो सहारा भी था। उधर का रास्ता भी बंद है, इधर कौमार्य लुटाकर ठुकराई जा रही हूँ।

पुरुष कितना निर्लज्ज और स्वार्थी होता है! चिराग रौशन हुआ कि आंखें मटकाते रहे, कली टूटी कि जान ले भागे।

अन्यायी पुरुष का साथ समाज देता है, जालिम औरतों से समाज किनारा कस लेता है।

तुम्हें हुआ ही क्या है? उजड़ गई जवानी तो शृंगार क्या है? वेवकूफों को ठगने की सहज दवा क्या है?

शृंगार का हरा-भरा रूप सारे बाजार बेचना। मन प्रश्न पर प्रश्न पूछता जा रहा था। माधुरी उतनी ही विकल होती जा रही थी। प्रति शोध की ज्वाला ज्वलंत हो चुकी थी। उदाहरण देना सिर्फ अवशेष था।

बूढ़े ने विवाह क्यों किया? अंधे को शौक चर्राता है, तो काली-कुतिया भी सुन्दर समझ बैठता है!

और मेरे पिता ने गरीब घर से उठा कर अमीर-घर में शादी कर दी। सोचा होगा, कंचन में नारी मस्ती भूल जायगी। कुछ चांदी के चंद टुकड़ों पर, मैं खरीदी गई थी। उस समय मेरी अवस्था सिर्फ सोलह साल की थी। इनकी दाढ़ी, जो सफेद थी। सुहाग रात में ही देख चुकी थी।

कंचन की खनखन में यहां सजी सजाई आई! जोबन बड़ी बेरहमी से लूटा गया! न हिश, न ऊश! माधुरी के समीप पुरुष का अन्याय, तत्काल असह्य हो उठा था। पुरुष निकाल रहा है, मैं भी पुरुषों को अपने घर से धक्के मार निकलवा दूंगी। छलिया कबतक छल कर सकता है! नारी परिणाम की ओर कम ध्यान देती। कारण, उतावलापन जब चरम-सीमा को पहुँचती, तो नारी का उच्छृंखल-स्वभाव अनवरत उग्र ही रहता है।

नारी की जलन, ईर्ष्या, स्पर्धा, ये तीन बड़ी अनमोल होतीं। ईर्ष्या तो किराए पर भी होती है। जलन भीतर-भीतर ऐसी जला करती है, कि अंगीठी की तरह शोले अंतर ही लहकते।

नारी से वैर लेना, यथेष्ट साहसिकता की जरुरत है! जितना पाप छिपा-छिपा नारी कर छिपा भी सकती है, यह सौजन्य पुरुष परखने में बराबर धोखा खाता है।

नारी की शांत अवस्था पुण्य की सीमा है, जिसे भाग्यवानों को ही नसीब होती है। नारी का रौद्र-रूप शंकर से भी भयंकर होता है।

माधुरी का रौद्र-रूप अपमान की भट्टी में छहक रहा था। सर पर चोट का कलंक, मानो चांद का कलंक, जिसे जीवनधन दे चुका था !

रावी खड़ा-खड़ा, छुपे-छिपे मालकिन की डरावनी भाव-भंगिमाओं को सशंक हो देख रहा था।

घर उजड़े के पहले वाता वरण शांत रहता है, चूं-चां नहीं होती। तो, एकदिन आग लग जाती है, और घर टूट कर गिर पड़ता है! रोज़ कितने घर चौपट हो रहे हैं, इसकी खबर भी किसे हैं ?

रावी जीवनधन से डरता था। कारण, ग्लानि के भार से दबा आदमी किसी के सामने सर उठा कर नहीं चल सकता। रावी जानता था, जीवनधन को समझाना क्या है, साँप की छेद में पानी डालना है। विनाश के समय वुद्धि झख मारने लग जाती है। मित्रता सूझती है। जीवनधन के मित्र तो काफी चकल्लस काटते। यहाँ जीवनधन की पत्नी रोती रहती।

विनास के समय समझाना क्या है जबरदस्ती का झगड़ा मोल लेना है। रावी यह सोच, चुपचाप स्मशान की छटा देखता रहा, जैसा कि आम लोग भी मरघट में तमाशबीन की तरह चुप टुकुर-टुकुर देखते रहते !

रावी नौकर था। नौकर को भरोसा ही कितना ? रावी अनिष्ट की भावना से व्याकुल हो उठा था। पर, गुलामी क्या जाने राहत !

"मालकिन ! भोजन तो कर लें !" रावी ने माधुरी का ध्यान भंग करते हुए कहा ! माधुरी चौंकी ! हाय रे पुरुष ! नारी की निर्लज्ज-अवस्था में भी नहीं चूकता।

"मुझे भोजन नहीं चाहिए—रावी ! तुम निकल भाग। रहमत के शोले से पाप की चिन्गारी निकलती है ! मुझे अब इस घर में रहना नहीं ! मैं जाती हूँ ! ले, यह चाभी, मालिक को दे देना।"

रावी के पैर कांप रहे थे। फिर भी उठा, हाथ, और चाभी माधुरी के हाथ से ले ली !

"मालकिन, घबड़ाने से काम नहीं चलेगा ! धीरज रखिए। नहीं तो बूढ़ों की लाज नहीं बच सकेगी।" रावी ने रोते हुए कहा !

"जा, चला जा, उपदेश झाड़ने आया है ! अपना दर्द था, तो मार खाते समय बचाया क्यों नहीं !" माधुरी तुनक कर बोली।

"क्योंकि, गुलामी की जंजीर बूढ़ापे की काया में बंधी थी। लाचार की सीख अच्छी होती है। मालकिन !"

"तो' मेरा रास्ता छोड़, भगवान ने चाहा, तो बूढ़े तो क्या सारे हत्यारे पुरुष-समाज से बदला लूंगी। यह न भूलो, नारी का पतन शिव के तांडव से भी बढ़कर होता है।"

माधुरी क्रोध से तमतमा रही थी। ये शब्द, कितने कठोर थे, उतने ही अंजाम अनोखे थे।

रावी क्या कर सकता था ? कोशिश तो रही। असफल हुआ; गुलामी की जंजीर बड़ी पैनी थी। लाखों गुलाम कटते

रहते। किसे खबर, रईसों के घर कैसी-कैसी हत्या होती है। राबी, यह विचार, चुप हो गया।

गोधूलि के बाद, सन्ध्या, और उसके बाद रात आ पहुँची। रात बड़ी काली, अंधियारी; न पथ सूझे न बाट। और, माधुरी ने धीरज बांध, अपमान का संबल ले, उदासी की मन्द-मन्द पग-गति में महल के पिछाड़े से निकल गई।

कहाँ जा रही है, यह नारी रात की तमतोम-अंधियारी में किसका भरोसा है—इसे ?

भरोसा भाग्य का, हस्ती अरमान की। हारा आदमी क्या नहीं करता। अपमानित नारी कब नहीं उधम मचाती।

भीषन अपमान, तो प्रतिशोध भी भयंकर। एक नारी का अपमान सारे समाज का अपमान। पर, समाज परिणाम नहीं सोचता। सिर्फ, लीक पीटे चलता है। माधुरी का अब तो, न कोई अपना और न कोई पराया।

रात की सड़कों पर माधुरी, अनमना-सी, खिन्न, अभावस-सी उदास चलती जा रही थी। निकल तो जोश में पड़ी; लेकिन कहाँ जाए, क्या करे। आत्महत्या ? नहीं, पाप। पापी से प्रतिशोध मरकर क्या लिया जा सकता है, जिंदे-भूत बने रहो। आबाद रहेगी, तेरी दुनियाँ।

रास्ते-रास्ते निकल भागती हुई माधुरी अपने भाग्य को कोस रही थी। युवती हुई। पिता ने विवाह रचाए, फिर भी मेरी जवानी उदास रही। बूढ़े की साया जवानी पर पड़ते ही छुईमुई-

सी जवानी मुरझा जाती है। पति पाकर भी जवानी उदास रहे, कोई बड़ी बात नहीं। आंख मूंदकर युवतियों का सुहाग चढ़ा दो, तो उदासी नहीं, तो चांदनी किस बूते पर खिलेगी। अरमानों को कुचलना समाज तो खूब जानता है। क्या करें, अभागन युवतियां।

शिक्षा दीजिए तो गलबहियां मारने में पुरुष से भी निडर हो जाती। जवानी उदास रहे, तो मन क्या करे? समझ के साथ-साथ अपना जीवन-संगी ढूंढ़े।

प्यार किस चिड़िए का नाम है, कामुक-कुत्ते नहीं जानते।

नारी की बुद्धिहीनता रूप के गर्व में छिपी रहती है। गर्वीली नारी जितना भी इठलाए, उतने ही लोग नाजोअदा में बेपरवाह उल्लू बने रहते।

आज, भानुमति-मंदिर में अपार भीड़ थी। कारण, रास-लीला का खास स्वांग रचा गया था। धर्म के सहज विश्वासी एक पर एक मन्दिर में घूसे जा रहे थे। खोपड़ी ही खोपड़ी नजर आ रही थी। राज और माधवी दोनों कृष्ण-मंदिर की चौखट पर खड़े भीड़ का निरीक्षण कर रहे थे। रास के आरंभ होने में एक घंटे की देर थी।

सहसा, मृदुला आती हुई नजर आई। माधवी ने मृदुला की ओर इशारा करते हुए राज से कहा:—देखिए, मृदुला तो ठीक-हूबहू गोपी ही लग रही है। हरे रंग की साड़ी कितना फब रही है। आज की रात में राधा यही तो बनेगी। मांग पर

सिंदुर; सुहागिन, आज भक्ति-रस में डूब जायेगी। नटवर की महिमा बड़ी है।

"इन बातों से मुझे लाभ? नारी की चर्चा से मेरा दिमाग चकराने लगता है। हर फूल सुन्दर है, आंखों-आंखों की मीठी आंख मिचौनी है। तुम रास लीला को भक्ति कहती हो? यह तुम्हारा भ्रम है।" राज ने कहा।

"सारा संसार ही भ्रम है। मिथ्या है। फिर, रास लीला, यदि भ्रम की बात है तो, कोई बड़ी बात नहीं।"

"कैसे बड़ी बात है नहीं? मन्दिरों में सम्पत्ति क्या रास-लीला मचाने के लिए दी जाती है। रास-लीला! रास-लीला!! जब देखो, रास-लीला।"

राज अपनी बात पूरी भी न कर सका, कि किसीने पीठ पर एक हल्की-सी थपकी लगाई। राज चौंक पड़ा। मुड़ कर देखा तो श्रीरामदास जी गेरुए-वस्त्र में सजे-सजाए खड़े थे।

राज अवाक् रह गया।

"मैं आप को नहीं पहचानता?" राज ने प्रश्न किया। इतनी जल्दी भूल गए। स्वामी नटराज जी से क्या तुमने शिक्षा नहीं पाई थी? मैं भी तुम्हारे साथ योग सीखता था। पहचानो, मैं तो तुम्हारा वही—"रामू हूँ।

जल में कंकड़ फेंकने से क्या होता है? विस्मृति के बाद स्मृति की लहरें उठती हैं। स्मृति अचरज करती है, सौभाग्य सर आंखों लगता है। पन्द्रह साल पहले की बात राज को याद हो आई।

आंखें मींचते हुए राज ने कहा:—"क्षमा करना मित्र। मेरी स्मृति गड़बड़ा गई है। सोचता हूँ, भूल जाता हूँ। अभी भी, तुम मेरे "रामू" हो, मुझे; सन्देह हो रहा है।"

संदेह की क्या बात है। ऊपर कोठे पर चलो। सारी बातें समझा दूंगा। पर, रास-लीला से तुम्हें अश्रद्धा क्यों? अभी-अभी तो माधवी-देवी से कह रहे थे।"

तीनों कोठे पर पहुँचे। महंथ की फर्शदार गद्दी बिछी हुई थी। दो चेले गांजे की दम लगा रहे थे॥ महंथ का कमरा, मत पूछिए, चमन था। संगमर्मर की झकझक, चित्रकारी मारी हुई, कमरे की दीवाल, रौशनी से झलमला रही थी। स्वर्ण-कलश फर्श की बाईं ओर आम के पत्तों से ढका हुआ था।

राज फर्श के किनारे की ओर बैठा। माधवी राज की बाईं ओर बैठी और गलीचे की मुलायमदार तकिए के सहारे, मध्य में श्रीरामदास तपाक से बैठ गए! भारी-भरकम बदन। आकृति में न ब्रह्म-तेज, और न पेशानियों में तरलता। वासना की लप-लपाती आंखें, निस्तेज और निष्प्रभ थीं। अधर पर पतझड़-सी उदासी छाई थी।

एक ओर, राज का सौम्य-शांत—निर्विकार रूप, दूसरी ओर स्खलित अप्रतिभ उदासी, श्रीरामदास का रूप-चित्रण था। माधवी, दोनों रूपों की तुलना मन ही मन कर रही थी। चुप थी। सोच रही थी।

नारी पुरूप की आकृति को जितना समझ सकती है, उतना पुरुष रूप की संज्ञा नहीं रखता। सौम्य और सरल रूप के

प्रति हमारा आग्रह तत्काल होता है। पहली झांकी में रूप का प्रभाव सबसे पहले होता है, पीछे व्याप्त सौंदर्य की मीमांसा हम करने लग जाते हैं।

पहली झाकी का आकर्षण, स्वाभाविक है, मानवीय-सौंदर्य स्पन्दन की अपरिमित-प्यास है। राज की आकृति इतनी सुन्दर थी कि यौवना-हिरणी-सी कामनाएं, उस ओर सहज भाग सकती थी। माधवी का रूप भी शबनम की कातरता लिए, खिलती, किलकिलाती हुई चांदनी से होड़ लेने को निशि-वासर प्रस्तुत था।

आज माधवी का रूप छन कर सौंदर्य-प्याली में उतर रहा था। नन्हीं-नन्हीं ऊंगलियां, रतनार-होठ; चितचोर मतवाली आंखें—क्या सितम, अनूठी-नारी।

यूं तो; माधवी को देखने का सौभाग्य कईबार श्रीरामदास को मिल चुका था। पर, आज कई बातें; अनुपम और लाख-लाख की थीं।

नारी के रूप से पुरुष इतना अधीर क्यों हो जाता है? क्योंकि अंग, अनंग की गतिमति में, उस क्षन, अंग-अंग की छानबीन करने लग जाता। श्रीरामदास अपने मित्र से बातचीत करने आये थे, न कि माधवी का निखरा चांद देखने।

तिरछी खामोश नजरें माधवी की ओर पड़ती जा रही थी, और माधवी क्षण-क्षण इस स्थान से निकल भागना चाहती थी।

कामुकता की शराबी-आंखें नारी जितनी जल्दी समझ और ताड़ लेती है, उतनी जल्दी गायक के सुर और तान, अच्छा-कलाकार भी नहीं समझ सकता!

महफिल क्या जाने, गीतों की परिभाषा। तन्मयता। झूमने लगते, मानो हवा का तनिक झोंका लगते ही पत्ते चरमरा उठे।

राज तो अपनी भावनाओं में डूब रहा था। क्या मेरा "रामू" आज महंथ है? सूरत तो कुछ-कुछ वैसी ही झलक रही है। स्वामी नटराज का उल्लेख तो ठीक-ठीक है। लेकिन, मेरा "रामू" दुबला था। इसीलिए स्वामी जी कहा करते थे—"मेरे बच्चे स्वास्थ्य की ओर किशोरावस्था से ही ध्यान दो! नहीं तो, भविष्य बादलों को फाड़ कर जीवन सुखद न हो सकेगा" लेकिन, आज इतना मोटा-भारी-भरकम शरीर वाला श्रीरामदास मेरा 'रामू' कैसे हो सकता है?

तकिए के सहारे बैठकर श्रीरामदास ने मीठी-आहें भरी। माधवी तो मृदुला से भी बढ़कर सुन्दर है। ओठ कितने सुन्दर। कितने नवनीत। रूप रसीला, छवि कंटीली; ओर-पोर यौवन, कसे उरोज, नैनों के सपने। भूखा शेर शिकार की टोह में लग गया। माधवी की घबड़ाहट, और चलने को आतुर देख श्रीरामदास बोल उठा:—"आप तो डरी क्यों जा रही हैं? मन्दिर में डर किस बात की। राजराघव, मेरा सहपाठी-मित्र है। लम्बे दिनों पर भेंट हुई, लेकिन पहचानने में देरी क्यों हो रही है? बताओ, राज! स्वामी जी की वे बातें भूल गए क्या?"

"कौनसी बातें?"—राज ने बड़ी जिज्ञासा से पूछा।

"स्वास्थ्य के संबंधवाली बातें, जो मुझे दुबला देख सुना-सुना कर कहा करते थे।" श्रीरामदास ने झट कहा। राज

इतना सुनकर उछल 'रामू' के गले लग गया। श्रीरामदास को भी आनन्द आया, लेकिन उस व्यापारी की तरह जो सड़ी-चीज ग्राहकों झूठा सौजन्य दिखा दे देता है।

मन के भीतर पाप हो, तो सौजन्य सभ्य क्योंकर हो सकता है? जैसे कीमती-वस्त्रों में वेश्या! धोखा, ठगई, और फरेबों की रग-रग-धमनियां तो चलती ही रहतीं। न रोक। न ठोक।

"भाई, स्वामी जी तो स्वर्ग सिधार गए। चेले-चटिए भी इधर-उधर छितरा गए। उनकी मृत्यु के एक मास बाद में अमर-कंटक को आया हूँ। शरीर तो भारी-भरकम हो गया है? इतने मुटा गए कैसे—रामू!" राज ने कहा!

मित्र को संवाद देना कर्त्तव्य था। पर, शोक की कोई छाया श्रीरामदास पर न पड़ी। स्वामी जी राज को अधिक मानते 'रामू' तो फटकार ही सुना करता था। स्वामी जी का वात्सल्य-भाव राज पर टिका था। गुरु का प्रेम विचित्र होता है, पिता-माता का प्रेम सचित्र होता! एक संस्कार को चाहता है, तो दूसरा—ममता। गुरु, चित् है, तो मातु-पिता—सत्य!

राज को आश्चर्य हुआ। रामू ने संवेदना के स्वर में कुछ नहीं कहा सिर्फ बातें बना दी।

"स्वामी जी संत-पुरुष थे। तुम्हें कितना प्यार करते थे—राज! याद तो होगी ही? मैं तो भाई, उनकी फटकार से भय खाकर भाग गया। भानुमति ने मुझे महंथ बना दिया। उस-दिन से यहीं रहता हूँ! सेवा का कार्य कर रहा हूँ। मन्दिर की

अवस्था भी पहले से अधिक सुधरी हुई है। देख रहो न?"

श्रीरामदास ने एक कपट भरी दृष्टि माधवी की ओर फेरी। माधवी मानो बेहूदे इशारे से घबड़ा गई! फिर भी, चुप रही! राज उठे तब तो?

"आज, वसंत-पंचमी है। रास-लीला का आरंभ आज से प्रारंभ करवा रहा हूँ। एक महीने तक रास-लीला होती रहेगी। भक्ति की गंगा उमड़ेगी! तो, तुम्हें रास-लीला से अश्रद्धा क्यों?" श्रीरामदास ने राज की ओर नजर कर पूछा! अपना-अपना विचार है। मेरे विचार से तो, राज रुक गया। श्रीरामदास ने झट कहा:—"रूको नहीं, मैं जानना चाहता हूँ कि तुम्हारा विचार इस पक्ष में क्या है। भाई, तो, अपना-अपना विचार होता ही है।

"सत्य और सुन्दर। ठीक, बिल्कुल ठीक। "हमारे विचार भिन्न-भिन्न न हो, तो संसार का कार्य-क्रम ही रूक जाए। कुछ संत-विचार तो चिरंतन हैं, और तो सारे विचार मस्तिष्क की लम्बी-दौड़ है। एक विचार से बातचीत में सरसता नहीं आती। विभिन्न-विचार में मन की गति झलकती है।

रास-लीला? जीवन तो स्वतः एक रास है, प्रत्येक मनुष्य अपनी कार्य-लीला यथासंभव संपादन करता है। रास के लिए श्रीकृष्ण भी मिलें तब तो—लीला हो। मांस-पींड का विकारमय शरीर युवतियों के साथ रास-लीला क्या कर सकता है? असंवभ! धर्म के नाम पर पाप और वासना की टीका लगाने से कोई लाभ नहीं। धर्म तो प्रत्येक मनुष्य का अपना-अपना होना

चाहिए। मानसिक-अवरोध से धर्म भी बिगड़ जाता है, तो भगवान के नाम पर अपनी भूख मिटाने से परलोक भी बिगड़ जाता।

'रामू'! धर्म की आड़ में युवतियों का हरित-कौमार्य, सुहागन की चूड़ियां तोड़ डालने से, भानुमंदिर के नाम पर कलंक की टीका लग जाने का भय है। इन्द्रियां मचलती रहती हैं, इस वेग को रोकना बड़ा कठिन है। दुस्तर है। यदि इन्द्रिय-सन्मुख मनुष्य रास-लीला करे तो भगवान क्या करे?

क्रोध की कोई वात नहीं। रास-लीला करते समय इन्द्रियों को रोकने की क्षमता सभी में संभव नहीं हो सकती! बिरले लोग, इन्द्रियों को दमन कर सकते हैं। रास-लीला मचाओ, पर, विचार कर लो, कि कलंक का धब्बा मंदिर के नाम न लगने पावे! नहीं तो, मन्दिरों से लोगों को अश्रद्धा, घृणा होती जायेगी। मन्दिर की शांति में कोलाहल लाने का प्रयोजन छोड़ दो। रामू, स्वामी जी की बात तुम्हें अवश्य याद होगी।

"पुरुष पुरातन और चपला लक्ष्मी! नारी विष नहीं, पर नारी का सौंदर्य तो मीठा-विष है। सौंदर्य भावना है, मनुष्य का पवित्र कार्य-पक्ष नहीं। शांत भावना ही भक्ति है और शांत-मूर्त्ति ही योग।" स्वामी जी की ये बातें गम्भीर-अनुभव के हैं, और मुझे आशा है स्वामी जी की बातें नहीं भूले होंगे। हर फूल सुन्दर है, हर लीला अपरम्पार है। मौलिक तो आत्मा है, शरीर, रूप, वासना, मोह, अहंकार, पिपासा, भूख, वियोग

सभी विकार हैं। भगवान की लीला का अनुकरण करने के लिए; आत्मा को उतनी सबल कर लेनी चाहिए।

श्रीकृष्ण की रास-लीला का अर्थ यह नहीं कि युवतियों के साथ आंखमिचौनी, और नाच-रंग के संग रहें, वरन् मनोविकार से ऊपर उठने की परम-अवस्था का पाठ पढ़ें।

भक्ति हृदय का शांत-अनुराग है भीड़भाड़ और कोलाहल का कौतुहल नहीं।" राज इतना कहकर चुप हो गया। सच्ची भावनाएं भावुक बना ही देती है।

जो भावनाएं मार्मिक होती हैं, वे ही संत-परमोच्च, संबुद्ध-प्रबुद्ध आत्मा का अगोचर संस्कार हैं।

श्रीराम का मन क्रुद्ध हो उठा। फिर भी, सभ्यता के नाते चुप रहा। अपमान पी गया।

कलुष-आत्मा अपमान तो क्या, नारी के नग्न-सौंदर्य को भी पी जाने में गर्व ही अनुभव करता है।

अनुभव तो बराबर उचित नहीं होता। जिंदगी में अनुभव पीछे होता, और पाप पल-पल पहले।

माधवी ऊब चुकी थी। श्रीरामदास की नजरें तिरछी ही पड़ती जा रही थीं। पुरुष कितना नीच है। नारी को देखा कि फिसला। जवानी देखी, तो दीवाने का सपना देखने लग गया।

माधवी बोल उठी:— "आप लोग बातजीत कीजिए। मैं तो रास-लीला देखने जाती हूँ। देखिए न, नपुरों की झनझनाहट यहाँ तक पहुँच रही है। पर, आप लोग तो बातचीत करने में मग्न हैं।

माधवी की रुचि राज की ओर पल-पल बढ़ती जा रही थी। राज के मुख से जो अमर-सत्यमयी बातें निकल अभी चुकी थीं, गद्-गद् हो उठी। पर, नराधम श्रीरामदास की बुरी-निगाहों के तीर से माधवी घबड़ा गई।

"बातचीत तो, फिर हो सकती है। चलिए, हमलोग भी रास-लीला देखने नीचे की ओर चलें। आशा है, राज, तुम भी हमलोगों का साथ दोगे ?" श्रीरामदास ने झट कहा।

"भाई मुझे तो जीवनधन जी के यहाँ जाना है। कहते हो, तो कुछ देर रास-लीला भी देख लूं ! राज ने उत्तर दिया।

रास-लीला आरंभ हो चुकी थी। एक कृष्ण बना हुआ, कागज के बनाए कदम्ब-वृक्ष के निकट बांसुरी बजा रहा था। मृदुला गोपियों के साथ राधा बनी हुई थी।

खासा नृत्य हो रहा था। श्रीरामदास के साथ-साथ माधवी और राज बिछी हुई कालीन पर सबसे आगे जाकर बैठ गए ! लोगों ने रास्ता छोड़ दिया और महंथ जी को दंडवत् करते हुए धार्मिक-लोग पीछे-पीछे चलने लगे।

लीडर आगे बढ़ता है, तो पिछले भी अनेकों झूठी-प्रशंसा के लिए साथ हो लेते हैं। बड़ी मोटी टीक वाले महंथ के चेले इर्द-गिर्द चक्कर लगा रहे थे। कारण कोई नादान फंसी कि पांचों अंगुली घी में !

"दंडवत्।"

"सुहागवती रहो।"

"दंडवत्।"

"सौभाग्य बढ़े ! पुत्र-रत्न की प्राप्ति हो।"

किसी ने पैर छूए—तो,

"मनोकामना पूरी हो"

"पर, महाराज, मेरी पतोहू को लड़का दस वर्षों से नहीं होता।"

"तो, दिखाना हाथ। पांचवें-स्थान में राहू पड़ा होगा।"

"कल लेती आऊँगी।"

"मेरा बेटा परदेश चला गया है, कबतक लौटेगा।"

"कल बताऊँगा। अभी अवकाश नहीं।"

नृत्य की झमाझम के बीच, श्रीरामदास जी से कई स्त्रियां, कई अधेड़ मनुष्य बातें पूछ रहे थे !

अफसोस—नृत्य की तन्मयता के बीच ये अवरोध। कला का अपमान !! रास-रंग के बीच—यह धोखा !!

छुईमुई-सी लज्जावंती मृदुला अंगों की उछाल में, नूपुरों की झनकझन में इतनी तन्मय हो रही थी, कि साकी की मदिरा लपक उठी थी ? क्या झपक, क्या तपक, क्या तिन-तांय, रून-झुन—खनखन—पायल।

मृदुला डोल रही थी; कि रुप जवानी को हल्का-सा इशारा दे रहा था।

जवानी बोल उठे, तो मन उसे क्या कहे ? तरंग ! मस्ती !! अधर-विपसित !!!

कृष्ण जो बने थे, क्या अँखिया मार रहे थे। क्या तीर चला

रहे थे। क्षणभर का यह मनोरंजन, कितना सरस, फिर भी इन्द्रिए-आखेट था।

पूर्णिमा की स्निग्ध-अवस्था में जो मनोरंजन कामुक-कुत्तों को होता है, ठीक उसी भांति का मनोरंजन श्रीरामदास को और लोगों से विशेष हो रहा था। दर्शक की आँखों में मृदुला की घुमड़ती-उभड़ती जवानी का सुनहला-रंग छाया जा रहा था। कृष्ण की बंशी बज रही थी। लोग मन ही मन उस आदमी के भाग्य की सराहना कर रहे थे, जो सांवलिया बना बंशी की टेर में रसलीन हो रहा था। जनता अपने जनार्दन से भेंट करने आई थी। भीड़ और भाड़—मन्दिर में। तो, शांति-लाभ के लिए, अब तो कोई दूसरा स्थान नहीं। मन्दिर की स्थापना का उद्देश्य यह नहीं कि लोग भीड़ लगाएं और छिपे-छिपे कलियां तोड़ें। नारी के अंग की बेइज्जती की जाए। और जनता खड़ी-खड़ी देखती रह जाए।

परिश्रम और कर्म के वाद मनुष्य की क्लांत-आत्मा उस ठौर जाना चाहती है, जहाँ शांति, जो परिश्रम की क्लांति के बाद नितांत-आवश्यक है; कुछ समय के लिए, दुनियावी-झंझटों को भूल जाए। मन की शांति दु:ख में भरोसा देती है। शांति सुख-काल में कदापि नहीं आती। मन चंचल तो शांति, घरेलू-झंझटों से कैसे मिले? मन्दिर में जा लोग चाहे अंध-विश्वास कहिए, या धर्म की आस्था; शांत-वातावरण के सौम्य-सगुण-रूप में अपने मनोविकारों को, अपनी मन: व्यथाओं को, निर्विकार-रूप में देखना चाहते हैं।

मृदुला की सीप-सी आंखें भक्ति की आस्था में लवलीन हो रही थी। पायल रूनझुन हो उठे थे, पैरों की गति बढ़ती जा रही थी। चेहरा रक्तिम हुआ जा रहा था। कपोलों की अरुणिमा जाग उठी थी। गोपियों के संग, मृदुला-राधा के अंतरंग श्रीकृष्ण जो श्री रामदास का मुख्यचेला घनश्याम था, मन ही मन अपने भाग्य की सराहना कर रहा था।

मृदुला की भक्ति नहीं, वरन् नारी के नग्न-सौंदर्य का भूखा-प्यासा घनश्याम इस टोह में था कि कब आंख बचा उरोजों को छू लूं। पर, अवसर की प्रतीक्षा में इतना उतावला हो रहा था कि वंशी की आवाज थरथरा उठी।

राज, घनश्याम की मनोदशाएं पढ़ रहा था।

आग में घी डालने से जो लपटें उठती हैं, घनश्याम के मन में वासना-तरंग हिलोर विल्लौर ले रही थी। मृदुला को खबर ही नहीं, कि कौन सा षड्यंत्र भीतर-भीतर चल रहा है। भोली युवती क्या जाने, पुरुष की मतफेरी। मंदिर में भी प्रवंच?

इतनी भीड़ थी, कि धक्के पर धक्के खाकर भी लोग धर्म के विश्वास में चोट भूल रहे थे। धर्म के नाम पर लोग धक्के तो क्या बहू-बेटियों की इज्जत तक ठेकेदारों के चालाक-हाथों में दे देते।

भीड़ पूर्णमासी की ज्वार सी बढ़ती ही जा रही थी। घनश्याम को मौका नहीं मिल रहा था। बांसुरी की तानं बेजान थी। मन का खग कुलकुल बोल रहा था।

माधवी को रास-लीला में उतना आनन्द नहीं था, जितना

कि राज की भावपूर्ण सशंक भावाकृतियों के अवलोकन में।

चालाक-चोर घात में रहे, तो भला मौका कबतक छिपकर भाग सकती है।

मौका, खोजने वालों को, खासकर पापकार्य के लिए इतनी जल्दी मिल जाता कि सज्जनों को आश्चर्य होता है, और पापी को अपनी सफलता पर गर्व।

पुण्य-कार्य का मौका अल्प मिलता है, तो पग-पग पाप के मौके मिलते जाते हैं।

घनश्याम मृदुला के निकट सटता गया। बांसुरी हाथ में ले ली। कृष्ण-रूप में मृदुला-राधा से पूछा:—कहो, राधा! समय तो सुहाना है। दिनभर हवा तो फागुन खेल रही थी। फाग-फाग में गुलाल तो सखियों को छिड़को। बांसुरी की टेर में तन-मन खो देना, नारी के धर्म पर बड़ा धब्बा लग जाने की संभावना है। प्रेम करती हो, तो भी तुम्हारा प्रेम विवाहित-प्रेम नहीं। समाज बदनाम करता रहेगा। आओ, हिलमिल खेलें फाग।

दर्शकों ने समझा—बड़ा सुन्दर उपदेश नारी-धर्म पर दिया जा रहा है। भक्त अंधविश्वास में तुरत आस्था कर लेता, धोखे खाने की भी नौबत आ जाती।

घनश्याम का उपदेश सुंदर था। स्वर्ण-कलश में सांप बैठा रहे, तो कलश को क्या कहे? स्वर्ण-कलश! सांप तो भीतर छिपा बैठा है। भीतर कौन परखता? सफेद पोशी?

'भूखा पेट और मुंह में पान।'

घनश्याम श्रीरामदास के इशारे का इंतज़ार कर रहा था कब श्रीकृष्ण-मूर्त्ति के सामने की रौशनी बुझे और कब तख्ता हटे। डर सिर्फ इसी बात की थी कि सारी बनी हुई गोपियां तो तख्ते के सहारे भीतर खोह में सरकती हुई नहीं समा सकती! तख्ती का मुंह छोटा था। अग्र भाग में खोह संकीर्ण था! चार आदमी से अधिक अग्र-भाग में समा नही सकते।

घनश्याम की आंखें चौबे, और पांडे को खोज रही थीं। ये लोग अबतक क्या कर रहे हैं? श्रीरामदास जी भी इशारे देने में विलम्ब क्यों कर रहे हैं। चौबे किधर चरने चला गया। पांडे तो भंग-छाकने में ही मशगुल होगा। जरा भी काम की परवाह नहीं करते? महंथजी से पैसे ऐंठने में तो चौबे और पांडे बड़े होशियार है! पीताम्बर की तो बात ही न पूछो। महंथ जी से हुकूमत उसी की चलती है। महंथजी ने कहा कि जब वे इशारा देंगे, तो कदम्ब के पास ही सटे तख्ते को हटा देना! पीताम्बर जनता की आंखों में धूल झोंक मन्दिर के अग्र-भाग की रौशनी बुझा देगा! बातचीत तो ठीक ही हुई थी। लेकिन अभी तक कोई संकेत नहीं मिल रहा है। क्या कारण है?

घनश्याम मन ही मन सारी बातें सोचकर घबड़ा गया। कहीं भांडा तो नहीं फूटेगा। विस्मय की कोई बात नहीं। शायद, महंथ जी मौका ढूँढ़ रहे हैं। उसने एक दृष्टि महंथ जी की ओर फेरी।

महंथजी यों अकड़ कर बैठे थे कि एय्यास-पुत्र को पिता की सारी जायदाद मिली थी। हराम का खाना, फिरभी न चरना और चराना।

हमारे कुछ दानवीर भाइयों ने मंदिरों के संचालन के लिए बड़ी-बड़ी जायदादें दी हैं, ताकि शांत-भाव से भक्ति गंगा में लवलीन होने का सुअवसर मिले। सम्पत्ति का सदुपयोग करने के लिए, महंथ नियुक्त किया जाता है, जिससे आरती, पूजा, पाठ और भगवान को भोग लगाने में देरी न हो।

अंधविश्वास का धर्म-पक्ष मन्दिर है, तो, सम्पत्ति का मार्मिक-पक्ष परमार्थ। इसी आधार पर दानवीरों की कृपा इस ओर अधिक रहती है। नाम की बाती जले और स्वर्ग की प्राप्ति हो। स्वर्ग की मीठी-कल्पना बड़ी पुरानी है, नहीं तो ब्राह्मणों का बोरिया-बस्ता कब का बंध गया होगा। पैसे ऐंठने के लिए पूजा-विधान की लम्बी-चौड़ी भूमिका इस तरह बांध दी गई है कि साधारण मनुष्य पूजा के खर्चों से बचने के लिए नास्तिक बनने का ढोंग रचा करते!

पहले पेट का ठिकाना, तो बाद को पूजा। भूखे पेट में स्वर्ग की कल्पना भी नहीं सूझती। गरीबी एक अभिशाप है। श्रम जीवियों के परिश्रम पर मौज उड़ाने वाले धनीमानी-रईसों ने इस नरक को आबाद रखने की निरंतर कोशिश किए हैं और करने को हैं।

गरीबी का नरक-कुंड यह पापी-पेट है, जिससे लाभ उठाकर

धनिकों ने चार गज़ कपड़े और दो टूक रोटियों के सिवाय, हमारी जिंदादिली के लिए कुछ भी नहीं रख छोड़े हैं।

मौज़ धनिकों की बपौती है, तो सम्पत्ति शोषण की अर्द्धाङ्गिनी है। बेचारे गरीब टकटकी लगाए रहते कि कौन दिन उसके सफल और आनन्द के होंगे।

गरीब संतोष को अपना भविष्य समझ बैठता है, और इधर, धनिकों के घर दीपक जलता है।

सुना है, भगवान बड़ा न्यायी है। यह भी सुना है कि गरीबों के घर भगवान रहता है। सच हो या झूठ। इतना तो ठीक है कि मन्दिरों में नहीं रहता। निवास-स्थान समझा जाता है। गरीब की संतोष-कल्पना उसका भगवान है। भगवान भी विचित्र-खोपड़ी का आदमी है। जिसे देता छप्पड़ फाड़कर देता और शनि की नजर से छीन लेता। झोपड़ी बराबर आबाद रही है, न तो वे महल रहे हैं, और न रहने की संभावना है। सिर्फ एय्याशी और बदचलनी की चिन्गारी रह गई है। और बदकिस्मती गरीबों की रह गई।

मृदुला के विवाह का एक मास अंत हो चुका। ससुराल से स्निग्ध-पति-प्यार से सजी-सजाई आई। भक्ति ने रंग पकड़ा। रास-लीला की भावुकता जागी।

आज नारी की इज्जत लुटनेवाली है। मृदुला की दाहिनी-आँख फड़की। एकबार, फिर कई बार।

नारी की लाज लूट जाती है, तो क्या रह जाता है?

मांसल-शरीर, हड्डी, अंग, वासना, और नग्न-नग्न पतझड़ की उदासी रह जाती।

हड्डियों को कामुक-कुत्ते बार-बार काटना चाहते। अंग को बार-बार मसला जाता, वासना को आग लगती और नग्न-सौंदर्य कालांतर में घृणा का भाव जगा देता।

लाज की घटा फटते ही नारी नग्न हो जाती और समाज का साथ छूट जाता।

लाज लुटेगी नारी की—कहाँ ? मन्दिर में। परिणाम भयंकर होगा।

आंधी आने के पहले वातावरण शांत हो जाता है। दुर्घटना के पहले शंका होती है, और विपत्ति के पहले घबड़ाहट और गरीबी के पहले कड़ी भूख। सौंदर्य के पहले वासना और बाशना के पहले रूप।

माधवी देख रही थी, मृदुला की यकायक घबड़ाहट को और शांत-पयोद की उमड़-घुमड़ को।

हिरणी चौंकी थी, सशंक होकर। सहसा श्रीकृष्ण-मंदिर की झमकाती, झलझलाती, झलझल करती रौशनी बुझ गई, या बुझा दी गई। मृदुला और घनश्याम खोह के नीचे।

गर्त्त के नीचे की ओर सीढ़ियां लगी हुई थी। नीचे का धरातल पत्थरों से पीटा हुआ था। कोने में ढेर के ढेर फटे हुए कपड़े और टूटी-फूटी चूड़ियां इधर-उधर छितराई हुई थीं। कई सूखी हुई हड्डियां देख मृदुला घबड़ा गई। भीतर का अंतरलोक रौशनी से जगमगा रहा था। एक पलंग बिछा हुआ था।

मृदुला अभी भी नहीं समझ रही थी कि आखिर बात क्या है। नीचे कैसे ससर आई? भूखे शेर को देखकर शेरनी भी चकरा जाती है।

वासना की मदमाती घनश्याम की आंखें मृदुला के रूप-चांद को चूमने आतुर हो उठा था। ज्वार पर ज्वार। मृदुला की डोल गई पतवार।

"देखती क्या हो, चुपचाप पलंग पर लेट जाओ। भगवान भी इस खोह में तुम्हारी लाज बचाने नहीं आ सकता। बाहर तो झूठी रास-लीला हो रही थी। अंतर तो आदमी की रास-लीला होगी। घबड़ाओ नहीं, रूप को मेरे चुम्मन में सजा दो। जवानी को वासना—पाश में भटकने दो। कंचन-सी काया को पुरुष का स्पर्श चाहिए। डरती हो, खूब डरो। ताकि बेहोशी आ जाए। कपोलों को दांतों से काट लूँ। उरोजों को मसका दूं। फिर, यौन-यामिनी की कंटीली-उभार में मन का चंदा विहंस उठे। रूप थिरके, जवानी मचले और अंग की तड़प अंग समझे। मेरी भूख जाग रही है, रानी! अम्बर के पट खोल दो। कैसी विकसी हुई कुचें, कैसी लबलबाती हुई आंखों की मदिरा, कैसी रुपहरी छवि और तुम अकेली। मैं अकेला।" —घनश्याम ने तड़पकर कहा।

पुरुष की वासना विधवा के शृंगार से भी अधीर होती है। वासना का संयम विकट-मनोहर है। पुरुष की कामना में संयम नहीं होता, पशुता अधिक होती। अधीरता छटपटाहट में विकीर्ण होती।

छवि मुस्कुराई, तो पुरुष का भाग्य जागा। पर, घनश्याम की बातें सुन चिग्घाड़ उठी:—

पापी! मक्कार!! छलिया!!! "मुख में कीड़े नहीं पड़ते? बहन की चूड़ी फोड़ते समय लज्जा नहीं आती। हट जा, नहीं तो······"

"लज्जा? हीं-हीं। पुरुषों को नहीं होती। कैसी बहन? किसकी बहन? कौन। क्या? मैं कुछ नहीं जानता।" "मन्दिर में नारी की लाज तोड़ते समय, यह क्यों नहीं सोचते कि परिणाम बड़ा विषम होगा। नारी का अपमान समाज का अपमान है। मंदिर की दीवालें प्रतिध्वनित कर उठेगीं—पाप! भयंकर पाप!! मंदिरों को तोड़ दो। हिन्दू-धर्म की धज्जियां उड़ जायेंगी। हाय भग-वान! देख रहे हो न। यह नरपिशाच रास-लीला के बहाने मेरा सतीत्त्व मुझसे छीन रहा है! आज, मैंने समझा, नारी का सौंदर्य सृष्टि का विषम पाप है। पापी! मैं विवाहित हूँ। मेरी लाज न बिगाड़ो। मेरी कांति न छीनो! मैं पैरों पड़ती हूँ।"

इतना बोल सहमी हुई हिरणी भागे तो किधर, घनश्याम के पैरों की ओर झुकी।

लात मारते हुए घनश्याम बोल उठा:—

"प्यार देने में यह देरी कैसी! रूप-सुधा का पान करना पाप नहीं। मचलकर चलोगी, तो पुरुष से निकल भाग कब तक सकोगी। पुरुष बड़ा सिड़ी होता है। मैं अधीर हो उठा हूँ! महंथ जी आ जायेंगे, तो फिर मुझे मौका न मिलेगा। न तड़-पाओ! न सताओ!! जवानी रूकना नहीं जानती। लहरें

हिलोरें लेना जानती है। रूप संयम रखो तौभी पीछे मुरझा ही जाएगा। तो, रूप-संयम से लाभ? जबानी, सूरत, नज़ाकत मिली है, पलभर के लिए रूप मदिरा पिला दो। मस्त-जवानी झूम-झूम, त न न हो रही है, राग तो आलापने दो!"

इतना कहकर पलंग के नीचे से एक कटार निकाल घनश्याम ने अपने हाथ में ले ली। चमचमाती कटार और कंटिली मृदुला। एक पाशविक-शक्ति, तो दूसरी पराजय। एक भूख, तो दूसरी तड़प। एक नारी, तो दूसरी नग्न-घबड़ाई हुई मृदुला।

दर्दभरी कहानी और मृदुला की बरबादी। घनश्याम के हाथ उरोजों की ओर आगे बढ़े, बढ़ते चले और सहमी-मृदुला पीछे हटती चली।

भूखा-परुष डाका डालता है। सहमी नारी दयनीय-दशा को प्रत्यत्त देखती है।

घनश्याम के कठोर-हाथों से चोली फट गई, और धड़ाम से मृदुला गिर पड़ी।

अम्बर के पट खुले और निर्दय पुरुष अपनी काम-साधना में निर्मम एवं कठोर हो गया। रौशनी बुझा दी गई! स्फुट-सी चुंबन की ध्वनि छिटक उठी।

मृदुला लुट गई। वातावरण रो उठा! धर्म की दीवारें कांप उठीं, पर अफसोस, दानवीरों की निद्रा न टूटी!

कुम्हला गई मृदुला, जो कली अभी चटकना सीख रही थी! पायल के रूनझुन, पैरों की गजगति जो कामिनी की यौवन-

उछाल है; विषम-अपमान से रूद्ध हो गई। अपमान की ज्वाला जितनी धधकती है- जितनी शोले फैलती है, फण-काढ़े हुए सर्प का भी उतनी फुफकार ज्वलंत नहीं।

मृदुला की कांति में चिन्गारी सुलग रही थी। भर्राई हुई आंखें, पागल-बिथरे केश, सकुचाती हुई साड़ी, मरोड़ खाकर विकल-अव्यवस्थित अंग-अंग बता रहे थे कि कामुकता के शोले कितने प्रचंड और धधकन कितनी घृणात्मक है। समाज के सामने पापचार के दृष्टांत इतने जाज्वमान हैं, फिर भी निन्दा इतनी अधीर है, कि सोचने का समय नहीं मिलता।

रूप पर मचल कर कलियां तोड़ते समय तोड़नहार को कौन सा आनन्द आता है? नारी, रूप से बढ़कर शृंगार पर गर्व करती है, यह तो उसकी बड़ी भूल है। अंगराग, सुगन्धित-सुवास, महावर लगाकर पुरूष की वासना को छेड़ देने में कौन सा सुख गर्वीली नारि को मिलता है?

मृदुला को अपने शृंगार पर आक्रोश हो रहा था। साथ-साथ मन्दिरों में छुपे-छुपे पाप-घातों का इतिहास प्रत्यक्ष ज्ञात होता था।

रूप मुरझाता है, तो शृंगार फबता।

भगवान के नाम पर जितने भी पाप, अत्याचार, बलात्कार, मंदिरों में होते, कदाचित् वेश्या-मंडियों में भी उतना पाप घृणित नहीं झलकता।

पाप का दृष्टांत घृणा की भावना है। और, यह घृणा तब

होती है, जब प्रत्यक्ष-पाप को देखने की क्षमता होती। बिना अनुभव का पाप केवल कल्पना है। रूप का विनाश पाप के कारण होता है, नहीं तो, रूप में काया आदर्श हो जाय। आदर्श का मापदंड यूं तो न स्थापित किया जाता है, और न कभी संभव हो सकता। समय का अनुगामी आदर्श है। काल-विशेष में कोई सत्य आदर्श हो जाता है, किन्तु, समय के परिवर्त्तन के साथ-साथ आदर्श का स्वरूप बनता और बिगड़ता जाता।

निर्मल-रूप का आदर्श भक्ति है। सगुण है। मन की शांति नवीन-निर्मल विकार शून्य स्वरूपों में उपलब्ध हो सकती है! रूप जितना निर्मल झलकता है, प्रेम और भक्ति सत्वर दौड़ आती है।

मंदिर का आदर्श शांति-स्थापना है। निर्मल देवी-देवताओं के निर्मल-स्वरूपों के प्रति हमारी आस्था रहती है।

तो, मंदिर में यह कोलाहल क्यूं ? हलचल, भीड़भाड़, ठगई, पूजा-दक्षिणा के लम्बे-चौड़े व्यापार क्यों ?

मृदुला के रूप का, उसकी लज्जा का, शांति का विनाश क्यों हुआ ?

यह इसलिए कि पाप, पाप को छिपाना चाहता है। लज्जा प्रकाश से दूर भागती है। कामुक-कुत्तों की बन आई है। खदेड़ दो, तो उल्टे ही समाज थपेड़ों से स्वागत करता है। पुरानी लीक पर चलना बुरा नहीं, यदि समय की सारी परिस्थितियां लीक के अनुकूल हों।

चीख रही थी—मृदुला। तड़प रही थी नारी-सुलभ-लज्जा। रो रहे थे आंसू और आंसू।

व्यग्र-चिता-सी मृदुला की तड़प कौन समझ सकता था? सहृदय और भगवान।

सर्प की मणि जब लुट जाती है तो क्या होता है?

अंधकार। पछतावा। उदासी। घबड़ाहट। शंका। चित्त चंचल और बाद—मृत्यु।

घनश्याम की उदासी में घबड़ाहट छिपी थी। उदासी में घबड़ा-हट कामुक-कुत्तों को ही अधिक होती है। पैर थर्थरा रहे थे। दिल मृत्यु-घड़ी के कुछ क्षण पहले-सा घबड़ा रहा था। अधर सूख चला था। पतझड़ की आंधी के पश्चात् जिस तरह वातावरण उदास हो जाता है, ठीक उसी तरह की उदासी, चिंताशील-खिन्नता व्याप्त थी—कहाँ। जिसे मन्दिर का अन्तराल-पाप-कक्ष कहते।

कटार फिर ज्यों की त्यों पलंग के नीचे रख दी गई। चोर की-सी घबड़ाहट में घनश्याम बोल उठा:—थर्थरा क्या रही हो। देखो, अभी की बात महंथ जी को मालूम न हो। नहीं तो, देख लो—यह कटार, पलंग के अन्दर छिपी है। मृदुला के जी में आया कि कह दूं, अनंग के वश में अधीर होकर नारी की पत और सतीत्व लूटते समय बुद्धि क्या घास काटने गई थी, जो अब पाप को छिपाना चाहते हो।

खोह की बनी सीढ़ियों पर किसी के आगमन की आहट, घनश्याम को आ रही थी। विस्मय में, चित्त की कलुष-पूर्ण-धड़कन में, घनश्याम को काटो तो खून नहीं।

जाल में फंसी हुई पंछी की दयनीय-दशा का मनोविज्ञान कितना करुण, फिर भी असहाय-अवस्था में मन:स्थिति व्यवस्थित नहीं रह सकती।

बायें हाथ पर माथा टेक घनश्याम पलंग पर धड़ाम से बैठ गया। चोट खाई हुई सर्पिणी-सी मृदुला पलंग की दाहिनी ओर चित्रवत् खड़ी रही। आँखें निश्छल प्रतीत होती थी। पथराई हुई आंखों की पुतलियां न तो हिल रही थीं और न डोल रही थीं।

क्या देख रही थी ?

अपनी अस्त-व्यस्त-अवस्था को। लूटी हुई अंगों की कचोट को। पलंग की रेशमी-चादर में पड़ी हुई टेढ़ी-मेढ़ी छितराई हुई धारा-सी, एक, फिर दो, और अनेक शिकनें।

ओह, विषम-वासना ! निर्दय-पुरुष !

आहट बढ़ती-बढ़ती व्यक्त हो गई। श्रीरामदास रसिए-रुप में पहुँच गए।

और उसकी आंखें ?

लबलबा रही थी वासना की प्याली में। मदिरा झलक रही थी साकी की नीमरजा अदाओं में। मृदुला के समक्ष फिर एक आफत आई थी। खोल दे पट, री अलकपरी। नहीं, वासना के व्यापार में सौंदर्य भी कभी खिला है, प्यास कभी बुझी है।

मृदुला के रुप की ओर श्रीरामदास की कामरक्तिम-आंखें पड़ रही थीं। मृदुला का रूप अमावस-सा उदास क्यों है ? क्या घनश्याम ने खिली-कली पहले ही तोड़ दी ? रामदास का क्रोध उभड़ पड़ा।

क्यूँ, खड़ा-खड़ा ताक रहा है ? चेहरा फकफक कर रहा है। घनश्याम मौन क्यों है ? बोलने की शक्ति क्यों छिन गई ?

बात समझ में आई, और रामदास बोल उठा:— "क्यों रे, क्या जूठे किए फल को खाने के लिए, यह गुप्त-स्थान मैंने बना रखे हैं ? बोलता क्यों नहीं ? हट जा यहाँ से। नमकहराम, मक्कार ! धूर्त ! चांडाल !"

इतना कहकर रामदास मृदुला की ओर बढ़ा, हाथ बढ़ चले उरोजों को छूने को। इन्द्रियां मचल उठीं—धूम मचाने को।

निर्लज्ज-पुरूष ? घनश्याम तू खड़ा-खड़ा क्या नारी की लज्जा का घृणित-अंत देखना चाहता है ?

पलंग के नीचे घनश्याम छिप गया। दूसरी कोई जगह न थी।

मृदुला चीख उठी। कौन सुनता ? लपककर मृदुला को बरजोरी पलंग पर लिटा दिया गया। यह दूसरा मौका था। धर्म के स्थान में यह सुनहला मौका बार-बार नहीं आता। छीन-झपट मची। रामदास के सिर विजय का सेहरा बंधा। पिपासा तनिक शांत हुई।

मृदुला को अचेत छोड़ गुप्त-राह से रामदास निकल भागा।

बाहर—

जनता रौशनी, रौशनी चिल्ला रही थी। रौशनी कैसे बुझी ? यकायक क्या हो गया ? राधा किधर गई ? श्रीकृष्ण किधर भागे। मृदुला दिखाई नहीं पड़ती ? घनश्याम कहाँ छिप गया ? श्रीरामदास जी कोठे पर तो नहीं चले गए ?

कोठे की रौशनी जल रही थी। राज ऊपर चढ़ गया। साथ-साथ भीड़ चली। देखा तो, श्रीरामदास सीढ़ी से उतरे चले आ रहे थे।

देखते ही ताड़ गये। झपट गए, और बोले:—

"रौशनी कैसे बुझ गई। इसमें तो बड़ी चालाकी मालूम पड़ती है। चौबे और पांडे अभी तक क्या कर रहे हैं? मैं तो अपनी पूजा में लीन था। यकायक हल्ला सुन इधर ही तो लपका आ रहा हूँ।"

जनता और राज के सामने श्रीरामदास की सफाई काम कर गई। लोगों ने श्रीरामदास की बातों पर विश्वास इसीलिए कर लिए कि महंथ जी भी भला ऐसे नीच-कार्य में सहयोग दे सकते?

यकायक रौशनी झलमला उठी।

"बड़ी विचित्र-जादू है।"—राज ने कहा।

लोग हैरान थे कि पलभर में क्या-क्या कैसे हो गया?

नीचे आकर लोगों ने छानबीन शुरु की। ताज्जुब, न तो मृदुला और न घनश्याम। आखिर ये लोग कहाँ चले गए? प्रश्न पर प्रश्न, पर, कोई न समाधान।

अचानक राज ने तख्ता कालीन से हटा हुआ, देखा। शंका जागी। कुछ लोग भी तख्ते की ओर देखने लगे।

तख्ता हटाया गया, तो कुछ दूर पर नीचे की ओर बनी हुई सीढ़ियां मालूम पड़ी।

राज आगे चला, और दो लोग पीछे-पीछे सीढ़ियों से उतरने लगे।

राज को आश्चर्य हुआ कि ये सीढियां नीचे की ओर क्यों बनाई गई हैं।

नीचे उतरा तो, देखा मृदुला अचेत हो पलंग पर पड़ी थी। अस्तव्यस्त केश, सिमटे हुए कपड़े और गाल पर पड़ी हुई चुम्बन के दाग देख राज का क्रोध उबल पड़ा। दो सज्जन ठक से रह गए।

यह है—मन्दिर। रास-लीला का नारी-आखेट। विकार-जन्य-वासना-प्रतीक। कौन आत्मा और कौन परमहंस ?

घनश्याम की अपनी मुसीबत थी। गुप्त-द्वार तो महंथ को छोड़ किसी को मालूम नहीं। यूं तो पाप के बाद ग्लानि तत्क्षण नहीं होती। यदि, उत्कट-ग्लानि पूर्व-संस्कार के कारण हुई, तो पापी का मन व्यक्तिगत-पाप को भावुकता में कसकर नग्न-रूप में देखना चाहता है। पाप का अनुभव करते ही मन स्वच्छंद-पंछी सी उड़ान में निर्विकल्प, निर्विकार हो मनोमालिन्य के साथ-साथ पाप को प्रत्यक्ष करने में भी नहीं चूकता।

घनश्याम का चोर पकड़ा गया। छिपाव की भावना अटपट होगी। अनावश्यक-प्रयत्न से पाप बढ़ता ही जायेगा और शांति, जो जीवन की सबसे बड़ी चीज है, कदापि हस्तामलक न हो सकेगी।

यही सोच, घनश्याम धीर-सा पलंग के नीचे से निकल आया।

पाप के बाद चेतनाएं मूक हो जाती हैं, और वह व्यक्तित्व

की भावना खो बैठता है, चारों ओर भयंकर-परिणाम की ओर चौकन्ना रहते-रहते मानसिक-वेदना की नेशे-गम अवस्था में न दिन चैन पाता है और न रात। उच्चकों की-सी अशांत-प्रकृति की ओर प्रवृत्ति का विशेष आग्रह होता है।

मन की अशांति सबसे बड़ा पाप है। हर भावना में खटका, और हर खटका में बिच्छू-डंक-सी पीड़ा।

मन को चोट लगे, तो पापी क्या करे ?

'समर्पण'

पीड़ा की श्रेयस्कर-दवा समर्पण है, याद रहे समर्पण निर्विकल्प रहे। नहीं तो, ढ़ोंग ही ढोंग है। पाप की मोहनी माया है। पेड़ से पत्ते गिरते हैं, तो मन की ग्लानि भी खुलते समय निष्प्रभ मालूम होती। मन के गिरने की गति साधारण है।

घनश्याम ने आत्म-समर्पण कर दिया। मृदुला की बेहोशी राज के जल के छींटों से भाग गई। तपक-तड़क कर शेरनी उठी। राज को अचानक देखती हुई, वह बोल उठी:—

"तुम कौन हो ? क्या तुम भी मेरी बरबादी के उम्मीदवार हो ? देखते क्या हो, जवानी लूट लो। यह, अब रह कर भी क्या करेगी ? निगोड़ी रही कि न रही। ओह, तुम्हारा—मंदिर इतना स्वच्छ और सुन्दर है ? मेरे कपड़ों की शिकनों से भी अधिक ?"

मृदुला बड़बड़ा गई। पर, राज चुप रहा। मैं वह नहीं; जो तुम समझती हो। निद्रा का त्याग करो। पंछी के जागरण का

नया-संदेशा, समझ उठो। पापी तुम्हारे सामने ही खड़ा है। जरा, देखो तो सही। मेरे साथ समाज के दो दर्शक भी हैं।

मृदुला पलंग पर उठ बैठी। नारी का रौद्र-रूप काली-काली बौर-नियों के बीच श्मशान सा- भयंकर, अमावस से अधिक एकरस होता।

रूप ग्लानि से व्यग्र हो उठा था। कपोलों पर अशांति टुकुर-टुकुर ताक रही थी। पुरुष-थपेड़ों से कांति डूबते-चांद की तरह मलिन, क्लांत और मटमैली प्रतीत हो रही।

कांति शबनम-सी लुढ़क उठी थी। आकृति की सजीवता, देवी-प्रतिमा-सी स्वच्छंद छवि कातर हो रो पड़ी थी, पंखुड़ियों के दल टूट पड़े थे।

मृदुला ने पलंग की बाईं-ओर घनश्याम को चित्रवत्-निश्छल खड़ा देखा तो आश्चर्य हुआ, घनश्याम क्या वही कठोर घन-श्याम है ?

लेकिन अपमान सोच वह कड़ककर बोली:—पापी ! दुष्ट !! पाप करने के पहले यदि निश्छल रहता, तो आज ग्लानि के बोझ से न दबना पड़ता !

घनश्याम, तुम्हारा नाम कितना अपवित्र और घिनौना हो रहा है। वासना के नाम की महिमा को इतना बिगाड़ दिया है कि मन्दिर बनाने वालों का गला घोंट दूं। परवाने की बरबादी शमा देख सकती है, पर, पापाचार की संवेदना भारत का मंदिर नहीं कर सकता। मन्दिर मन्दिर है, और प्रेम—'अखंड और

निर्मल', दूसरी बात है। बिकारों से दूर भागने के लिए लोग वड़ी भक्ति-भावना से आते। पर, मुझे क्या मिला? ठोकर। अशांति। घृणित-जीवन। समाज मेरी तबाही पर शोक तो प्रगट करेगा पर, न तो; पतिदेव साथ देंगे और न समाज। तकदीर की चोट खाकर नैया किस भंवर में पड़ जाती है। पता भी है—घनश्याम? बड़े आदमी मन्दिरों में ही अपनी दान-वीरता दिखाते?

हाँ, भानुमति, आखिर बेश्या ही ठहरी। पाप शांति-अव-गुंठन में न झलक सका। आत्मा क्रांत हो, आज भी उसकी कराहती हुई बोल रही है। पाप का अंजाम घृणा ही होता। खड़े- खड़े क्या देखते हो, मुझ पर थूको! मन्दिर को बनाने-वाली भानुमति को दाद दो। चुप क्यों हो?

चुप रहो, मृदुला! भानुमति के मंदिर को क्यों कोसती हो। परिस्थितियों को कोसो। पापियों को सजा दो। भानुमति ने मंदिर के भविष्य को तो न सोचा होगा। पाप किसी भी दशा में गुप्त नहीं रह सकता। दीवारें भी बोलती हैं। खंडहरों की आवाज पागल ही सुन सकता है। भविष्य जितना देखने में सुन्दर होता, उतना सकल-सुन्दर नहीं। भविष्य तो, वास्तव में मृगतृष्णा की दौड़ है।

सुनो, "अंधेरी काली-काली रात थी। एक रस अन्धकार। न हाथ सूझे और न बाट। मैं एकान्त-पथ पर बढ़ता जा रहा था। दूर से रौशनी की झलक देखी और मैं उस ओर बढ़ा,

बढ़ता चला, पैरों की गति बढ़ी। चलता नहीं, दौड़ता, मैं रौशनी की खोज में इधर ही बढ़ा, जिधर से झलक आ रही थी। पैर थके, पसीने छूटे, पर..." "मैं कथा नहीं सुनना चाहती। ढोंग का नाम पापाचार है। भावुकता से मेरा समाज तो कल्याण न कर देगा। चुप रहिए, साधुओं को बकने की बीमारी न जानें, कहां से आ गई। भानुमति वेश्या थी और उसकी काली-करतूतों की छाया आज भी इस-मंदिर में वर्त्तमान है।"

ऊफान उठती है, तो धमक कर, मौजें लेती हैं, तो बुदबुलों को तोड़ कर। क्रोध उठता है, तो भाव खोकर, भावना जकड़ कर।

राज का भीषण क्रोध ज्वालामुखी की धधक में लहक उठा। चिनगारी सुलग रही। नारी न होती, तो, छोड़ने में भी राज बाज न आता।

क्रोध की शांति भावुकता में ही होती है। यह अखंड-सत्य है। दुनियां में भावुकता उठ जाए तो गरीबी के आलम में जीना भी दूभर हो जाये। आपदाओं, व्यथाओं, चिन्ताओं की भट्टी में आदमी जलता ही रहे। जिन्दगी की रवानी भावुकता है। कार्य-पक्ष तो स्वयंसिद्ध नहीं। कार्य के बाद क्लांति का भार भावुकता न सहे, तो आदमी की आयु घटते-घटते दो दिनों की हो जायेगी। राज की भावुकता जागी।

वह बोल उठा:—अरमान क्या जाने बेवसी? मन्दिर की आत्मा में पाप छिपा रहता, यह तो कोई नई बात नहीं। तड़पता

जानता है कि रोने का मजे क्या है। ताने कसने में तो संतोष मिलता है, पर बेदर्द इतना क्यों नहीं सुनता कि दर्द के तराने क्या हैं। आप ठीक कहती हैं।

भानुमति वेश्या थी। हाँ, वेश्या रही होगी। पर, मन्दिर की स्थापना में, याद रहे, अस्मत का खून, आज भी लहरें मार रहा है। पवित्र-संदेश भ्रांति बने, तो संत क्या करे। अपनी शराफत में किसी का घर लुटे, तो बेहया क्या करे।

कठोर जर्जर समाज अपनी बेहया आंखों से अस्मत का सौदा पैसों के दामन से कर रहा है, फिर भी दानवीरों की निद्रा नहीं टूटती। मृदुला, तुम्हें लूटनेवाला घनश्याम है। घनश्याम आदमी है और आदमी का भरोसा पशु भी नहीं करते भगवान की तो बात छोड़ो। इसे ही मार डालो। तुम भी मर जाओ। तो, ऊंघता समाज एक न एक दिन अवश्य जाग उठेगा। बाहर चलो! मैं घनश्याम को घसीटते ले जाता हूँ।" मृदुला के समक्ष राज देव-सा प्रतीत हो रहा था। दुनियां में भलों की मौत है और बटमारों की बन आई है।

कौन सी चिनगारी इस योगी की ज्वाला में उद्भासित् हो रही है?

मृदुला न समझ सकी। हाँ, इतना तो प्रभाव पड़ा कि सज्जन है। भला है। सुन्दर है। व्यथित है।

पर, राज शमा के बुझने के पहले परवाना बिछुड़ चुका है। शमा की पवित्र-याद में परवाना भटके न तो क्या करे।

समाज की ठोकरें खाकर अनुभवी बनना आसान हो जाता है। स्नेह से हृदय थिरक उठता है। पाप की छाया जिसे थी, उससे तो मेरा स्नेह अटूट था। गरीब केलिए भगवान दयालु है, तो धनी के लिए लक्ष्मी का नाम तो उसी का संस्करण है। नाम और रूप में भेद होता है। नाम एक है, तो काया अनेक, और रूप-भिन्न-अभिन्न।

भानुमति को आदर-दृष्टि से राज देख रहा था। क्योंकि मंदिर की पुनीत-भावना तो अमर रहेगी। मृदुला चुप रही। अपलक राज को निहारती रही।

और आप का नाम?

"कुछ नहीं।"

"कुछ तो होगा ही?"

"हाँ, आपका प्रयोजन?"

"भक्ति। रूप-उपासना।"

"आप इतने व्यथित क्यों हैं?"

"क्योंकि, व्यथा मेरी अपनी है। कोई जाने तो सही, न जाने तो सही। जीवन का नाम असंतोष है। असंतोषी का नामकरण तो कभी नहीं हुआ।"

"योगी का चोला तो बड़ा सुन्दर है?" चोला तो सुन्दर होता ही है। आंख-आंख का अन्तर है। किसे अवकाश कि चोला पहचाने।"

"आपने मेरा लज्जा-आवरण खुला देखा है?"

"क्योंकि, बेहोशी थी।"

"नारी के शृंगार और लज्जा-आवरण को देखने से लाभ?"

"क्योंकि, आवश्यकता थी। आप अचेत थीं।"

दो सज्जन को आश्चर्य हो रहा था कि ये लोग पागल तो नहीं?

"मेरा नाम राजराघव है। योगी हूँ। इतना ही मैं जानता हूँ।"

"जी।"

मृदुला जब बाहर आई, तो कान-कान सभी लोगों को पाप की बातें मालूम हो गईं। दुर-छी, दुत्कार, फटकार, गाली-गलौज, चपत, घूसे, सभी बेइज्जती घनश्याम की की गई। पर, श्रीरामदास पर किसी ने ताने न कसे। क्योंकि सफेदफोशी से लोग भय खा गए। भीड़ को हटाते हुए चुपके-से घनश्याम किधर ओझल हो गया, पता नहीं चला। काफी-लम्बी-खोज हुई। इक्कीस देव-मन्दिरों में लोगों ने ढूंढ़ा, पर, घनश्याम का पता न चला। लोग दिल-मसोस कर रह गए।

श्रीरामदास गुस्से से लालपीले हो रहे थे। गिरगीट की तरह रंग बदलना तो कामुक-कुत्ते खूब जानते।

बोल रहे थे:—नमकहराम! मन्दिर की लुटिया डूबो दी। लोग तो यही समझेंगे कि महंथ भी इस षड़्यन्त में सम्पर्क रखता था। नहीं तो, ये सीढ़ियां, खोह कैसे बनीं?

सच कहता हूँ, यदि आपलोगों को विश्वास न हो तो मैं गद्दी छोड़े जाता हूं। आप सभी जनता संभालिये। दानवीरों

की जायदादों का सदुपयोग तो मंदिर में होता है। यूं, तो मंदिर को तोड़ डालने में भी अब हिन्दू-नाम के लोग नहीं चूकेंगे। जमाना लद चुका है। मेरा क्या, जिस ठौर जाऊँगा, भगवान-भजन के सिवाय मेरा कोई धंधा नही रहेगा !"

श्रीरामदास इतना कहकर बच्चों की भांति रो पड़े। जनता सहम गई। परदुःख-कातरता का शिष्टाचार जनता नहीं छोड़ना चाहती।

इतनी बड़ी सफेदपोशी में सफाई की बू नहीं थी, फिर भी, जनता चुप रही। घनश्याम को मनमानी गालियां देते रहे। रास-लीला उस दिन से टूट गई। हवा जोरों की रही।

मृदुला की अस्तव्यस्त छवि को माधवी देख रही थी। राज कितना साहसी है। विपत्तियों में कूद पड़ता है। राज माधवी की दाहिनी ओर खड़ा था। मृदुला एकटक राज को मदभरी दृष्टि से देख रही थी। जब कबूतरी की आंखें अंखिया मारती है, तो पंख फैला कर नाच उठती है। छवि में रूप झुलता है, और रूपमें जवानी मचलती है। यह अनुभूति स्वानतःसुखाय है। स्वाभाविक और प्राकृतिक है। प्यार के नैन क्या जानें, धोखे की परिभाषा। लहर क्या जाने, उमंगों की उछाल।

मृदुला की रसीली-आखों में राज की छवि झूली। गद्-गद् हृदय हुआ। मस्त हुई कामनाएं। अंग-अंग चांदनी-सा खिल उठा। वसंत को पतझड़ नहीं रोक सकता। उभारों को अंग कभी समझ सका है कि किस तिथि में उभारों की मौजें आई थीं।

दुःख भूल गई, कसक की। याद रही राज की भोली चितवन। राज का हरित-ब्रह्मचर्य।

माधवी को शंका जागी। मृदुला की माया तो राज पर न चल गई?

नारी प्रेम के दृष्टिकोण से बड़ी ईर्ष्यालु होती। यह नियम स्वाभाविक है। कोई किसी का प्यार छीन ले और टीस वह न उठे। मस्ती छीन ले तो साकी की अदा क्या करे?

"आप कहाँ रहते? मृदुला ने राज से पूछा। "विलास-गृह में। और, कुछ पूछना चाहती हैं?"

"जी नहीं।"

"रूप के कोयले लुट जायेंगे, तो क्या होगा?"

"छाप लगी रहेगी।"

"कोई किसी के प्यार को छीन ले तो?"

"सत्याग्रह।"

मृदुला की नजर बार-बार नुक छिपकर माधवी की ओर पड़ रही थी। माधवी राज को देखने में तल्लीन थी। विचित्र-रहस्य। लेखक विकल। याद की रामकहानी।

भीड़ हटती गई, हटती-हटती, केवल तीन जनों को छोड़कर सभी घटना को दुहराते चले गए। कहाँ? समाज में मृदुला की बेइज्जती का आख्यान कहने। जिन लोगों ने सुना, तिलमिला कर रह गए। पर, रूढ़ि उनके साथ लगी थी। सेठजी को मालूम हुआ तो उनके कान खड़े हो गए। पुत्री का यह भीषण

अपमान। मन्दिर में। जहाँ धन जमा-जमा कर धनी मन्दिरों की दीवाल खड़ी करते। धन शोषण के द्वारा संचय कर मन्दिरों की स्थापना क्यों की जाती है? क्या बहु-बेटियों को लुटाने के लिए?

सेठजी यह सोच तत्क्षण मृदुला को देखने चल पड़े। आफत, जिस पर आती है, वही जानता है, बाकी सभी समवेदना ही प्रगट कर रह जाते। समवेदना को लोगों ने इतनी चलती और बाजारू बना दिया है, कि मनुष्य को मनुष्य का विश्वास उठा जा रहा है। खेद है, परिस्थितियों के चक्कर में हम सभी हैं।

मृदुला के ससुर ने जब खबरें सुनी, तो सन्न रह गए।

उन्हों ने एक पत्र लिखा:—

"श्यामनगर"

सेठजी,

जयराम!

पतोहू के लाज की चर्चा शहर में चल रही है। घनश्याम को पकड़ने की कोशिश भरपूर हो रही है।

पर, मेरा बेटा दूसरी शादी करना चाहता है। बातचीत ठीक हो गई है। आपको निमंत्रण भेज दिया जायेगा। क्या करें, वक्त का तकाजा है। समाज की चदरिया पूरी ही ओढ़ी जाती है।

आपका

सेठ भटनागर।

भटनागर-जी भट्ट से रह गए। मृदुला का जीवन दुःखद हो गया।

मृदुला का यह स्वप्न समाज का जागरण हुआ।

अभी तो मृदुला प्रथम-बार प्रेम का अनुभव कर रही थी। क्यों न करे, छबीला था राज—जटाएं थीं ? तो, क्या हुआ।

प्रेम को लोग दुषित कह लें। पर, प्रेम की अनुभूति जीवन में एक बार सभी को होती है। प्रेम सफलता नहीं पाता। क्योंकि घरेलू झंझटों और समाज के गट्ठरों को आदमी सहज नहीं ढो सकता।

बोझ भारी और गधा अकेला। पत्नी पाकर लोग संयम सीख लेता है, पर, प्रेम पाकर ठोकरें की किस्मती होती है। प्रेम का अन्त विनाश में होता है, पर, उस मरघट की धूलि बराबर आबाद रहती है।

"देखा है आपने मज़ार ?" समाज ने कहा।

"गधे-बेवकूफ मज़ार देखा करते। हम तो दुनियां देखते हैं। व्यापार देखते हैं। सबसे अधिक पैसा देखते हैं।"

पर, शमा ने कभी सोचा है, कि कितने परवाने रोज जला करते हैं।

परवाना और शमा दोनों अमर हैं—आदमी की हृदयतंत्री में। मृदुला राज को क्या समझे शमा या परवाना। शमा किससे कहे कि जलना मना है। परवाना क्यों कहे, कि शमा का खटका है।

मृदुला ने अलकों में मलयज बंद किए पूछा:—"क्या मैं विलास-गृह में आपसे मिल सकती हूं।"

राज ने माधवी की ओर देखा और कह उठा:—"आशा ही प्रगति है। जीवन इतना सुहाना नहीं। आप, इनसे पूछ मुझसे मिल सकती हैं।"

मृदुला ने माधवी को देखा। राज की नजरें माधवी पर पड़ी और मृदुला की नजरें फिर दौड़ती हुई राज पर आ अटक गई।

मृदुला घर आई। घर में बूढ़ी दादी के सिवाय, कोई नहीं था। सेठजी भी भानुमति-मंदिर की ओर जा चुके थे।

सेठजी और बूढ़ी दादी—ये ही दो सहारे मृदुला के अब तो थे।

बूढ़ी दादी पलंग पर बैठी थी। मृदुला पलंग के समीप ही आईने के पास आकर खड़ी हो गई। मृदुला मस्ती में झूम-झूम रही थी। उरोजों में स्पन्दन-भाव जाग उठे थे। कामनाएं चितेरे की खोज में थी।

ऐं, बेटी गाल पर ये दाग कैसे हैं?" बूढ़ी-दादी ने आईने की झलक देख पूछा।

'दाग, कि दागेजिगर' पर, मृदुला चुप रही।

"बोलती क्यों नहीं?"

"क्या बोलू?"

"जो पूछ रही हूँ?"

"पूछने के पहले सोच लेना चाहिए।"

"चार दिन की दूधमुंही, मुझे चराने आई है ?"

"जमाना पल्टा खाता है।"

"जमाना और जमाना। घर की लाज कैसे बचेगी ?"

"जबतक पैसेवालों की दुनियां, सफेदफोशी और मन्दिरों की तवाही न होगी।"

बूढ़ी-दादी ताड़ गई कि किसी कुत्ते ने काटी है। कौन घन-श्याम ? कौन श्रीरामदास, महंथ ?

इतने में सेठ जी पहुँच गए। मृदुला को काटो तो खून नहीं, धड़कन छूओ, तो आवाज़ नहीं। पिता के पैरों पर गिर पड़ी। चोट खाई शेरनी ममता में डूबी थी।

"बेटी ! दुनियां बड़ी दुरंगी है। सब्र से काम लो। भाग्य का लिखा मिट सकता है। अफवाह और बेइज्जती रूके न रूकती। इन मन्दिर के भेड़ियों को समझ ले। मुझे तो इस काम में श्रीरामदास का हाथ मालूम पड़ता है।"

"हूँ"

इतना कह मृदुला अपने कमरे में आई। सुहाग की बिन्दियों को एकबार जीभर कर देख लिया। चन्द्र-टीका, सिन्दूर की डिबिया भी सजकर एक बक्स में रख दी गई। साड़ी बदली। उजली-साड़ी पहनी। अपमानित-यौवन खिसक चला। समय के चक्र में घटनाएं छिप गईं। पर अपमान के शोले दहकते रहे।

गोविन्द और निर्मल का मन विलास-गृह में खूब लगा। एक महीने फाग-से गुज़र गए।

संध्या का समय और अपने-अपने भविष्य की चिंता में गोविन्द और निर्मल डूबते रहे। घर का क्या हाल होगा? गौरी बहन और तारा क्या करती होगी?

जमींदारी तो नहीं, जो रईसी कटे। घर की चिंता से गोविन्द घबड़ा रहा था।

"कहो, निर्मल, रईसी की जिन्दगी कबतक कटेगी? घर की चिंता भी कुछ है या प्रियवासकी की भतफेरी में पड़ गए हो!

"जिन्दगी, तो वास्तव, रईसी की होती है।"

"लेकिन कितने दिन कटती है?"

"जबतक परिस्थिति साथ देती है।"

"बातों से काम नहीं चलेगा?"

"तो, क्या चिल्लाने से नौकरी मिलती है?"

"तो बैठे बैठे मक्खियां मारो?"

"बेकार मक्खियां न मारें, तो क्या करें?"

"बेकारी अच्छी नहीं लगती।"

"तो किससे रगड़ा करूँ?"

"तदबीर से, हौंसला से।"

"चलो, जीवनधनजी के पास। शायद नौकरियां दे दें। बोले तो थे। बड़े लोग कभी-कभी बड़े दयालु होते हैं—निर्मल।"

"झूठ! प्रपंच! काम निकालने के समय दयालु नहीं होंगे, तो उल्लू कैसे बनाएंगे।"

"घर को भी संभालना है ?"

"संभलते-संभलते संभल जायेगा। आप चिंता क्यों करते ? धीरज सबसे बड़ी चीज़ है।"

"एक महीने से ऊपर हो रहा है। किस गन्ने में हो ?"

"लाचारी की फांसी में। मैं नौकरी नहीं करना चाहता। आप की बात, आप जानें।"

"क्या कहा, फिर से बोलो तो ?"

"कुछ नहीं, सब नहीं।"

क्या पागल हो गए हो ?"

"बेकारी पागलपन है।"

"इसीलिए, तो दिन-रात इधर-उधर घूमते रहते। उचक्कों की संगत कर ली है। शराब तक पीते हो। कविताएं रचने से क्या होगा। जानते हो, पैसे का मूल्य बड़ा होता। कला पैसों पर बिकती है।"

"चुप रहिए। कला का अपमान मेरा अपमान है ! संबंध दूसरी चीज है, और इज्ज़त पर हमला करने का अधिकार न तो छोटे को है और न बड़े को। भैया, इन बातों से मुझे बड़ा दुख होता है। और, कुछ दूसरी बात छेड़िए, तो सही।"

"वहाँ बहनें विवाह के योग्य हो रही हैं और यहाँ बबू को इश्क सूझ रहा है ?"

"चुप भी रहिए। देखिए प्रियवासकी जलपान लिए आ रही है। और पीछे-पीछे सुलेखा भी। अब तो जरा हंसिए।"

सचमुच सुलेखा के आते ही गोविन्द मन ही मन खिल उठा। कली आई, तो भौंरा न मुस्काएं।

"आपलोग तो बड़ी देर से बातचीत कर रहे थे। क्या भानुमति-मन्दिर की घटना चल रही थी ?"

नहीं तो, बात तो पुराना पड़ गई। सुना है, मृदुला के पति ने दूसरी शादी कर ली है। बिचारी का क्या होगा ? प्रिय-वासकी, मैं कहता था न कि मन्दिरों में बड़े-बड़े घिनौने पाप होवे हैं। भइया को विश्वास नहीं होता था। दिखला दिया, तो भी मन्दिर रोज़-रोज़ जाते हैं।

राज स्नान कर लौटा। संध्या के समय स्नान, योगी के लिए विशेष कष्ट की बात न थी। दोनों भाइयों का जलपान समाप्त हुआ।

प्रियवासकी रसीली-आंखों से देखती हुई चली गई। निर्मल भी देख-देख देखता रह गया। नैन और नैन। आसक्ति या प्रेम !

राज अपनी ध्यान-समाधि में बैठना चाह रहा था। इतने में सोलहवीं-समा-सी माधवी आ पहुँची। माधवी का साध्य-शृंगार बड़ा ही चित्ताकर्षक था। शृंगार में रूप भावना मचल रही थी। मस्ती का संदेश केश की काली-घटाओं के बीच अंग-अंग थिरक-थिरक दे रहा था। भृकुटि के तीर-संधान अब छूटने को ही आतुर थे। कब इशारा और कब छूटे ?

माधवी के जीवन में जो उथल-पुथल मच रही थी, कारण,

योगी का प्रवेश था। निशाती-झरने के पास ही आकर्षण का सूत्र बंधने को आतुर हुआ था।

राज को माधवी अपने नैनों की छवि समझ बैठी थी। योगी की मीठी-झिड़कियां सहकर भी वह तनी रही, उस धारा की तरह जो चट्टानों से रगड़ खाकर भी अवाध-गति से निरंतर बढ़ती ही रहती है। माधवी की कसक, पीड़ा की कचट में यौवन की उत्ते-जना को और भी बढ़ा रही थी।

लज्जा जवानी को रोकती थी। उभार दिन-दिन उत्तरोत्तर बढ़ती जा रही थी। उरोजों की झलकभरी-छलक-भरी मदिरा चोली के शीशे में छनकर उतरी थी। व्यर्थ-भावना। राज माधवी की ओर झुका, कि न झुका, फिर भी माधवी आशा में दिन-दिन अंगूरी-सी मदहोश होती जा रही थी।

रूप लिप्सा नहीं, अहंकार का स्वरूप अवश्य है। एक महिने से नए-नए शृंगार में लोच को लज्जा-दामन में संभाल, माधवी अधीर होती जा रही थी। कब मिलन-यामिनी का सौभाग्य-प्राप्त होगा? रात के एकांत प्रहर में जब कसकसी का अनुभव होता, तो माधवी चपेट खाकर निद्रा को बरबस खींच लाती। तारे टिमटिमाते तो खिड़की खोल उधर ही नजर फेंकती रह जाती। बड़ी दिलकश जवानी रुके क्या रुकती है? मन:संयम सबसे बड़ी दवा है, जिसे राज साधना के बल पर मन की चांचल्य को रोके बैठा था।

राज आदमी है। आदमी कभी भी विकारशून्य हर क्षणों में नहीं रहता।

मन के विकार प्रत्येक क्षण भावनाओं को आक्रांत कर देते। चिंता की मनःदशाएं दयनीय-भावना सी हमें पल-पल घेरे रहतीं। योग जिन विकारों को हटाना चाहता है—उनमें एक है रूपासक्ति। रूप आसक्ति लाता है। रूप से वासना खिलकर इन्द्रियों का आखेट हो जाती है। इन्द्रियों का मचलना, आक्रोश करना; ये स्वाभाविक लक्षण हैं, जिसे जवानी का प्रथम-अनुभव अक्लांत-भाव से समझ सकता है।

फूल का खिलना साधारण है, पर मदमाता-यौवन एक इन्द्रिय-अनुभव है, जो खिलकर मुस्काता है, और मुस्का कर क्षीण और पीत हो जाता।

माधवी ने यौवन को एक आक्रोश समझ लिया था, क्योंकि इन दिनों राज का स्वभाव उज्जड़, अव्यवस्थित और उच्छृंखल प्रतीत हो रहा था।

जीवन में किसी को अपना बनाना था, किंतु, माधवी को अत्यन्त क्लांति होती, जब राज उससे भगा-भगा ही रहता था। माधवी सुन्दरी है। यौवन है। प्रथम-प्यार की-सी अनुभूति है, फिर भी राज नहीं पसीजता। बड़ा पत्थर-हृदय है। नारी आवेदन को आए और पुरुष फटकार दे।

नारी को फटकार कर पुरुष अशांत ही रहता। पति-रूप में राज को समझना भूल नहीं तो फिर क्या है? माधवी सोचती रहती।

अभी जिस छवि में अपने को भूल बैठी थी, राज तो साधना

में लीन था। राज का सौम्य-प्रतिभ-संस्कार भाल की कांति में दमक रहा था। राज की यह साधना माधवी को एक एकांत-खंडहर-सी लगी, जिसे देख समवेदना तो आती है, फिर भी भविष्य का सुन्दर परिणाम दुखान्त ही प्रतीत होता।

इससे तो जीवन में सुख की साधना ही अच्छी। जीवन का सुख क्या है ? नारी ? नहीं, संयम। वैवाहिक-बंघन और सुखद घरेलू-जीवन। माधवी के पास सम्पत्ति की प्राप्ति पिता के सौजन्य से हुई थी। सम्पत्ति मनुष्य का सर्वांग-सुन्दर-पक्ष नहीं। पिता के मरे सात वर्ष व्यतीत हो चुके थे। मां के विषय में माधवी जब पिता से पूछती थी तो उनके आंखों में आंसू भर जाते। रो और तड़पकर कहते:—"बेटी! मां तुम्हारी, मेरी आंखों में पवित्रमूर्त्ति थी, चाहे दुनियां, जो समझे। मर चुकी लेकिन, धन तो देती गई। यह विलास-गृह उसी देवी की देन है। तुम्हारी शादी बचपन में हुई। किन्तु, तुम्हारा पति अभाग्यवश घर से भाग गया। सुना था, साधुओं की टोली में घूमा फिरता।"

माँ के वियोग में पिताजी भी चल बसे। माता मंजूषा देवी का वियोग पिताजी न सह सके। आज विलास-गृह की स्वामिनी माधवी है। पति की मृत्यु के विषय में वह निश्चित हो चुकी है। सुहाग-सिंदुर ज्यों का त्यों डिबिया में रख दिया गया है। मांग में न सिंदुर-दिनमान चमकता है और विवाह केवल एक कल्पना रह गई।

माधवी भविष्य के चिंतन में डूबती रहती। न घाट लगती

और न किनारा। राज को अपना भविष्य समझ, माधवी, अपने सौंदर्य में उत्तरोत्तर वृद्धि कर रही है। राज उसके सामने है, दूरी केवल जीत या पराजय की रह गई है।

शृंगार से पुरुष जीता जा सकता है। आज शृंगार की आभा से माधवी चमक रही थी। चली थी मानो पिया-मिलन को, धीरे-धीरे, सावनी-समां को अलकों में बांध, किन्तु राज को साधना में लीन देख, वह ठिठक गई। एक ओर वेदना तो दूसरी ओर साधना। मन से विकल, तन से अधीर, आंखों से हिरणी, विलास-गृह की स्वामिनी राज के समक्ष खड़ी रही। न आहट, न खटका। गोविन्द और निर्मल अक्लांत-भाव से देखते रहे। गुरुदेव समाधि में इतने लीन थे कि पता नहीं, कौन आया और कौन गया। सुलेखा अपने कक्ष की ओर चली, प्रिय-वासकी की मदभरी-चितवन निर्मल की ओर पड़ रही थी। निर्मल बेसुध था, अपनी भावना में, क्योंकि बड़े भाई के सामने बातचीत का सिलसिला जोड़ने का साहस नहीं होता था। प्रेमी की चोर-प्रकृति स्वाभाविक थी।

चोरी और सीनाजोरी प्रेमी नहीं करते। आत्म समर्पण का भाव जाग्रत रहता। निर्मल की भावुक प्रकृति उदास प्रतीत हो रही थी। प्रियवासकी को आश्चर्य होता था कि निर्मल इतना पत्थर क्यों है? जैसा गुरु वैसा चेला। निर्मल को चिंतनशील देख गोविन्द ने धीरे से कान में कहा:—चलो, बाजार की सैर कर आवें। बैठे-बैठे जी नहीं लगता। निर्मल और गोविन्द

बाजार चलने को उठे। गुरुदेव ध्यान-लीन थे। बिना किसी आहट के दबे-दबे दोनों भाई बाजार की ओर चल पड़े।

माधवी राज के स्वभाव को भलीभांति समझने में असफल रहती। झरने की धारा निर्मल तो होती, किंतु, स्त्रोत का पता दुर्लभ होता। इसी आधार पर माधवी की विचार समस्या खड़ी रहती।

खड़ी-खड़ी माधवी ऊबी जा रही थी। पर, योगी का ध्यान उन्नत ही प्रतीत हो रहा था। प्रियवासकी की ओर संकेत करती हुई माधवी बोली:—

"सुलेखा को कहो कि मंदिर चलने की तैयारी करे।"

राज की ध्यान-मालिका टूट गई। पलकों के स्पन्दन जागरूक हो उठे। धीरे-धीरे आंखों के सामने माधवी की छवि प्राप्त हुई।

"क्या मंदिर जाओगी?"—राज ने बड़ी जिज्ञासा से पूछा।

"बैठे-बैठे जी नहीं लगता। आपको तो मेरी कुछ चिंता ही नहीं रहती?"

"चिंता किसे नहीं रहती? चाहे योगी हो या भोगी।"

"अकेली रहती हूँ, जी घबड़ा जाता है। मन्दिर के सिवा मेरा सहारा ही क्या है?"

"सुलेखा और प्रियबासकी के होते हुए भी तुम अपने को अकेली ही समझती हो?"

"समझूं नहीं तो क्या करूँ? न तो कोई अपना है और न

कोई अपने-जैसे लोग हैं। आप भी तो..........."...माधवी कहते-कहते रूक गई। नारी के आंसू से पुरुष तो क्या देव भी पिघल जाते। नैनों से बूंदे टपटपा गई।

"विकल न हो, माधवी! मुझे भी कोई अपना नहीं। फिर भी, मैं अपनी साधना से अपनापन जोड़े बैठा हूँ। भगवान कितना न्यायी है!"—राज ने संवेदना के स्वर में कहा।

"भगवान को आप न्यायी कहते हैं। उससे बढ़कर अन्यायी ढूढ़ने से मिलेगा। होश आई ही थी कि पिता को छीन लिया। मां तो बचपन में ही मुझसे बिछुड़ गई। आप ही बताइए, भगवान न्यायी कैसे हैं?"

क्योंकि अन्याय की चरम-सीमा तक पहुँचने के पहले ही न्याय की मीमांसा हम कर बैठते। न्याय और अन्याय दोनों साथ-साथ चलते। अन्याय की नैतिक-परीक्षा तो न्याय है। भगवान के अन्याय को पक्षपात की दृष्टि से देखने के पहले पूर्व-कर्मों का ज्ञान भी आवश्यक हो जाता है— माधवी!"

न्याय और अन्याय का प्रश्न बड़ा ही जटिल है। विचारों की संतुलन-शक्ति की अतीव-आवश्यका है।

राज के सामने माधवी का प्रवेश जटिल होता जा रहा था। रंगीन-भावनाएं एक ओर खड़ी थीं, दूसरी ओर उसकी साधना एकांत-भाव से खड़ी थी।

"किन ओर मन के पंछी भागें?" राज ने प्रश्न किए।

"वैभव और आनन्द की सारी सामग्री पाकर भी तुम प्रसन्न-चित्त नहीं। आश्चर्य!"

"आप तो हर बात में आश्चर्य ही करते।"

"क्योंकि विलास-गृह के चारों ओर मुझे आश्चर्य ही आश्चर्य ज्ञात होता। पहेली है, सुलझाना चाहता हूँ, प्रश्न उतना ही जटिल होता जाता है। तुम्हारे पिता जी का नाम ?"

"पिता का नाम पूछकर आप क्या करेंगे। श्रद्धांजलि के लिए कोई रूपक खोजना तो नहीं।"—माधवी ने धीरे से कहा।

उत्तर पा राज अवाक् रह गया। भय खा रहा था कि कहीं मेरे पिता का नाम माधवी पूछ दे, तो क्या कहूँगा।

बात बदलते हुए राज ने कहा:—"चिंता की कोई बात नहीं। कभी-कभी कोई रहस्य ही सुन्दर होता है।"

सहसा सुलेखा दौड़ती हुई आई।

"मृदुला आप से मिलना चाहती है।"—सुलेखा ने राज को संकेत करते हुए कहा।

"सीधे आने में क्या डर लगता है ?"—राज ने कहा।

"मैं क्या जानूं ? कह दूं, कि आप मिलना नहीं चाहते ?" सुलेखा ने कहा।

"विवाहित-स्त्री को किसी से मिलना-जुलना शोभा नहीं देती। आए मेहमान का निरादर करना भी नहीं अच्छा। यहीं बुला लाओ !"—राज ने कहा।

सहमी हुई मृदुला राज के कक्ष में आधमकी। उजली साड़ी और मांग को शून्य देख राज की जिज्ञासा बढ़ती गई।

मृदुला के आगमन से माधवी स्तम्भित हो गई। पैर कांपने

लगे। सांसें जोर-जोर चलने लगी। स्वागत के कोई भी शब्द मुंह से न निकले। चित्रवत् हो मृदुला को देखती रही।

मृगछाला की ओर संकेत करते हुए राज ने मृदुला से कहा:- "बैठ जाओ। भय क्यों खाती हो ?"

प्यासी चकोरी मृगछाला पर बैठ गई। माधवी को खड़ी देख मृदुला ने कहा:—"आप भी बैठिए न।"

इच्छा न रहते हुए भी माधवी, मृदुला की दांई ओर बैठ गई।

कुछ देर तीनों चुप रहे। बातचीत का सिलसिला कैसे आरंभ हो, तीनों इसी सोच में निमग्न रहे।

"आप तो पहली बार विलास-गृह को आई हैं ? आपको तो मैं पहले से भी जानती हूँ। वल्कि, आप ही मुझे न पहचान सकीं।" माधवी ने कहा।

"जी ! रास-लीला की घटना के बाद से मेरा नाम तो सारा हिन्दू-समाज जानता है। आप जानती हैं, तो कोई बड़ी बात नहीं।"

ग्लानि के भाव से जब कोई दब जाता है, तो सत्य-कथन उत्तरोत्तर प्रकाश में आ ही जाता है। शेरनी को चोट करने पर कोई पूछे कि क्या होता है, तो बात केवल मूर्खता है। एक नारी दूसरी नारी के अपमान से लाभ उठा रही थी तो, मृदुला चुप कैसे रह सकती थी। समाज के प्राणी व्यक्ति का उपहास बड़ी मीठी-छुरी के साथ करते, इतने प्रसन्न होते हैं कि बिना प्रयास के धन प्राप्त समझ बैठते।

माधवी के कथन से जो चोट मृदुला को पहुँची; तनिक घब-ड़ाई, कुछ व्यथित हुई और कुछ-कुछ जीवन का सार निस्सार प्रतीत होने लगा।

नारी की ग्लानि-विदग्धता मानसिक-पाप की रौद्र-चित्रकारी ही नहीं रही, वरन् चोट लगी रह जाती है, कसक फूटती रहती है और चिनगारी तड़प-तड़प शोले-सी दहकती रहती है।

सेठजी की एकमात्र लाड़िली-पुत्री होकर भी, वैभव और सम्पदा की एकमात्र मलिका होकर जीवन की शांति नहीं पा सकी।

पति ने ठुकरा दिया, समाज ने ताने कसे, और मर्माहत हो मृदुला की विचार-शक्ति क्षीण हो रही थी।

समाज इतना बेदर्द क्यों है? क्या रुढ़ियों के चक्कर में नारी की स्वतंत्रता कोई मूल्य नहीं रखती? ठुकराई हुई हिन्दू-नारी का साथ समाज अपनी जर्जर अवस्था में भी क्यों नहीं देता? वेश्या की मंडियां कब तक आबाद रहेंगी? हिन्दू के नाम पर वे नारियां क्यों थूकतीं, जिन्हें लाचारी का नाम बेइज्जती की आड़ में, खान्दान के धोखे में, परवशता की धांधली में, निर्दय-पुरुषों की कामुक-आंच में निरंतर दुहाई देती हैं। विषम है, हिन्दू-जाति की सामाजिक व्यवस्था? निष्ठुर हैं हिन्दू-नामधारी स्वार्थी-कुत्ते।

किन्तु, एक नारी दूसरी नारी की लाचारी की आड़ में उप-हास की उक्तियां क्यों छेड़ती?

मृदुला को यह असंभव-बात भी संभव प्रतीत हुई। हिरणी को संगीत सुनाना आसान है, पर छेड़खानी दुर्लभ।

मृदुला की आंखें लाल हो गईं। लम्बी-दौड़-की-सी सांसें चलने लगी। मन थका, जिया न हारी। केश-राशि बिथर गई। हिय के स्पन्दन जाग उठे। बल खाती हुई, उरोजें कंचुकी के भीतर से फुफकार उठे।

नैराश्य के थपेड़ों से ऊब कर मृदुला बोल उठी:—

"जिसे जितना जी चाहे, हंस ले। कारण, मेरी लाज कामुक-कुत्तों ने लूट ली है। हंसने का इससे बढ़कर मौका भला कब मिल सकता है? मैं न समझती थी कि नारी की कोमल-काया के भीतर ईर्ष्या की भीषण चिनगारी उठा करती है। मेरे आने से यदि कोई खटका हो; तो मैं सहर्ष चली जाती हूँ। आई थी, अपना दुःखड़ा सुनाने। कौन सुनेगा? राजराघवजी या विलास-गृह की गर्वीली माधवी!"

भावुकता जब आती है, तो वर्त्तमान-वातावरण से चोट खाकर।

भावुकता तो निराशा के बाद ही आती है। यह सत्य कितना पार्थिव है?

राज मृदुला के कथन से मन ही मन रो पड़ा। पर, पक्ष-पात का कौन भरोसा? न जाने, कौन से रूप में कौन से भाव भरे पड़े हैं? क्या विश्वास? कौनसी प्रतीति?

"रो न मृदुला! जानती हो विपत्ति का नाम क्या है? परीक्षा। निराशा से किसका चोला दुःखी नहीं? पति ने ठुकरा दिया। समाज के बंधन पड़े होंगे। समाज के आघात से कितने

रोज़ जिन्दगी से हाथ धो बैठते। पता रहते भी हम तो चुप्पी साधे रहते। यह दोष किसका है? भाग्य का। नहीं। फिर, समाज का उत्तरदायित्व बड़ा विशाल है। पुरानी जंजीर तोड़ने के पहले साहसिकता की अतीव आवश्यकता है। मेरी समझ से तो नारी का सारा मनोविज्ञान धोखा और प्रपंच है। हर करवट में नया संदेशा है। संध्या का संस्कार गोधूलि के सिवा और हो ही क्या सकता? रूप जितना सुन्दर होता है, वाणी उतनी मीठी नहीं होती। रूप काया है। वाणी तो परमेश्वर है। माधवी की ओर से मैं क्षमा मांगता हूँ। पराए घर में किसका सपना सत्य हुआ है?"

राज, इतना कहकर गम्भीर हो गया। माधवी को ऐसी मीठी चपत लगी कि चौंक गई। अपने घर में पराए शेर। विचित्र-समस्या।

उसकी आंखें तरकश-सी खिंच गईं। रोम रोम सिहर उठे। मांथे में चक्कर आने लगा और धड़ाम से उल्टी भूमि पर गिर पड़ी।

राज अवाक् रह गया।

"सुलेखा, अरी ओ प्रियवासकी! दौड़ तो आओ! माधवी बेहोश हो गई है।"

राज ने जोर से कहा। दौड़ती हुई सुलेखा और प्रियवासकी धमाक से पहुँच गईं।

राज ने जल के कई छींटे माधवी की आंखों पर मारे। फिर भी, होश न आई। मृदुला सन्न पड़ गई।

कभी आंखें खुलती भी, तो मुख से वाणी न निकलने पाती। राज मूर्च्छा के विषय में अनभिज्ञ न था। स्वामीजी कहा करते थे कि मूर्च्छा मस्तिष्क की बड़ी कमजोरी है, जो मानसिक-आघात पड़ने पर हो जाया करती है। अतृप्त-कामनाएं मूर्च्छा-अवस्था में भावना को भूलने की कोशिश करती है।

राज ने नाड़ी देखी, तो नसें धीमी पड़ती जा रही थीं। कौन सी चोट पहूँची होगी माधवी को? मृदुला के कथन से मर्माहत हुई या मन की सुप्त-भावना जागरण पा चोट खाकर शिथिल पड़ गई।

गोविन्द और निर्मल घूमने निकल चुके थे। राज की घबड़ाहट बढ़ती जा रही थी। उसकी बढ़ती हुई चिंता और मनोमालिन्य परख मृदुला ने कहा:—"कहिए, तो नीलनभजी को बुला लाऊँ?"

"कौन नीलनभ?"

"इस शहर के प्रसिद्ध वैद्य-शिरोमणि हैं। कुमार रतनेश्वर सिंह जी को इन्होंने ही अच्छा किया था।" "बातें कम करो। जाओ, शीघ्र बुला लाओ। जाओ! जाओ!! शीघ्र। जितनी जल्दी जा सको।" राज इतना कह आशंकाओं के भंवर-जाल में पड़ गया।

तेरी माधवी कौन है? जो इतना व्यथित हो उठा है। ममता और प्रेम में न फंस। ममता और प्रेम का यह संसार इतना सुनहला क्यों है? जानता, नारी का मोह बड़ा भयंकर

होता है। सर्पिणी अचेतन हो उठी है तो, इतना घबड़ाता है। तू योगी है, माया की ममता से तेरा क्या प्रयोजन? बताता क्यूं नहीं। गम्भीर बनने से काम नहीं चलेगा। माक-साधान में निरत होना चाहता है। मूर्ख! महामूर्ख!!

हाँ, मैं योगी हूँ! योगी आदमी नहीं क्या? परदुःख कातरता आदमियत नहीं, तो फिर क्या है? अधखिला-प्यार यदि दमतोड़ दे, तो करुणा कबतक भागी-भागी फिर सकती है?

करुणा मानवीय-दुर्गुण नहीं। ईश्वर भी करुणानिधि कहा जाता है। ममता का अंत क्या होता है? दुःखान्त। ओह, तुम्हें तो मरघट में भी करुणा का संचार होता है। तू आदमी है, दुनिया से परे कबतक रह सकता है? तू नौजवान है, तन की, मन की हत्या करने में कौन सा विचितवीर्य आनन्द तुम्हें प्राप्त होता है? विस्मृति के पट खोल दे। जिन्दगी की रवानी में रौनक भर दे।

निराशा का नाम प्रतीक्षा है। क्लांत-आत्मा से मोक्ष भी प्राप्त नहीं कर सकता। नाहक जिंदगी को मजार बनाने से क्या लाभ?

माधवी के निकट ही पलथी मारे राज की भावनाएं दौड़-धूप मचा रही थीं। बेसुध था—राज। सशंक हो उठी थीं सुलेखा और प्रियवासकी।

संध्या की कालिमा रजनी के कपोलों पर जमी जा रही थी। रात्रि बन-ठन आई थी। तारों की टीम-टाम से आकाश झलमल था।

राज ने खिड़की खोल दी। मनमार अचेत-माधवी के सिर-हाने की ओर बैठा रहा। नीलनभ की साँसतोड़ प्रतीक्षा में आंखें विकल रहीं, खोजती-ढूढ़ती रहीं।

प्रतीक्षा की आंखें बड़ी दयनीय, असहाय और करुण होती हैं। घर में राम। वन में राम। किसकी जुस्तजू? कौन सी ममता?

निराशा का कथानक बड़ा ही निर्मम होता और मनुष्य का संपुट कर्म-योग कुछ समय के लिए क्षीण पड़ जाता है।

तनिक बेहोशी से योगी होकर भी राज इतना घबड़ा गया। आश्चर्य?

चाहे योगी हो या भोगी रोग और मुसीबत किसी भी दशा में साथ नहीं छोड़ती।

यह कौन सी करुणा थी, जिससे योगी का हृदय रो पड़ा था?

ममता। मानवीयता। माया कहिए या आदमी की राम कहानी।

आदमी की कहानी सदा से अधूरी ही जान पड़ी हैं, अतः राम कहानी का आदर्श हम ढोते चले आते हैं। माधवी की अचेतन-अवस्था भी राम कहानी थी।

इतने में जीवनधन का दिया हुआ सुग्गा बोल उठाः—
"माधवी! राज!!"

पिंजड़ा सोने की कड़ी के सहारे टंगा हुआ था।

"चुप रह सुग्गे। मैं योगी हूँ, राज नहीं।" सुग्गा पंछी था और पंछी का काल-ज्ञान उच्च-कोटि का होता है।

कोमल पैर उठा चोंच की ओर बढ़ाते हुए सुग्गा एक बार फिर बोल उठाः—"माधवी ! राज !!"

राज को गुस्सा आया। पिंजड़े को कड़ी से उतार भूमि पर पटक दिया। झन-झन। झनाक !!

एक ओर ममता, दूसरी ओर अहम्-भाव। कौन विजेता ? कैसी परवशता ?

नीलनभ को लेती हुई मृदुला आ धमकी। घबड़ाती हुई हिरणी-सी चपल मृदुला खड़ी रही। नीलनभजी ने नाड़ी देखी। नब्ज ठीक-हुबहू ठीक फिर दिल में कैसी धड़कन। नीलनभजी कुछ क्षण चुप रहे।

मौन देख राज ने पूछाः—"आप मेरी सूरत क्या देख रहे हैं। उपचार की व्यवस्था कीजिए। माधवी को इस दयनीय-दशा में देख मेरा मन डोल गया है। मेरी जटाओं को देख घबड़ाइए नहीं। मैं सहानुभूति का मूल्य आंकना चाहता हूं। वैसे तो माधवी का मैं कोई नहीं।

नीलनभ ने माधवी की भर्राई हुई सूरत देखी। फिर, राज को देखा।

कोई रोग तो नहीं, निदान क्या करूँ। मस्तिष्क भी ठीक है। नब्ज भी सुचारु-रुप से चल रही है। तो, यह बेहोशी कैसी ?

नीलनभजी की आयु ७० को पार कर चुकी थी। बड़े-बड़े अनुभव प्राप्त हो चुके थे। पर, यह अनुभव नूतन प्रतीत हुआ।

लम्बी-दाढ़ी को खुजलाते हुए बोले:—"मेरा तो दिमाग काम नहीं करता। नब्ज भी ठीक है। खून की रवानी ठीक है। कोई रोग तो नहीं जान पड़ता। घंटे-घंटे जल के छींटे दीजिए। मामूली बेहोशी है, रफ्ते-रफ्ते कसक दूर भाग जायेगी।"

"कसक की दवा क्या है, शीघ्र कहिए नीलनभजी। क्या कसक कोई रोग है?"—राज ने व्यग्र हो पूछा।

"भोले न बनो, योगी! दिल पर घाव कर पूछते हो कि मर्ज की दवा क्या है? पुरानी बातें कुछ याद हो आई हैं। इच्छाएं थिरक उठी हैं। पिपासा शांत करने की दवा तो तुम्हारी कृपा है। समझे! माधवी की जिन्दगी या मौत तुम हो। अपना कार्य दूसरों पर क्यों सौंपते हो? जंगल का भूत शहर में आकर धूम मचा देता है। शहर की हवा अच्छी नहीं होती। स्थान-परिवर्त्तन कर दो, तो माधवी की जिन्दगी तुम्हारे हाथ है। दवाई की कोई आवश्यकता नहीं। सो, मैं चलता हूं।" नील-नभजी इतना कहकर चलते बने। राज अचंभित रह गया।

सीने में गुदगुदी हो, तो बेहोशी के सिवा कौन सा चारा है?

राज के हृदय में मानवीय-करुणा की एक झलक छलक-छलक आई थी। हृदय अनुराग से बिभोर हो उठा था। मन सहृदयता की मांग उपस्थित कर रहा था।

राज ने बड़ी उत्सुकता से एक नजर माधवी की आंखों की ओर दौड़ाई। अधखुली आंखें, स्वप्न और जिज्ञासा से परि-पूरण और अचेतन-अवस्था में माधवी का सौंदर्य इतना निखर

और रूप-प्याली में छनकर उतर रहा था, कि योगी का मन रूप-पिपासा को आतुर हो उठा। यदि नारी विष है, तो इतनी कमनीयता की क्या आवश्यकता? ज्योत्स्ना से मन गद्‌गद् हो उठता है, तो कमनीयता देख पुरुष का मन-मयूर क्यों न नाच उठे।

विह्वलता का श्रीगणेश कामुकता से होता है क्या? नहीं, कामुकता तो उपदेश व्याधि की तरह उत्तरोत्तर बढ़ती ही जाती है।

नवीनता का नाम प्यास है। और हर प्यास ऐसी घड़ी है, जहाँ आत्मा की अतृप्त-वासना कामनाओं से आक्रांत हो जाती है।

नारी की छवि कामुक-दशा में बरवस खींच लेती है, और हमारी भावना ही सौंदर्य की, उसके रूप की, मीमांसा में प्रयत्नशील हो जाती है।

दूरी का सौंदर्य, निकट और प्रत्यक्ष सौंदर्य से अधिक प्रभावशाली होता है।

राज के समक्ष नारी की कमनीयता इतनी निकट होती जा रही थी, कि मनःसंज्ञाएं अबाध-गति से विचार के पट तोड़ना चाहती थी।

सौंदर्य देख, राज हिरण-सा चौकन्ना हो गया। प्यासा जल देख कर प्रसन्नता की सीमा तक पहुँच जाता है।

कपोलों को चूम ले, कि, अधररस को पी ले। केशों को सहलाए, कि, सौंदर्य की विदग्धता का पूर्णरूपेण अनुभव कर ले, कि पायल-सी रूनझून में विवेक खो दे।

क्या करे, क्या नहीं। राज सोचत रहा। नारी बाहु-पाश बद्ध हो, तो वासना नंगी न हो।

संभल गया—राज, नहीं तो विवेक खो देने पर योग का सिद्धांत म्रियमाण ही हो जाता।

शबनम की चमक को क्या कहते हैं? मस्ती। मस्ती तो पिछलन है, गिरे की चकना चूर।

तनिक क्षण बाद योगी का विवेक सजग हुआ। देखा, तो मृदुला खड़ी की खड़ी ही थी।

"बैठ जाओ, मृदुला! मैं तो बड़ी उधेड़बुन में पड़ गया हूँ। माधवी की बेहोशी भागने का नाम ही नहीं लेती। कहीं सांस-पंछी उड़ गया तो? लोग यही कहेंगे कि वैभव के लोभ में पड़-कर, योगी ने योग-सिद्धांत की आत्म-हत्या कर दी।

नहीं, माधवी को कराल-काल भी मुझसे विमुख नहीं कर सकता।

मेरे संबंध में सारा शहर न जाने क्या-क्या विचार रखता है। पड़ोस के लोग तो इसकी मृत्यु से मुझपर गालियां देंगे, थूकेंगे। नाना प्रकार की शंकाएं करने लगेंगे।

विष दे दिया होगा? नहीं, नहीं, नहीं। बुरी भावनाएं क्यों आ रही हैं? रात ठनक कर आई है। घर लौट जाओ मृदुला। सहन-शीलता सीखो। मेरे विचार में तुम एकबार ससुराल तो जाओ। मानता हूँ, तुम ठुकराई हुई हो। पति ने दूसरा विवाह किया है। फिर भी, तुम्हारा अधिकार तो ज्यों का त्यों है। पर-देशी का कौन ठिकाना। आज यहाँ, कल वहाँ।"

योगी के हृदय में 'आदमी' कहाँ से छिप कर निकला। मृदुला ज्ञान शून्य रह गयी। आदमी है या देव ?

"योगीराज ! उपदेश देना साधारण है। किन्तु, समय का साथ देना कठिन। स्त्रियां इतनी पतित एवं निरवलंब नहीं, जो भिक्षा मांगे, गिड़गिड़ाए, फिर भी खाली झोली लिए लौटे। मन्दिर की घटना किसे मालूम नहीं। मेरा सहारा सभी छूटा जा रहा है। मैं तो आप के चरणों में आई थी। ठुकराने के पहले मिठी-झिड़कियां देने से क्या लाभ ?"

"साहस का प्रयोग करना अनुचित नहीं है—मृदुला ! पति ने ठुकरा दिया है, मन्दिर में अपमानित हुई; ये दोष किनके-किनके हैं ?

जानती हो, भविष्य अंधकारमय होने के पहले बुद्धि सठिया जाती है। किसने कहा था कि रास-लीला मचाओ ? क्यों नाची ? क्यों यौवन के शृंगार दिखलाए ? पुरुष रूप का लोभी होता है। पुरुषों को ऐसा अवसर क्यों देती हो कि कामुक-कुत्तों की तरह पीछे मंडराए। ये रेशमी-केश, ये नवनीत-कपोल, चकोरी-सी प्यासी आंखें, चपल खंजन-सी चितवन, फिर कहो दोषी कौन है ?

तुम मेरे चरणों में आई हो। सोचा भी है कि मैं योगी हूँ, नारी-सौंदर्य की स्पर्धा से मेरा कोई प्रयोजन नहीं। लोग मुझे क्या कहेंगे; युवतियों का शिकार करना चाहता हूं।

भगवान की दया से विशाल-सम्पत्ति तुम्हारे पास है। कंचन से विद्रोह ठानना कामिनी का काम नहीं। रात हो आई है, घर

को जाओ। लांछण लगने से घर की प्रतिष्ठा जाती रहती है।" मृदुला की आंखों से आंसू वह निकले। कपोलों का चांद उदासीन बादलों में छिप गया।

साहस बांध वह बोल उठी:—"यदि मैं प्रयत्न में निष्फल हुई तो?"

"प्रयत्न के पहले परिणाम निकालना भाग्यवादिता है। भाग्य तो पूर्व-संस्कार है। कर्म से भाग्य का महत्व छिप जाता है। योग-साधना से हठ न करो। कोमल-काया योग की कठोर-तपस्या न सह सकेगी। तुम युवती हो। संसारिक-सुख-लाभ करो।"

राज के उत्तर से मृदुला शान्त न हुई। तत्क्षण बोल उठी:— "तो, युवक होकर भी आप जीवन की लालिमा को अंधेरे में क्यों ढकेल रहे हैं?"

"इसीलिए कि समाज में मेरा कोई महत्व नहीं। जीवन से वीतराग प्रगट हो चुका है। इन्द्रियां विमुख हो चुकी हैं। ॐ का सत्य-लाभ करना चाहता हूं।

"तुम बड़ी बातुनी हो मृदुला! बेतुकी-बात नारी का श्रेय नहीं।" राज ने झट कहा- "हाँ, अच्छी बात बेतुकी ही होती है। प्यार को ठुकराने से क्या होता है?" पागलपन! मृत्यु!!

अच्छा, मैं जाती हूं!" मृदुला चली गई, और राज सोचता रह गया।

× × × × ×

राह और राहत—

पथ पर दो प्राणी। गोविन्द और निर्मल। चले जा रहे। संध्या की हल्की-सी कालिमा बढ़ती जा रही। सामने बाज़ार का नज़ारा है। बड़े-बड़े महल। सजी सजाई दूकानें—छोटी और बड़ी। जवाहिरात की दूकानें। बेशकीमती रेशमी-कपड़ों की सज्जित दूकानें।

प्रत्येक दूकान पर भीड़। रेलपेल। ठनकता हुआ व्यापार। आदमियत चिल्ला रही। शराफत भूखी मरी जा रही। लेन-देन का बाजार गर्म।

जेब खाली तो क्या नजारा, क्या थोथा सौंदर्य। झूठी चमक-धमक। व्यापारियों का विकल-जीवन। दूकानदारों की क्लीत-आत्मा।

"सिर्फ दूकानें ही न देखो। उस मुहल्ले का पता तो लगाओ?" गोविन्द ने कहा।

निर्मल चौंका।

"इतने बड़े-बड़े महल और हम गरीबों को झोपड़ी भी नहीं। आश्चर्य?"

"पागल हो गए हो?"

"कवि और गरीब पागल नहीं तो क्या है।"

"क्या हो गया है, निर्मल! जब देखता हूँ, पागलों की-सी बातें करते हो। पूछ रहा हूँ कि जीवनधनजी ने किस मुहल्ले का नाम बतलाया था?"

"भंडाफोड़।"

"मुझे तो कुछ दूसरा ही नाम याद पड़ता है। शायद, तुम गलती कर रहे हो ?"

"हो सकता है। एक महीना बीत चुका। मामूली नाम कब-तक याद रहे।"

"अरे, हमलोग कहाँ पहुंच गए। तबलों की ठनठन सुन रहा हूँ। रास्ता भटक गए। अब क्या होगा ? किसी ने देख लिया तो ?"

"और क्या होगा, हम भी अवारेहाल कहलाएंगे। बेकार आदमी दुनियां की नजरों से कबतक बच सकता है ?"

"जल्दी चलो। राम ! राम !! पाप की काली अमावस्या ही समझो। निर्लज्ज-नारी अंगों का सौदा टके-टके की तौल पर कर रही है। धिक्कार है, इन वेश्याओं को। नस्लें बिगड़ रही हैं। भयंकर रोगों का अखाड़ा जम रहा है। लज्जा रो उठी है। पुरुषों के मुंह पर काली-स्याही पोत दी गई है। देखते हो, ठन-बन कर मंजिल पर खड़ी हो क्या छमछमा रही है। कामुक-कुत्ते आ रहे हैं, दूसरी ओर से जा रहे हैं।"

भैया। वेश्याओं को धिक्कार देने के पहले समाज की कचूमर निकाल देनी चाहिए। ये वेश्याएं भी हमारी बहनें हैं, जिन्हें रूढ़ियों ने ठुकरा दी है। पेट की ज्वाला ने लज्जा को उखाड़ फेंक दिया है। बेकारी में स्त्री हो या पुरूष, क्या नहीं करता। यहाँ जवानी नहीं मिलती। बिगड़ता रंग मिलता है। प्यार का नाम यहाँ धोखा है। नजाकत जहर है। कितने घर बरबाद हो चुके और हो रहे हैं।

जबतक पैसेवालों की धांधली रहेगी, चकलों की बाढ़ उमड़ती ही रहेगी।"

पानवाले की निगाह बड़ी पैनी होती है।

"पान की गिलौरियां खाते जाइए, बाबू साहब !" पानवाला पुकार-पुकार कह रहा था।

निर्मल और गोविन्द ठिठक गए।

रौशनी की झिलमिल में गिलौरियां से सटी हुई चमचमाती हुई तपकें सफेद पारे के समान छलछला रही थीं।

"आइए, बाबू साहब ! खड़े-खड़े क्या सोच रहे हैं !" पानवाले ने गोविन्द और निर्मल को संकेत करते हुए कहा।

निर्मल पानवाले की ओर बढ़ा। गोविन्द कुछ ही दूरी पर खड़ा रहा।

पानवाले ने एक गिलौरी बढ़ाते हुए कहा:—"जरा इसकी लहर तो लीजिए ! दिमाग तर हो जायेगा।"

निर्मल ने समझा, शराफत का तकाजा इससे बढ़कर और क्या हो सकता है ? पानवाला बड़ा शरीफ़ मालूम होता है। क्या घूंघराले बाल। दूध-सा चमकता कुर्त्ता। कुरते के बीच-बीच सोने की कीमती बटनें ऐसी चमक रही थीं कि रजत-कलश पर स्वर्ण की पच्चीकारी कर दी गई हो।

गिलौरी की ओर निर्मल के हाथ उठे, फिर नीचे की ओर गिरा।

"क्यों बाबू साहब ! पान से आपको नफरत है क्या ? पान से बढ़कर सस्ती रईसी और क्या हो सकती है ? भूखा पेट हो,

मुंह में पान दबा लीजिए, तो मालूम होता है कि शहज़ादे साहब चले आ रहे हैं। पान से गला सुरीला, मन उमंग और सोचने की शक्ति बढ़ जाती है। आपको विश्वास हो न हो, मैं तो कहूँगा सारी कयामत एक तरफ़, तो पानवाला दूसरी तरफ़।"

पानवाला इतना कहकर चुप हो गया। निर्मल के चेहरे की उदासी बता रही थी कि बाबूसाहब की जेब खाली है। रईसी काटने निकले हैं। पर, इतना सोचकर भी पानवाला चुप रहा।

हाय री बेकारी! हाय री तड़पती गरीबी! अरमान अमीरों की धाँधली में लुट जाय, कोई परवाह नहीं।

इतने में एक रईस पानवाले की दूकान पर पहुँचा। चेहरे से कामना झांक रही थी। पैसे की गर्मी से तमीज़ घास काटने चली गई थी।

पैसे फेंकते हुए रूआब से बोले:—"अवारेहाल, बेवतन फाके-मस्त लोगों को दूकानपर खड़े होने देते हो, तो मुझ जैसे लोग तुम्हारी दूकान पर तशरीफ़ कैसे लाएंगे। आज कहे देता हूँ, फिर ऐसी हरकतें नहीं होनी चाहिए। सुनो तो, विष्णुप्रिया इसी ऊपर के कोठे में रहती है क्या?"

पानवाले ने हामी भर दी। निर्मल ने अपने कपड़ों की ओर दृष्टि फेरी तो देखा, इस गरीबी से तो डाका देना ही अच्छा।

धोती साफ़ थी। पैबन्द की ओर से तन झांक रहा था। एकसीध में ससरती हुई चीटियों के समान धूल जमी हुई थी। मटमैला सा कुरता फिर भी इतना गंदा न था कि रईसों की नाक फट जाए।

तो, उस रईस ने छिपे-रूप से मेरी तौहीनी क्यों की ?

आदमी आदमी में भेद-विभेद ? पैसों की रईसी-दुनियां में साधारण लोगों को ये भेद-विभेद खटकते रहते, फिर भी जनता क्यों चुप है।

निर्मल को बड़ी आत्म-ग्लानि हुई। दिल मसोस कर रह गया। मन मार बैठा। गोविन्द खड़ा-खड़ा निर्मल की असहाय-अवस्था परख रहा था।

"लौट आओ, निर्मल ! गिलौरियां पीछे खाना। पहले नौकरी तो खोज लो !"

अपमान से मनुष्य की साहसिकता बढ़ जाती है। छिपी भावना उमड़ आती है। और, आदमी को अपनी इज्ज़त सबसे बढ़कर प्यारी होती है। कोई इज्ज़त पर वार करे, और कोई चीखे तक नहीं। रईसों की अंधेर-दुनियां कबतक आबाद रहेगी–भगवान ?

गोविन्द निर्मल के निकट पहुँच गया। पानवाला थोड़े में समझ गया कि आफ़त का मारा गिलौरियों से परहेज़ ही रखता।

गिलौरी ज्यों की त्यों रख दी। दिल न माना। शराफ़त का तकाजा बड़ा महंगा पड़ा।

गिलौरी फिर से बढ़ाते हुए पानवाला बोला:—"गिलौरी तो ले लीजिए। आज न सही, फिर कभी तो ईशान की आदमियत भटक नहीं सकती।"

पानवाले की सहृदयता पर निर्मल को बड़ा क्षोभ हुआ। यदि प्रसन्नता से पान दे रहा है तो लेने से इन्कार क्युं करूँ।

"खबरदार! हम गरीब हैं, भिखारी नहीं। लौटा दो गिलौरी। खान्दान की इज्जत मिट्टी में न मिलने दो—निर्मल! मेरे निर्मल!!" गोविन्द ने कड़क कर कहा।

पानवाले की ओर संकेत कर गोविन्द फिर बोल उठा:—

"भाई, गिलौरियां तो रईसों को शोभती है। हम गरीब हैं, फिर भी इन्सान हैं। और इंसानियत यह नहीं कहती कि मुफ़्-खोरी शौक की चीजों के लिए की जाए। क्या आप बता सकते हैं कि भंडाफोड़ मुहल्ला किधर है?"

पानवाला हंस पड़ा।

"क्या कहा, भंडाफोड़ मुहल्ला। पिंजरापोल भले ही है, भंडाफोड़ तो नया ही नाम सुना है।" पानवाले ने मुस्काते हुए कहा।

"ठीक! ठीक!! पिंजरापोल ही! हमलोगों को जीवनधनजी के पास जाना है! नौकरी के लिए बुलाया है।" गोविन्द ने कहा।

घटा जब फटती है, तो धीरे-धीरे। मालूम पड़ती है, तपाक से फट गई।

पानवाले ने इंसानियत की सीख आज पढ़ ली। उसका अहम् छिप गया। मन में सम्पूर्णानंद का अनुभव हुआ।

"सीधी सड़क धर लीजिए! कुछ दूर पर नुक्कड़ के निकट ही जीवनधनजी का बड़ा-सा महल मिलेगा। मैं शरमिंदा हूं।"

पानवाला का हृदय उमड़ पड़ा। दो गिलौरियां हाथ में लेते हुए बोला:-"यदि कोई प्रसन्न-मन से इनायत पेश करे, तो आपको

शकसुवाह की कोई गुंजाईश नहीं होनी चाहिए। लीजिए ये गिलौरियां। एक आप खाइए, एक इन्हें दीजिए। समझ लीजिए, इंसान अपना फर्ज़ अदा कर रहा है। आप न लेंगे, तो मुझे बड़ा दुःख होगा।" जब मन-कमल खिलता है, तो भावना की मनःसंज्ञा पवित्र एवं निश्छल प्रतीत होती है।

एक गिलौरी गोविन्द ने खाई और दूसरी निर्मल। धन्यवाद देते हुए, दोनों भाई चल पड़े। पानवाला निहारता रह गया।

दोनों भाई उस दूकान के निकट पहुँचे, जहां सरेबाजार में दोनों की इज्जत बिकी थी। राज का सहारा मिला था। दूकान बंद थी। ठाकुर चबूतरे पर हुक्का पी रहा था। पहचानी हुई सूरत देख ठाकुर ने पुकार कर कहा- "जरा सुनो तो भाई।"

गोविन्द ने पुकार कर कहा:—"मिठाई की कीमत लेनी है क्या ?" ठाकुर चबूतरे से उतर आया। गोविन्द के निकट आकर बोला:—"किए पर शरमिंदा हूँ, भाई ! दूकानदार उसी रोज से बीमार पड़ गया है। बड़बड़ाया करता है। मुंह से 'साधु ! साधु !' की आवाज निकलती रहती है। पूरी बात समझ ही नहीं पाता। लाड़िली बेटी न जाने कहाँ गुम हो गई है।"

निर्मल झट बोल उठा:—"जरा हमलोग देख सकते हैं ?"

"क्यों नहीं ! क्यों नहीं !! चलिए मैं ले चलता हूँ।" ठाकुर ने कहा।

"देर हो रही है, निर्मल ! जीवनधनजी बाहर निकल गए तो हताश हो लौटना पड़ेगा। समझ लो !" गोविंद ने कहा।

"एक झपक देख तो लूं। न जाने क्यूं मुझे दूकानदार को देखने की इच्छा हो रही है। आप जरा ठहरें, मैं ही देख आता हूं। उस दिन दूकानदार ने अपनी शराफत वेची थी, तो हमलोग अपनी इंसानियत क्यों खो वैठें!" निर्मल ने तपक कर कहा।

"शराफत और इंसानियत यह अंधी दुनियां नहीं देखती। चलो अपना काम करो!" गोविन्द ने कहा।

"भैया! आपके मुंह से ऐसी बातें शोभा नहीं देती। आप ठहरें तो सही, मैं लपक कर यूं गया, यूं आया।" निर्मल ने कहा।

शराफत बेचकर लोग पैसे कमाते हैं। रईसी कटती है। इंसान इंसान को ठोकरें मार रहा है। हाय री दुनिया! आज की दुनियाँ में शराफत क्या है, समझ लीजिए, अजायबघर में जानवरों का नजारा देखना।

नंगी होकर शराफत पैसों के दामन में अपना मुंह छिपा रही है। लज्जा विकती है, इंसानियत बिलख-बिलख रोती है। हाय रे जमाना! गरीबों की शराफत चोचले-परस्त अमीर भला क्या समझें!

गोविन्द खड़ा-खड़ा सोचता रहा। बेकारी के दिनों में ऐसी-ऐसी बातें सोची जाती हैं, जो विशेष तथ्य रखती हैं। विपत्ति के समय दिल का कपट-भाव दूर होकर अंतःकरण अगहन की पूर्णमासी-सा शीतल हो जाता है, जिससे बुद्धि की संतुलन-शक्ति डवांडोल नहीं हो सकती। दुनियां का रहस्य एकबारगी प्रगट होने लग जाता है।

वेकारी और गरीबी का अनुभव करने में जितनी दयनीय-दशा का आक्रोश हमें होता है, फिर भी परिस्थितियां इतनी लाचार कर देती हैं कि न तो कहते बनता है और न कहे रहा जाता है। गरीबी जब नंगी हो नाचती है तो जिन्दगी की सारी जिंदादिली सपनों की परिभाषा हो जाती है। गरीबी का सपना बड़ा ही मीठा होता है। पल-पल आशाएँ नाचती नजर आती हैं, पर पलक खुलते ही अमराइयों पर वैठी कोयल आहट और भय से दूर भाग निकली है।

गरीबी के कारण गोविन्द का चोला दुःखी था। फिर भी, गरीबों की शराफत अनमोल होती है। विलास-गृह में रहते हुए एक मास बीत चुका था। किसी बात की तकलीफ न थी, तो भी बहुत बड़ा खटका था। पर का भोजन कबतक स्वादिष्ट लग सकता है? महलों का नजारा कबतक आनन्द दे सकती है?

दिन कट गए, फिर भी जिंदादिली न आई। निर्मल की हरकतों से गोविन्द परेशान हो चला था। मन की मौजें में उसे परवाह नहीं कि घर का क्या होगा। मां कैसी होगी? तारा और गौरी कैसे दिन काटती होगी? न जाने कागज पर क्या-क्या घसता रहता है, पूछता हूँ, तो कह देता है—भैया! निराशा का कथानक लिख रहा हूं। कविता कहिए या उपन्यास। बड़ा बातुनी है। नौकरी नहीं करना चाहता। बड़ी बुरी संगत में पड़ गया है। कई दिन मुंह से शराब की बदबू आई थी। कैसे-कैसे दोस्त हैं, इसके? प्रियवासकी न जाने क्यों निर्मल की ओर खिंची

जाती है। मुझे तो विलास-गृह अजूबा ही लगता है। नारी का राज्य! माधवी देवी कौन है? योगी के रूप में नररत्न राज-राघव कौन सा रहस्य है? सभी जासूस से मालूम पड़ते हैं।

योगी और माधवी से भला कौन सा संबंध हो सकता है? विशाल-सम्पत्ति की मलिका होकर भी माधवी के चेहरे पर मायूसी क्यों छाई रहती है? कौनसी पहेली अधूरी रह गई है?

ओह, सुलेखा कितनी गम्भीर है? चपल हिरणी-सी भागती हुई उसकी आंखें, इधर भागती हैं तो झट, उधर लपटें खाती हैं। लोटन कबूतर-सी अंगों की मस्ती में मतवाली चोट बजाती जवानी इधर छलकती है, तो उधर, कलेजा मुंह को आता है।

गोविन्द विचारों का तानाबाना बुनता रहा। खड़े-खड़े कितने समय बीत गए। पता नहीं। इतने में निर्मल दौड़ता हुआ आया। घबड़ाया हुआ परेशान मालूम पड़ रहा था।

"भैया! बड़ी मुसीबत में दूकानदार पड़ा है। बेहोशी की हालत में बड़बड़ा रहा है। कोई भी बात साफ़ समझ में नहीं आती! क्या बिटिया-बिटिया बोलता है। ठाकुर कहता है कि दो दिन से न जानें कहां गुम हो गई। जवान थी। मुंह से साधु, साधु की रट-सी लगी हुई है। मुझे मालूम पड़ता है कि गुरुदेव की इच्छा रखता है! आप कहें, तो गुरुदेव को इसकी खबर दे दूं। ठाकुर भी यही चाहता है।" निर्मल ने कहा।

निर्मल बड़ा व्यग्र हो गया था। परेशानी से खून की तेजी चमक उठी थी।

"किसकी-किसकी भलाई करते चलोगे—निर्मल ? दुनियाँ दुरंगी मक्कारासराय। इन पैसे के कुत्तों को पिल्लू-की-सी मौत हो तो और ही अच्छा। क्या उस दिन की बेइज्जती इतनी जल्दी भूल गए ? चलो; समय अधिक हो रहा है। जीवनधनजी सैर-सपाटे को निकल जायेंगे तो..........." गोविन्द की बातें पूरी भी न होने पाई थी, कि निर्मल क्रोध से ऊबल पड़ा।

"यदि एक इंसान अपना फर्ज भूल जाय तो क्या हमें भी शराफ़त लात मार देनी चाहिए ? बेचारे ने ऐसी खाट धर ली है कि खाट ही निकलेगी। आप जीवनधनजी के पास जायें। मैं तो गुरुदेवजी के पास दौड़ जाता हूं। हम गरीब हैं, फिर भी इंसान हैं। इंसान अपना फर्ज भूल जायेगा तो दुनियां किस बूते पर आबाद रहेगी ?"

"भूलते हो, निर्मल ! इंसान की मक्कारी पर आज अमीरों की दुनियां खुशहाल हो रही है। शराफ़त का सौदा महंगा पड़ता है। अपना घर जल रहा है, तो दूसरों की तड़प से कौन सा अंजाम होगा ?" गोविन्द इतना कहकर बंद-कमल सा गम्भीर हो गया।

पर, कमजोर आत्मा डरती है। हमारी अज्ञानता सशंक होती है। हिरण-सी शंकित गोविन्द की भावना दुनियां से परे न हो सकी।

निर्मल को दुख अवश्य हुआ। फिर भी, विचारों के अंतर से मन मलिन न तो हुआ और न थका। गोविन्द को छोड़ निर्मल विलास-गृह की ओर दौड़ पड़ा।

और, गोविन्द पिंजरापोल की ओर अग्रसर हुआ। भाई ने बात न मानी। क्षोभ अवश्य हुआ। फिर भी, उसके वश की बात न थी। जवान बेटे और भाई को छेड़ना आफ़त मोल लेनी है। गोविन्द ने चुप्पी-साध ली।

नुक्कड़ के पास ही लोहे के एक बड़े लोहे के फाटक के चारों ओर चहलक़दमी करते हुए सर पर मूरेठा बांधे दो संतरी नजर आए! फाटक के सिंहद्वार पर पत्थर के बने हुए दो शेर काल की भांति मुंहबाए खड़े थे।

गोविन्द सिंहद्वार के निकट आकर खड़ा हो गया। संतरी के सामने फाटक के भीतर घुसने का साहस न हुआ।

"क्या चाहता है?" एक संतरी ने पूछा।

"देख रहा हूँ कि अमीरी की चादर इतनी लम्बी होती है।"

"पागल है क्या?"

"क़िस्मत का मारा पागल ही कहा जाता है।"

"फिजूल बकता है।"

"नहीं। बात ठीक कहता हूँ! कहने का तर्ज अलबत नया है।"

"जानता नहीं, जीवनधन रईस की आनन्द-वाटिका है। जरा अपनी सूरत तो देखो। क्या तुम्हारी मां सीना-पिरोना नहीं जानती। पैबन्दों के तो बंदनवार लगे हैं। हट जा यहां से। वर्ना ख़ैर न होगी।" दूसरे संतरी ने मूँछ ऐंठते हुए कहा।

"बेशक! गरीबों की मां कितने पैबन्द लगाएगी। इज्जत फटती है, तो पैबन्दों से कबतक ढंकी जा सकती है। जीवनधन

जी को जाकर कह दो कि विलास-गृह से एक संदेशा आया है।"

गोविन्द की आंखों से आंसू टिपटिपा गए। मां-बाप की सारी इज्जत गरीबी खाक में मिला देती है। वफ़ादार संतरी ठीक कहता है। इज्जत नहीं तो हम कौड़ी के तीन। क्या पैसे से इज्जत मोल खरीदी जा सकती है? धनवालों की दुनिया में इज्जत की बेपर्दगी नहीं क्या?

संतरी पूछकर आया और अदब से बोला:—मुआफ़ कर दें! मालिक आपको अंदर बुलाते हैं। चलिए, मैं ले चलूं। आपको मेरी नौकरी निगल जाने से क्या फायदा होगा। मेरे बच्चे भूखे मरने लगेंगे। हुजूर, शिकायतें मेरी न करेंगे।"

गुलामी की जंजीर में आदमी स्वाभाभिमान खो बैठता है। हर क्षण खटका। पल-पल आशंका।

मखमल-फर्श पर जड़ीदार तकिए के सहारे जीवनधनजी बैठे व्यापार की लम्बी-लम्बी शैतान की आंत से जकड़ी हुई बहियां उलट-पुलट देख रहे थे। गोविन्द ने प्रणाम किया। जीवन-धनजी ने सर हिला दिया।

धनिक का गर्व कितना निर्मम और बेदर्द होता है। शराफ़त की बू-वास भी नहीं रहती। यूं सर हिला दिया कि वरदान ही दे रहे हों।

"तो, आज आपकी नींद टूटी है?"

"भूल हुई, क्षमा करें!"

"क्या संदेशा लाया है?"

"कुछ नहीं! सिर्फ आपको नौकरी की याद दिलाने के लिए आया हूँ।" "तो झूठ बोलने की क्या जरूरत थी?"

"इसीलिए कि संतरी सीधे आपसे मिलने नहीं देते।"

"देखिए, नौकरी तो अब खाली नहीं। एक महीना बीत चुका। आपको तो पहले आना चाहिए था। अब मैं लाचार हूं।"

"बेवतन को ठुकराना कहाँ का इन्साफ है?" गोविन्द ने कहा। "इंसाफ-उन्साफ की बात मैं नहीं जानता। निकल जाओ यहाँ से। नौकरी को क्या बाप की जायदाद समझते हो?"

ओह, भीषण अपमान। पृथ्वी फटे और मैं समा जाऊँ। बाप-दादे की नाक कट गई। गालियां देने से कौन-सा संतोष अमीरों को मिलता है?

हुकूमत बड़ी चीज है। फूलझड़ी सी अमीरों की गालियां गरीबों के वंशजों को बिना टिकट स्वर्गधाम का रास्ता दिखाती रहती है।

परवशता दयनीय-नरक-अवस्था है। गोविन्द दांत काट कर रह गया।

दबी आवाज में बोल उठा:—"भरोसा देने से तो फटकार ही देना अच्छा है। मुझे नौकरी न देंगे तो मेरी बहनों का क्या हाल होगा? मुझपर तरस खाइए। एक ओर मेरी गरीबी चौड़ेआम खड़ी है, दूसरी ओर बहनों की शादी की चिंता खाए जा रही है। बरसो भगवान!"

"क्या कहा, तुम्हारी जवान बहनें भी इसी शहर में हैं?" जीवनधन ने बड़ी उत्सुकता से पूछा।

"जी नहीं! दस कोस की दूरी पर रहती हैं। मां बूढ़ी हो गई है। झोपड़ी बाप-दादे की निसानी रह गई है।"

"देखो, मैं तुम्हें आज नौकरी देता हूँ। जाओ सभी लोगों को यहाँ ले आओ। इसे अपना ही घर समझो। घबड़ाओ नहीं। हमारी शराफ़त का डंका कहाँ नहीं गूंज रहा है। तुमलोगों को किसी बात की तकलीफ न होगी। हाँ, विलास-गृह में तुम्हारा डेरे-डंडा………"

"मेरा कोई संबंध नहीं। गुरूदेवजी के साथ ठहरा हुआ हूं।"

"और तुम्हारा भाई?"

"वह नौकरी नहीं करना चाहता।" "बहुत खूब! क्या खूब!! अंधेरे में बेवकूफों को जिंदादिली ही सूझती है। तो तुम आज ही घर जाओ। आदर सहित वे लोग यहाँ रहेंगे। मैं तो आदमी को बड़ा पसन्द करता हूं।"

"जी, आज ही चला जाऊँगा।" "सुनो, तुम्हारी बहनों की शादी का प्रबंध कर दूंगा। घबड़ाओ नहीं। सब ठीक हो जायेगा।" जीवनधनजी ने कहा।

गोविन्द अमीरी का चोचला न समझ सका। प्रणाम किए और हंसी-खुशी चलता बना। बेकार आदमी को और बेकार समय को जब नौकरी मिलने की आशा होती है, और पैसे; बेकार समय को काटने के लिए जरूरत से अधिक होते हैं, तो

एक को बड़ी प्रसन्नता होती है, तो दूसरे पक्ष को विलासिता और ऐय्याशी सूझती है।

गोविन्द को नौकरी का संदेशा क्या मिला था, कि भूखे को स्वर्ग की प्राप्ति हो चुकी थी। सड़क पर पैर रखता तो नाजुक पैरों को ठेस लगती थी। प्रसन्नता का अंदाजा लगाता तो बेहोशी ही मालूम पड़ती थी। बेकार को नौकरी क्या मिली थी कि कुत्ते को तिरस्कृत-रोटी की टुकड़ी मिली थी। गुलामी जब सूझती है तो शराफत-वा-इज्जत का ख्याल पहले होता है। हुकूमत की जोशीली, फिर भी झूठी तस्वीर; मन में खिंच जाती है।

नौकरी तो बड़प्पन की देन है। पेट दोनों साम भर गये, चलो छुट्टी पाए—क्या इसका इतना बड़ा महत्व है? नौकरी तो वह चिराग है, जिससे धनिकों, पूंजीवालों का नाम रौशन है, फिर भी गरीबों के लिए चिराग के तले अंधेरा ही प्रतीत होता है।

गोविन्द अपनी सफलता पर बाग-बाग हो रहा था। किस्मत पलटी, दरिद्रता कल्पना रह गई। मां जब मेरी नौकरी की खबर सुनेगी, तो बेहद खुश होगी। बेटे ने घर की लाज रख ली। डूबते को तिनके का सहारा क्या मिला, परमेश्वर मिल गया, कि विश्वास उठ बैठा। बहनों को कितनी प्रसन्नता होगी। फटे-पुराने कपड़ों की होली मनाई जायगी। छिः, आदमी और फटे और पैवन्द लगे कपड़े? राम! राम!! आदमी की क्या अधोगति गरीबी कर डालती है।

समाज में अब हमलोगों की भी शिरनी चढ़ाई जायगी। इज्जत की नज़रों से लोग देखेंगे। लोग कहेंगे कि बाप की तरह बेटा भी दरबारी बनने जा रहा है। आदि कितनी बातें कहेंगे, एक दूसरे को सुनावेंगे। आज पिता जी होते तो पुत्र की सफलता पर भूरि-भूरि प्रशंसा करते। काश! वे नहीं। फिर भी, औलाद तो छोड़ गए। मैं उनकी औलाद की हैसियत से आकाश और पाताल के कुलाबे मिला दूंगा। साहिबे-औलाद औलाद का दर्द महसूस करता है। बड़ी-बड़ी उम्मीदें रखी जाती हैं, जिनसे परम्परा की कलई चमकती है।

"सूझता नहीं! अंधे हो?" एक राहगीर ने गुस्से से कहा। गोविन्द मन के लड्डू खाने में इतना मशगूल था कि रास्ते की रेलपेल का कुछ भी ध्यान नहीं रहा। एक राहगीर से टकरा गया। राहगीर गोविन्द के सामने होकर बोल उठा:—"राह चलते-चलते ख्वाब देखते हो? बड़े रईस हो तो अपनी सड़कें क्यों नहीं बना लेते? सूरत तो देखो, बड़े शरीफ़जादे मालूम पड़ते हैं।" "माफ़ कीजिए! जानकर तो गुस्ताखी नहीं की। मुझे क्यों कोसते हैं?" गोविन्द ने विनम्र हो कहा। "जानबूझ कर हो या अनजाने में गुस्ताखी-गुस्ताखी ही है। कौन सा जलवा देखा है?" राहगीर इतना कहकर भीड़ में छिप गया। पीछे से किसी की आवाज आई। "जरा रूकिए तो भैया!" गोविन्द ने उलट कर देखा तो निर्मल हांपता हुआ निकट आ रहा था। रग-रग की परेशानी पसीने में कड़क-कड़क हताश हो रही थी।

"क्या है, निर्मल ?" गोविन्द ने पूछा। "जल्दी चलिए। माधवी देवी बेहोश पड़ी हैं। गुरूदेव सेवा में निरत हैं। हम-लोगों से उनकी परेशानी दूर होगी। महान्-आत्मा दूकानदार से भी मिलने की उत्कंठा रखते हैं। मैं आपको खबर देने आया हूं। लौटकर सीधे विलास-गृह को भागूंगा। गुरूदेव मरणा-सन्न दूकानदार की तसल्ली के लिए आना चाहते हैं।" निर्मल की दर्द भरी बातें गोविन्द के हृदय में न प्रवेश कर सकी। वह चुप रहा।

"आप बोलते क्यों नहीं ?" निर्मल ने तपक कर कहा। "क्या बोलूं, क्या नहीं। पास में पैसे होते और इतनी शराफ़त दिख-लाते तो दुनियां दाद भी देती। हम तो बेवतन हैं। कोरी शराफत हमें चाटनी नहीं। देखो, मैं घर जा रहा हूँ। जीवन-धनजी ने मुझे नौकरी के साथ-साथ बड़ी दयालुता दिखलाई है। घर के लोगों को आश्रय भी देंगे। उनके विशाल-महल में हमलोगों की गुंजाईश भी पूरी तरह हो जायगी। मां, गौरी और तारा बहन भी मजे में रहेंगी। मैं तो कहता हूँ कि तुम भी नौकरी कर लो। जानते हो, नंगी-शराफत किसी काम की नहीं होती।" गोविन्द कहकर निर्मल की भाव-भंगिमा का पर्य्यवेक्षण करने लगा। निर्मल का चेहरा मलिन-स्याही-सा उदास हो गया। पैर थरथरा गए। धीरे से उसने कहाः— "भैया ! आप बड़े हैं। यदि मैं कुछ कहूं तो छोटा मुंह, और बड़ी-लम्बी बात होगी। अमीरों के चोचले वेश्याओं के दायरे में मक्कारी फेरती है। आपको, शायद, मालूम नहीं, जीवनधन बड़ा एय्यास—आदमी

है। नौकरी आपको देंगे, न कि घरभर का बोझा संभालेंगे? मेरी समझ में तो भेड़ियों के झुंड में खतरा ही खतरा नजर आता है। वैसे तो आप खुद समझदार हैं। फिर भी इतना कहे देता हूं कि खानदान की इज्ज़त को मिटाना है तो घर के सभी लोगों को यहाँ ला सकते हैं। जीवनधन जालिया आदमी है। क्या आप चाहते हैं कि भेड़ियों को अपनी इज्जत भेंट चढ़ावें? क्या आप टके-टके पर कामुक-कुत्तों को पुचकारना चाहते हैं? क्या आप गुलामी की जंजीर में अपने ही घर में आग लगाना चाहते हैं?

ओह, मतलब-भरी दुनियां! हाँ, पूंजीवालों के पैर पड़ना कहाँ का इन्साफ़ है? अमीर कामुक-कुत्ते होते हैं। धनवालों की दुनियां में गरीबों की बहू-बेटियां कबतक खैर मनाएगी? एक न एक दिन पाप का पर्दा फाश होगा। चिकनी चुपड़ी बातों में आने के पहले घर का दरवाजा बंद रखना चाहिए। कहीं बेबसी से लाभ उठाकर गरीबों की नाक ही न तराश ली जाय। भय है। धोखा है। गिरगिट के एक रंग किसने देखें हैं?"

"हाँ, तुम्हारी भावना चुस्त और दुरुस्त है। पर, गरीबों की किश्ती पूंजीवालों के ही सहारे चलती है। किश्ती चलने के पहले ही भंवर का खटका तो हमारी दिली-कमजोरी है। तुम चुल्हेभाड़ में जाओ! नौकरी नहीं करनी है, तो काया कबतक खड़ी रह सकेगी? बताते क्यों नहीं, निर्मल? माधवीदेवी हमारी कौन है, जो इतना हताश दीख पड़ते हो? परमार्थ पेट के बाद की चीज है।

जीवनधनजी बूढ़े हैं, फिर शंका करने की कोई गुंजाइस नहीं। जरा आईने में अपनी बदरंग सूरत तो देखो। काईयाँ पड़ी हुई हैं। गरीबी शीघ्र बूढ़ापा ला देती है। विलास-गृह की तरफदारी तुम क्यों नही करोगे। प्रियवासकी की इश्कमिजाजी में होश खो बैठे हो? जाओ, अपना रास्ता देखो। मैं तो घर सभी को लाने के लिए अभी ही पैदल प्रस्थान कर रहा हूँ। विलास-गृह के चक्कर में पड़ना हमें अच्छा नहीं लगता। तुम कवि हो, गायक हो, लेखक हो। पर, अंधी दुनियां तुम्हारी भल-मनसाहत से नाजायज फायदा उठा रही है। तुम्हें कोई नहीं जानता। दरवारी बनते तो लोगों की आवाज में तुम्हारा नाम गूंजता। सड़ रहे हो, फिर भी भावुकता की अंधेर-नगरी में भटकते फिरते हो? अपनी दशा पर शर्म नहीं आती? क्या क्या भूख की लपटों में दहक-दहक कर तारा, गौरी बूढ़ी-मां जल-कर राख हो जायगी? नहीं, औलाद मां का ऋण नहीं भूल सकता। जानते हो राजाजी दरवार में हमारे पिता जी की कितनी इज्जत थी? मतवाले हाथी द्वार पर झूमते थे। आज झोपड़ी तक की वेवतन दशा में हम मारे-मारे फिरते हैं। इससे बढ़कर लज्जा की वात क्या होगी?

निर्मल क्रोध के आवेश में बोल उठा:—आपकी जैसी मर्जी। मेरा रास्ता आज से अलग होता है। मैं नौकरी शब्द से घृणा करता हूँ। इससे तो डाके, चोरी, खून, और दगाबाजी ही अच्छी। पैसा का पैसा। जरूरत से ज्यादा नाम। विचारों के

विभेद से हम झगड़ा नहीं चाहते। अपनी-अपनी गलती पीछे महसूस करने का समय अवश्य आयेगा। गलतियों की प्रतीक्षा में हम पहले से ही क्यूं रो बैठे।"

निर्मल इतना कहकर विलास-गृह की ओर चलता बना। गोविन्द ने घर की राह ली।

निर्मल ने आकर देखा कि गुरुदेव कमरे में चहलकदमी कर रहे थे। उद्‌भ्रांत-मन विचारों के थपेड़ों से उद्विग्न हो रहा था! माधवी बेहोश ही पड़ी रही।

मैं आ गया गुरूदेव ! अब आप दूकानदार के घर जा चलते हैं। ठाकुर को आप पर बड़ा विश्वास है। कहता था कि दूकान-दार साधु, साधु ही बकता रहता है। दर्शन की अभिलाषा लगी हुई है। प्राण निकलने को है। सत-संग की भावना जाग उठी है। आप शीघ्र देख आवें तो अच्छा हो ! बेचारा का प्राण निकसने को आतुर हो उठा है।"

"मैं आदमी हूँ, और आदमी मृत्यु को नहीं जीत सकता। मृत्यु अजेय है। पाप से जब चोला दुःखी हो जाता है, तो नई आकृति के लिए पेशखी में विनाश से ही आरंभ हो जाते हैं। आत्मा-निश्चित समय तक प्राण-वायु में छिपी रहती है, काला-तर में सबसे बड़ी ज्योति से मिलने को छटपाती रहती। साधना की शक्ति देखने के पहले असंभव और चिरंतन-सत्य से होड़ निरर्थक है। अच्छा मैं देखकर झट लौट आता हूं। तुम जल के छींटे बार-बार देते जाना। हाँ, गोविन्द कहाँ है ? राज ने पूछा।

उन्हें जीवनधनजी ने नौकरी दे दी है। घर गए हैं, माँ, और बहनों को लाने! जीवनधन जी रहने के प्रबन्ध के लिए आश्वासन दे चुके हैं।

पास ही खड़ी सुलेखा झट बोल उठी:— "खैर, नौकरी तो मिल गई। आप को मिली या नहीं?"

"नहीं।"

"क्यों?"

"मैं नौकरी नहीं करना चाहता! नौकरी से मुझे नफरत है! मेरी कविता, लेखनी और संगीत ही कभी न कभी जीविका दे देगी। कलाकार की जीविका मिलनी बड़ी ही कठिन होती है।"

प्रियवासकी निर्मल के कथन से मन ही मन प्रसन्न हुई। धन्यवाद के अस्पष्ट शब्द मुंह से निकले। निर्मल ने सुना कि न सुना। चितवन मीठी-सी खिंच गई। लजा गई प्रियवासकी। पलकें झुक गईं। नारी जब एकबार खिंच जाती है, यदि अनुराग विकल्प नहीं हुआ, तो हिरणी की तरह चोट खा कर भी छलांगें मारतीही रहती। जबतक प्राण, तबतक आशा। पुरुष के आकर्षण में इन्द्रधनुष सा-बहुरंगा प्रभाव रहता है। नारी की जवानी में तड़प तपक कर आती है। नहीं सोचती, अंजाम क्या होगा।

पुरुष के प्यार में संयम नहीं पर, नारी केवल एक से ही अपने सम्पूर्ण प्रेम की जिज्ञासा रखती हैं। प्रेम विलासिता नहीं, वरन् हृदय का अचेतन-अनुराग है।

लेकिन, प्रियवासकी की लज्जा भावनाओं के साथ आज एक मास से रार मचा रही थी। प्रियवासकी जानती थी कि भार-

तीय-प्रेम में विकलता छिपे रूप से ही संयमित रहती है। कामुक-कुत्ते हाय-हाय करते। विलासिनी की वासना और होती है, तो और-और बढ़ती ही जाती है।

निर्मल को नौकरी से नफरत है। कितना ऊँचा विचार है। निर्मल की जिंदगी गुजर रही है, इतना ही वह जानती है। जब निर्मल थक कर आता है, तो प्रियवासकी को इच्छा होती है कि सेवा और संयम से क्लांति दूर करने की।

थका जब घर लौटता है तो पिया को मीठी-बैन सुना-सुना-कर, पत्नी यह चाहती है कि वह परिश्रम, असफलता, और निराशा को तनिक देर के लिए तो भूल जाय।

प्रियवासकी को गृह-लक्ष्मी बनने की इच्छा जाग उठी थी। घर का महत्व उसकी भावना में उसी तरह छिपा हुआ था, जिस तरह मुसाफिर को कड़कती-चिलचिलाती धूप में छाया की आशा लगी रहती है। मुसाफिर डग भरता जाता है। घने-पेड़ देखे कि मन उधर ही भागा। प्रियवासकी अपनी उम्र को सोचती, तो बड़ी निराशा होती। जीवन के पचीस किसलय के मिस में जवानी रूठी जा रही थी, फिर भी कामना का उद्रेक सुहाना ही प्रतीत होता था। नैराश्य के तांडव में उसकी जिन्दगी की आशा अमावस्या की रात-सी भयावनी, मरघट-सी उदास, फिर भी, अरमान नये-नये थे। जिन्दगी हार थक चुकी थी, फिर भी; भविष्य का सुन्दर स्वप्न निराला था।

सुनहले अरमान कभी साथ नहीं छोड़ते। किसकी-किसकी चिता जली, पर जलने वाले ने न तो चिता की धधक जलने हुए

देखी और न अरमान ने साथ छोड़ा। आदमी अरमान लिए मरता है। फिर भी, भविष्य का सुनहला स्वप्न धोखा ही देता रहता।

आज, दस वर्ष की बालिका के रूप में जब प्रियवासकी दर-दर भीख मांगती सड़कों की धूली चाटती हुई अपने नैराश्य को सोचती, तो माधवी के पिता को धन्यवाद के शब्द ही बारी-बारी से देती। विलास-गृह में पुत्री के समान उन्होंने मेरा पालन किया। मैं और सुलेखा दुनियां की बुरी निगाहों से तो बच गई। वह महान्-पुरुष आज नहीं; नहीं तो आज पूछती "एहसान का बदला पिताजी क्या दूंगी ?"

माधवी के पिता श्री पारसनंद की गोद में अल्हड़-सी जब तब धूम मचाया करती थी। गुजर गया जमाना। रह गई है—याद। आज, उन्हीं की एकमात्र पुत्री बीमार पड़ी है। अजीब बेहोशी है, राजन् ने पट्टियां पर पट्टियां दीं। तनिक पलकें भी न खुलीं। न जानें, कैसी बेहोशी है ?

सुलेखा गोपालकृष्ण के कमरे में आरती देने चली गई थी। गोपालकृष्ण की हरिमूर्त्ति राज के आसन से चार कमरे के बाद विराज रही थी। प्रियवासकी घंटी की टनटन सुन रही थी। माधवी की बेहोशी से पूजा का काम सुलेखा को ही निभाना पड़ा। निर्मल पानी की भींगी पट्टियां माधवी के मस्तक पर निरंतर देता जा रहा था।

मृगछाला पर अचेत माधवी ऐसी खिल रही थी कि काली-साड़ी पर रेशमी बूटे हों। बेहोशी कलंकमात्र थी। फिर भी दिलकश जवानी सरसब्ज थी।

मृगछाला इतनी लम्बी नहीं थी कि माधवी के पांव पूरी तरह धरातल छू नहीं पाते। दो कमल से पाँव संगमर्मर-सी धरातल पर बिथरे पड़े थे। तकिए के सहारे माधवी के काले-केश सघन मेघ में लिपटे थे। जड़ीदार काला-कोमल-तकिया के सहारे माधवी अचेत पड़ी हुई थी। हाथ की मुट्ठियां सिकुड़ी हुई थीं। समां क्या देखा क्या नहीं!

निर्मल खिन्नमन माधवी की दाहिनी ओर बैठा पट्टी पर पट्टी दिए जा रहा था। निर्मल को उदास देख प्रियवासकी से नहीं रहा गया। हृदय के तंत्री बाज उठे।

"आप, घबड़ाए हुए क्यों लगते हैं?"

"सोच रहा हूँ कि किस्मत की लकीरें मेरी टेढ़ी क्यों हो रही हैं। भैया गुस्सा होकर चले गए। मां क्या सोचेगी। बेटा नमकहराम निकला। न जाने क्यों, नौकरी के नाम से मुझे नफरत हो गई है। फिर सोचता हूँ बेकार कबतक रहूँगा। बहुत सी कविताएं, भावपूर्ण लेख और उपन्यास लिखे पड़े हैं। कोई पूछता तक नहीं। खैर, भैया को नौकरी मिल गई। पर, इन कामुक-कुत्तों का डर है।"

"कौन कामुक-कुत्ता?" प्रियवासकी ने बड़ी उत्कंठा से पूछा।

"यही, जीवनधन जैसे रईस नाम के लोग। दया इतनी सस्ती और बजारू हो सकती है, यह तो भैया के कथन से आज ही मालूम हुई।"

"कौन सा कथन? साफ-साफ क्यों नहीं कहते?" प्रियवासकी ने पूछा।

"मन की धारणा सहज नहीं कही जा सकती। समझने को समय लगता है। जीवनधन मेरी बहनों और मां को आश्रय देना चाहता है! बात तो इतनी ही है।"

"आपकी धारणा गलत नहीं—प्रभु! जीवनधन तो जीता-जागता करैंता-साँप है। कितनी कुमारियां बेज़ार हो चुकी हैं। फिर भी न जानें, क्यूं मालकिन उसका लिहाज़ करती हैं। उसका दिया हुआ सुग्गा भी बड़ा बदतमीज़ है। जब देखो माधवी! सुलेखा!! प्रियवासकी का रट लगाया करता है। रेकार बड़ा मारता है। मेरा वश चले तो गला घोंट दूं। जब देखो टांय-टांय। फिर, काकातुआ उतना बदतमीज़ नहीं।"

"देखो, प्रियवासकी मैं तुम्हारी रंगीन-भावनाओं को कई दिनों से समझ रहा हूँ! पर, गरीब हूँ, थोथे प्रेम के लिए लाचार हूँ। और, तुम नहीं जानती थी कि मैं कौन हूं, और मैं पूरी तरह नहीं जानता कि तुम कौन हो।

जानती हो, इश्क़ का अंजाम बुरा होता है। आखिर, बे-मैं वतन हूँ, बेकार हूँ, कुरुप हूँ, मुझे भयंकर परिणाम से बचालो–प्रियवासकी! देखो, मेरी दो बहनें कुमारी हैं। विवाह के लिए कोई योग्य वर नहीं मिलता। धनवालों की दुनियां में गरीबी कबतक हाय पीटती रहेगी? और मैं, प्रेम की धाखेबाज़ी से डरता हूँ। फिर, समाज का संयम है, बंधन है। आखिर मैं बेकार हूँ। बेकारों की रंगीनी कैसी?"

निर्मल एक-सांस में सब कह गया। प्रियवासकी के मुख की

ओर नजर दौड़ाई तो, देखा, उसकी आंखों में शबनम-से आंसू थे।

"रो न प्रियवासकी! उस रूदन से क्या लाभ जिसने मजार की मायूसी देखी? उस भावना से क्या प्रयोजन, जो केवल कल्पना ही है। मानता हूँ, दिलरूबा होती है, तो तकदीर नहीं कोसती। भरोसा रखती। और, मेरा क्या ठिकाना। तुम जानती नहीं—मैं शराब पीता हूँ। लफंगों के साथ घूमता हूँ। बेकारी में अभी तो इतना ही है, न जाने आगे क्या होगा। यदि मेरी जिन्दगी का सपना, फिर भी मीठा लगे, तो कोई बात नहीं!"—निर्मल ने कहा।

प्रेम का रोना भी कभी बन्द हुआ है ? लगी चोट किसकी छूटी है? कसक छोड़ कौन सा मकरंद मरा है?
प्रियवासकी के आँसू टिपटिपाते ही रहे।

कवि का हृदय कांप उठा। अभागे ने किस्मत देखी। बड़ी विचित्र दुनियां। एक ओर बेहोशी, दूसरी ओर 'सुखदेव-रंभा' संवाद!

निर्मल धीरे से उठा और कुरते की एक छोर से प्रेयसि के आंसू पोछ दिए। गरीबी से खुशकिस्मती मिली। प्रियवासकी निहाल हो गई। प्रेम पाकर नारी जितनी विह्वल होती है, उतना पुरुष, शायद, नहीं होता। नारी को यदि सच्चा प्यार मिले, तो आभूषणों से बढ़कर आनन्द मिलता है। सहसा आवाज आई।

"आरती तो ले जा—प्रियवासकी! कमरे में चुपुड़-चुपुड़

क्या कर रही है। निकलने का नाम तक नहीं लेती! निर्मलजी तो हैं ही।"

आवाज़ सुलेखा की थी। प्रेम-कथोपकथन में किसी की आहट या आवाज़ इतनी बुरी मालूम पड़ती है कि दाँत पीसने तक की नौबत आ जाती है! सुलेखा की आवाज़ से प्रियवासकी खीझ उठी।

"और गले फाड़-फाड़ कर चिल्लाओ! सुना तो, आरती ले जाती हूँ। मालकिन बेहोश पड़ी हैं और शहनाई बज रही है। आती हूँ।" प्रियवासकी ने पुकार कर कहा।

हिरणी-सी नज़र फेंकती हुई प्रियवासकी आरती लेने को दौड़ पड़ी। निर्मल कट कर रह गया।

मन का उल्लास और स्निग्ध-प्यार। दोनों जीवन के बड़े सुनहले अवसर हैं।

सुलेखा के निकट पहुँच कर प्रियवासकी ने कहा:—"ज़रा, तुम ही आरती लेती आती, तो क्या होता?"

सुलेखा ने हंसकर कहा:—"दोनों घुलमिलकर बातें नहीं कर सकते। और क्या होता?"

"तुम बड़ी नटखट हो—सुलेखा। कमरे की ओर गई थी क्या? देख लिया, अच्छा किया। साक्षी भी तुम्हीं को बनना पड़ेगा।"

"ओह-हो, प्यार का नशा चढ़ा नहीं कि नज़ाकत आ गई।"

सुलेखा खिल गई—मौलसिरी की खुशबू-सी। "अरी,

वासकी ! गोविन्द को नहीं देख रही हूँ ।" सुलेखा ने पूछा ।

"गोविन्दजी तो अपने परिवार को लाने घर चले गए हैं । उन्हें नौकरी जीवनधन ने दी है । मिठाई खिलाओ ! खुशखबरी की ।" प्रियवासकी ने कहा ।

बात उल्टती हुई सुलेखा बोली:—"राजन् अभी तक नहीं आए हैं ?"

राजराघव को ये दोनों राजन् नाम से ही पुकारती थीं । सुलेखा ने आरती देते हुए पूछा:—"सुना है राजा जी भानुमति-मंदिर आने वाले हैं ।"

"कौन राजाजी ?"

"हमारे नरेश । मनचले राजा । जानती नहीं, राज-फाटक की सारी सम्पत्ति उन्होंने ही भानुमति को दी थी । सुना है, भानुमति के प्रेम में उन्होंने शासन का कार्य भी छोड़ दिया था ।"

"छोड़ो जी ! इन राजे-महाराजे और रईसों की बात । एय्याशी राजे लोग नहीं करेंगे तो क्या भूखे-गरीब करेंगे । मुझे तो रईसों के नाम से ही नफरत है ।"

प्रियवासकी आरती लेती हुई, आ धमकी । निर्मल चुपचाप बैठा हुआ था ! किसी की प्रतीक्षा थी ! अनुराग अधूरा था । कहानी का श्रीगणेश ही हुआ था । पूरी कहानी, तो कथानक है ।

निर्मल के हृदय में नया-उल्लास भर आया । नैनों में नारी की छवि भूली थी, जवानी के तराने छिड़े थे । प्रेम की संकड़ी-गली में प्रवेश करने के पहले एक अजीब गुदगुदी होती है,

जिससे विवेक रागात्मिका अनुभूतियों के भ्रम में पड़ जाता है। रंगीन-तस्वीरें जब खिंच जाती हैं, तो विवेचना-शक्ति मंद पड़ जाती है। निर्मल के मन का वसंत गरीवी की चहरदीवारी में रस भर कर आया था, और दीवानी प्रियवासकी आरती-थाल लिए खड़ी थी।

"आरती ले लीजिए!"

प्रेयसि के इस कथन पर निर्मल को इतनी प्रसन्नता हुई; जितनी कालिदास को मेघों के काल्पनिक-आमंत्रण में हुई थी।

प्रेमी का निष्काम हृदय कवि की कोमल विदग्ध-तंत्री से भी अधिक जागरुक रहता है। निर्मल का कवि जाग उठा। आरती की स्निग्ध आभा में प्रियवासकी के रक्त-उभार कपोल ऐसे सुहाने थे कि अरूणिमा विकसना सीख रही थी, उल्लास थिरक उठा था, काली-काली बौरनियों के बीच नैनों की पुतलियां इधर झुकतीं, तो खिंचाव दूसरी ओर शीघ्र-शीघ्र लहरी-सी भागती फिरती। पुतलियों को उल्लास पकड़ना चाहता था, पुतलियां तनिक ठहरे तब तो?

चंचल-नैन और बरसाती-पनाला। ,एक दूसरे की अधीरता, फिर भी स्पर्धा का भाव क्यों रखता? रूप पर जवानी खिलती है, या जवानी पर रूप कुस्मित होता।

निर्मल ने एक सरसरी नजर प्रियवासकी के अंग-अंग पर दौड़ाई। सिमटी-सी लज्जा अम्बर में ऐसी छिपी थी कि कोई मूलधन का अंदाजा न लगा सके, फिर भी चतुर व्यापारी, पुरूष

की निर्दय-आंखें पहचान लेना चाहती हैं कि कहीं धोखा, कपट, और भ्रम तो नहीं।

निर्मल समझ गया कि पराग भरा है, किसी निर्दय-भौंरे की आंखें नहीं मचली हैं। खिली है कली, मस्त है अंग-अंग। पुरुष का सम्पूर्ण-प्यार चाहिए। भावना से मानसिक-आनन्द भी होता है, कभी-कभी मानसिक-क्लेश भी।

आरती थाल लिए प्रियवासकी खड़ी रही। निर्मल मेरी ओर एकटक क्यों देख रहा है? हो सकता है, ढलती उम्र से निराशा हुई हो? पुरुष को क्या पूरी-सम्पूर्ण जवानी चाहिए? चुप क्यों हैं? जवानी का पर्य्यवेक्षण हो रहा है क्या?

कवि, जब नारी का सौंदर्य देखता है, तो अपनी बेहोशी में, आदमी जब संगिनी की प्यास रखता है तो अपनी कामना की मुक्त-उड़ान में। कवि को सौंदर्य निखरता है, तो वह साधारण आदमी की भांति छटपटाता नहीं। दूर की सोचता है, ईश्वर की कृतियों पर आश्चर्य करता है। नारी का सौंदर्य भगवान की अनमोल-कृति है।

निर्मल की कविता उन्मादिनी की तड़प-सी नहीं उभड़ी। वरन्, संयम का सामाजिक-बंधन रहा। वह बोल गया:—
"आरती लेकर आई हो, या अरुणिमा-सी मुझे उद्विग्न करने आई हो?"

"चुप भी रहिए, सुलेखा ने सुन लिया तो?"

"प्रेमी कब डरा है, जो आज डरेगा—सजनि!"

निर्मल कुछ और कहता, पर चपला-सी दमकती प्रियवासकी कमरे से निकल भागी। प्यार से नज़ाकत आ ही जाती है। लज्जा प्यार पाकर अधीर होती ही है। चली गई या भागी—हिरणी ? निर्मल देखता रह गया।

योगी को गए कितने घंटे बीते—निर्मल ठीक-ठीक न जान सका। अनुमान किया तो—केवल एक घंटा।

राज जब दूकानदार के घर पहुँचा तो देखा ठाकुर चारपाई की दाहिनी ओर कम्बल बिछाकर हुक्का पी रहा था। योगी को देखते ही वह बांसों उछल पड़ा।

"उठ रामू ! निद्रा छोड़, तेरे द्वार पर योगीराज आये हैं। देखता नहीं ? संतों का संगत बड़े भाग्य से होता है बड़ा बद-तमीज आदमी है। दंडवत तक नहीं किया।"

ठाकुर रामू का नौकर था। संगदिल और एक ही उम्र होने के कारण नौकर और मालिक का शिष्टाचार-भाव दोस्ती की भावना में बदल चुका था। रामू को खाट पकड़े एक महीना से ऊपर हो चला था। दिन-दिन कमजोरी बढ़ती जा रही थी। एक तो साठ की-बुढ़ापे-की अवस्था, दूसरी एक महीने से ऊपर की लम्बी बीमारी—खाट में सटिया गया था।

बोली बंद हो चुकी थी। सिर्फ, आंखों से टुकुर-टुकुर आए-गये की ओर देखता। भावना उमड़ती, फिर भी कंठ से कोई शब्द नहीं निकलने पाते।

दोस्ती के तकाजे को ठाकुर पूरी तरह अदा कर रहा था।

जब रामू की छोटी-सी पान की दूकान थी, ठाकुर अपनी गरीबी से तंग आकर उसी समय से नौकर का फर्ज़ अदा करता आ रहा था। नमक इंसान की एक बड़ी इज्ज़त है। ईमान इंसान की वफ़ादारी है। ईमान से इंसान है और इंसान शराफ़त का इंसाफ करता है।

ठाकुर ने ईमान को न छोड़ा। रूखी-सूखी रोटी खाकर भी न तो अपनी शराफ़त खोई, और न इंसानियत छोड़ी।

शायद, ठाकुर जानता था कि रामू को न तो कोई अपना था, और न कोई दुश्मन। गृहिणी की याद को रधिया के वात्सल्य-प्रेम में दबाए बैठा था।

पान के नफे से मिठाई की बड़ी दूकान खुली। रामू के पांचो अंगुली घी में। अच्छा पैसा कमाया। कुछ ही साल बाद धनिकों में रामू का नाम भी आ जाता था। पर—था कंजूस। ठाकुर के लाख कहने पर भी ईंटे के मकान न बनवाये और न शान शौकत की जिंदगी ही गुजरी। ठाकुर को अज़हद चाहता था। दोस्ती की रवानी चली जा रही थी। न तो कोई खटका और न कोई भ्रम किसी के मन में उपजा था। गठीले और भरपूर-तन्दुरुस्ती के कारण ठाकुर अपने को जिंदादिल ही समझता था, यद्यपि इसकी आयु साठ से किसी हालत में कम न होगी। याद नहीं, ठीक-ठीक उमर क्या होगी।

उधार और तकाजे का काम ठाकुर के मथ्थे था। ठाकुर ने रामू के लाख कहने पर भी शादी नहीं की। छुटपन से ही गांजे

का शौक रखता था। नियमित रीति से गांजे का सेवन करता था। हुक्का तो नई आदत थी। रधिया जब से गुम हो गई, रामू का दिल चकनाचूर हो गया। काफी खोज-पड़ताल हुई, पर बेटी न मिली, तो हताश और समाज में शरमिंदा हो उसने खाट धर ली।

ठाकुर ने हुक्का कमरे के एक कोने में झट रख दिया और रामू को योगी के आगमन की सूचना दी। किन्तु, रामू कहने से लाचार था। सभी इन्द्रियां शिथिल पड़ती जा रही थीं। राज ने बड़े ध्यान से रामू को बार-बार देखा। चादर के भीतर से उसके दोनों हाथ प्रणाम करने के लिए निकलने को आतुर थे, पर शक्ति नहीं, तो पुरुष भी अबला से भी अधिक असहाय, और दुर्बल हो जाता है। रामू की इस भक्ति-भावना से योगी का मन प्रसन्न हुआ। उस दिन की घटना भूल गया, जो गोविन्द और निर्मल के साथ घटी थी। उस दिन रामू व्यपारी था। आज आदमी की असहायता को महसूस कर रहा था। शायद इसी असहाय-अवस्था में गोविन्द और निर्मल पड़ा होगा ? नहीं तो मुफ्त का जलपान उधार के तरीके से नहीं करता। पेट के कारण, व्यापार के मामले में इंसान इंसानियत खो बैठता। क्योंकि शराफ़त और ईमान ऊँचे-स्तर की भावना है, दुनियां के व्यवहार-कुशल-क्षेत्र में सफेद-झूठ और उजली-फांसी की मनाही नहीं है।

आदमी के पैर वहीं जमते जहाँ स्वार्थ के धोखे में शराफत का स्वांग रचा जाता है।

आदमियत पैसों की झनाझन में कराहती रहती है, पर अंधी-दुनियां क्या जाने—शराफ़त के इंसाफ।

राज आंखों की पुतलियों को रामू की आंख पर केन्द्रित यों कर बैठा, ज्यों नवजात-बछड़ा ग्वाले की ओर एकटक से देखता है।

कमरे का वातावरण शांत रहा। ठाकुर आश्चर्य-भरी दृष्टि से राज के योग-सिद्धांत को देख हैरत में पड़ गया! क्या तेज बरस रहा है, इन आंखों में। एक ही साथ सैकड़ों दीपक उद्भासित हो उठे हों, अहम् आत्मा की जुस्तजू में भटक रहा हो?

ठाकुर देख रहा था—राज की पुतली स्थिर ही होती जा रही थी। एक घंटा बीता। पुतली ज्यों की त्यों निश्छल रही।

"ठाकुर, रामू नहीं मर सकता। प्राण-वायु समुचित-रीति से चल रही है। हां, मृत्यु निश्चित है। दो महीने के बाद। घबड़ाओ नहीं, कल तक भला-चंगा हो जायेगा। अच्छा, मैं तो चला। सबेरे खबर अवश्य देना।" राज के इस कथन पर ठाकुर को भरोसा हुआ। वह तत्काल बोल उठा—

"योगीराज! रामू दवाई-उवाई तो खाता नहीं। लाख कोशिश की, लेकिन न माना। रधिया जब से घर नहीं आई है, रामू बड़ा उदास रहता है। बहुत बड़ा सदमा पड़ा है।"

"घबड़ाओ नहीं धैर्य रखो। ईश्वर चाहा, तो रधिया अवश्य मिलेगी। मैं जानता हूँ, रामदास महंथ के चेलों के चंगुल में फंस गई होगी। और जवान लड़कियों को आजाद रक्खो, और गली-गली खोजे फिरो। स्वतंत्रता पाकर औरतें बिगड़ जाती हैं—ठाकुर!"

"ठीक कहते हैं, योगीराज ! मृदुला की कहानी के पहले से ही कितनी जवान-लड़कियां गुम हो गई हैं। सुना है, घनश्याम का पता नहीं चलता। हाय राम, धरम-करम सब बिगड़ता जा रहा है। शरीफ-गुन्डों की बन आई है। गरीबों की इज्जत अब न बचेगी। ठहरिए, रौशनी तो दिखा दूं। अंधेरा बहुत हो गया है।" राज जब शीघ्र-शीघ्र विलास-गृह पहुँचा, तो माधवी को अचेत देख विशेष घबड़ा गया।

"निर्मल ! माधवी की बेहोशी तो छुटती ही नहीं। अब क्या होगा ? जल के छींटे तो देते रहे ?"

"गुरुदेव ! छींटे तो देता रहा, पर पलकें कभी भी नहीं खुलीं। सुलेखा और प्रियवासकी और भी अधिक व्यग्र हो गई हैं। कहीं चल बसी, तो क्या होगा ?"

"चुप रहो, निर्मल ! कभी ऐसी बात मुंए से न निकालना। मैं जानता हूँ, माधवी, मेरी कोई नहीं। मैं उसकी आतिश्य-सत्कार से अत्यन्त खुश हूँ। उसने मुझे परखने की बड़ी कोशिश की, पर, न परख सकी। मानता हूँ, मृत्यु चिरंतन-सत्य है, किन्तु; योगी मृत्यु तो क्या, सारी सृष्टि को पलभर में परिवर्त्तन कर सकता है। यदि गुरुदेव की शक्ति मुझमें है, तो माधवी अवश्य भली-चंगी हो जायेगी। तुम देखना चाहते हो, मेरी योग-साधना ?"

"साधना पर किसे विश्वास नहीं, गुरुदेव ! पर, विपत्ति में भरोसा छूट जाता है। योग-साधना की महिमा पर भगवान शंकर की श्री-भक्ति टिकी हुई है।"

"विपत्ति से भयभीत होकर मनुष्य अपनी मूर्खता प्रदर्शित करता है। मनुष्य पर विपत्ति नहीं पड़े, तो ईश्वर की आस्था ही मिट जाय!

निर्मल नत-मस्तक रहा। राज कमरे में बड़ी व्यग्रता से चहल कदमी करता रहा। कमरे में निस्तब्ध शांति रही।

"विचित्र-मूर्च्छा है। कोई उपाय नहीं सूझता। निर्मल! यहाँ से हट जाओ! सुलेखा और प्रियवासकी से कह दो, माधवी का शयनागार सुसज्जित करे। मृग-छाला पर नारी की मूर्च्छा नहीं टूट सकती। जाओ! शीघ्र जाओ! जितनी शीघ्रता तुमलोग प्रदर्शित कर सकते हो!"

माधवी का शयनागार सुसज्जित कर दिया गया। कक्ष के दीपक मंद-मंद मुस्कान-स्नात ज्योति से प्रदीप्त हो उठे। एक बार फिर योगी का योग हंसा, खिलखिला कर—

नारी का नग्न-सौंदर्य देखने का क्या अधिकार? देख लिया, तुमलोग कितने सभ्य हो? आदमी हो न? अतृप्त वासनाओं से आक्रांत होकर तुमने कौन से पाप नहीं किए? अधखिली कलियां पुरुष के भीषण, विषम अत्याचारों से कब नहीं कराह उठीं। ठोकरें मारीं, अंग का गुप्त रहस्य जाना, फिर श्री सीता, सावित्री, दुर्गा की मूर्त्तियां क्यों बनायीं?

मद पीकर कौन मूर्च्छित नहीं हुआ। सौंदर्य अहम् की मूर्च्छा है—योगी! इधर देख, माधवी चेतनावस्था में नहीं, प्रेम के नाम पर प्रेम-चिन्ह जड़ दे। सौंदर्य को तू चेतनावस्था

में देख रहा है। ऊफ़, यही तो तुम्हारी मूर्खता है। यदि अतृप्त-इच्छाएं सुप्त-अवस्था में विदग्ध हो शांत पड़ गईं, तो यह भयंकर पाप है—योगी !

गरल की महत्ता भगवान शंकर से पूछा ! नारी के स्पर्श से डर रहा है ? नारी की शक्ति पर तुम्हें विश्वास है या अंध-विश्वास। ऐश्वर्य-स्वरुप लक्ष्मी को चंचला कहते, फिर भी निर्लज्ज हो, उसी की आराधना में लीन रहते !

माधवी के पास क्या नहीं। धन, विराट-ऐश्वर्य, अक्षत-यौवन, फिर भी पुरुष के बिना निरीह-सौंदर्य, यदि मूर्च्छावस्था में है, तो प्यार-भरी यामिनी को सबेरा न देखने दे।

राज ! याद कर तुम्हारा पाणिग्रहण भी ग्यारह वर्ष की अवस्था में हुआ था। भूल गया। धन्य हो तुम ! बड़ी स्वार्थ-परता दिखलाई।

और, राज के मुंह से निकला "हाँ, मेरा विवाह हुआ था। न जाने पत्नी कहाँ है ? किस अवस्था में है।"

तो,

राज झुंझलाया। व्यग्र-अवस्था में स्मृति कहाँ से यकायक आई। मैं भी छोटा और वह भी छोटी थी पत्नी का नाम याद नहीं पड़ता। स्वप्न है या स्मृति—पता नहीं। इतना तो याद है कि राज-फाटक के पास ही, संभव; विलासपुर में मेरा विवाह सम्पन्न हुआ था। शायद नाम था माधवी। नहीं, भूल करते योगी।

वे दिन याद पड़ते हैं—मां की गोद में लोट-लोट कर कितनी लोरियां सुनी, नहीं, वह मेरी मां नहीं। ओह, घृणित नारी दूर

हट जा। मां की ममता, बहन का स्नेह, उछलकूद, धमा चौकड़ी, सभी एक-एक कर याद हो आती हैं, पर, हाय री; लोक-लज्जा !

मैं मां को छोड़ गुरुदेव के चरणों में आया। योग-साधना में इच्छाओं को आत्मसात कर दिया। लोक-कल्याण का मार्ग मेरे सामने है।

पर, ज्ञानी दुनियां से दूर रहकर भी, दुनियां दूर नहीं। ऐसा क्यों ज्ञात होता है—भगवन !

नारी मृग-तृष्णा है, या पुरुष की इच्छाएं ही मृग-छौना-सी लम्बी दौड़।

अहिंसा ! तो भी माधवी मूर्च्छित पड़ी है। नारी को अहिंसा की प्रतिमूर्त्ति समझने में ज्ञानी का मोह तिमिरावस्था में क्यों पड़ा रहता ? क्या तू मानता है—नारी अहिंसा की मूर्त्ति है। धन्य ममता, विराट स्नेह, न पीड़ा से उद्भ्रांत, व्यथा से क्लांत।

पुरुष की हिंसा-शक्ति को अजेय नारी की अहिंसा-शक्ति ही रोकती है। नहीं तो, निर्मम-पुरुष सृष्टि-चक्र में तांडव ही मचाता रहे ! अहिंसा का उच्च-संस्कार दुर्लभ है। कहाँ ? पुरुष की निर्मम-स्वार्थपरता में। ज्ञानी भटक रहा है—भावनाओं में। आश्चर्य !

राज ने माधवी को अपने कंधे पर उठा लिया। धीरे-धीरे माधवी के शयनागार में पहुंचा। माधवी के अस्त-व्यस्त केश राज के कठोर स्कंध पर यों बिखर गए कि विरहिणी की सकल-वेदना उमड़ पड़ी हो। राज के स्कंध पर माधवी ऐसी प्रतीत हो

रही थी कि मानो शिव से सुन्दर-सती निद्रा में मौन पड़ी हो।

पुरुष रूप की अवहेलना भले ही कर सकता है, किंतु, नारी की अवहेलना न तो भगवान शंकर कर सके और न ब्रह्मा, विष्णु, और महेश।

रूप तो तृष्णा है। रूप का आकर्षण होते ही पुरुष का ज्ञान-संस्कार उस काल तक के लिए मलिन पड़ जाता है। क्या ज्ञानी होकर रूप से डर रहा है—राज ? राज ने मखमल बिछावन पर माधवी को लिटा दिया।

राज ! ज्ञानी रूप से भय खाकर, रूप सज्ञान है, या रूप—यौवन ?

शृंगार या आवरण से पृथक कर देखने में नारी का दानवी-रूप, मांस-पिंडल, के अतिरिक्त कोई सार नहीं ! क्या यही सोच रहे हो ? नहीं, संस्कार से च्युत होकर मनुष्य कितना निरीह हो जाता है, जैसे जंगल में अछूता-युवती।

नारी के जिस रूप और सौंदर्य को देख पुरुष पागल हो जाता है, तनिक विचार तो सही, नारी की नग्न या अर्द्ध-नग्न अवस्था में उसका रूप कितना निरीह हो जाता है, जितना शेर के पंजे में पड़ा एक बालक।

स्पर्श के बाद रूप का महत्व भी निरीह, कामुक-तापमान से सौंदर्य भी; उच्छृंखल।

माधवी की मूर्च्छा का कारण तू है—योगी ! जवानी में रूप का सस्ता-आकर्षण किसे नहीं होता ? योग तो तुम्हारा ऊपरी

सज्ञान-अवस्था है, साथ-साथ तू आदमी भी है।

जानता है आदमी को नारी की बड़ी आवश्यकता होती है, जिस तरह माथे के नीचे मुलायम-तकिया।

माधवी को पत्नी-रूप में क्यों नहीं देखता— राज ? क्या तूने वधू की विदाई का दिन देखा है ? ओह, विदाई का निर्मम-दिन ! री ! नव-यौवना—जाग ! ओह, तू तो परवशता से विदग्ध, अज्ञात-भविष्य में अनजान, तू रो रही है; पालकी आगे-आगे बढ़ती ही जा रही है। बेहोशी से मौन पड़ गई, क्यों ? पता नहीं। लज्जा-आवेग से सकुचा गई, यौवन के अंगराग कंटकित हो उठे। आभूषणों के वीच कामनाएं उद्दाम हुईं। भारतीय-संस्कृति के अखंड आत्मिक-बंधन में तू बंध गई—आज। तेरे पति ने सुहाग-रात में ठठोलियां नहीं की, लज्जा की लालिमा में तू ऊषा-सी खड़ी रही। बीत गई रात, और तू पिया के संग चली। डोलती-डोलती पालकी डोलती ही रही। तुम्हारे रूप की आलोचना होगी क्या ? नहीं; री पगली !

माधवी के वस्त्र अस्त-व्यवस्त थे, अंग-अंग निरीह-अवस्था में पड़े थे। बेहोशी थी। सौंदर्य की अचेतन-दशा में रूप नादान ज्ञात हो रहा था। बिछावन पर लेटी हुई माधवी को राज अनिमेष निहार रहा था। नहीं, माधवी के केश-जाल में ज्ञानी नहीं फंस सकता। न जाने कितने नारी-चिकुर-जाल में संस्कार खो आहत हुए। मोह को रोक दे—राज ! राज घबड़ा गया। उसके मुंह से धीमे-स्वर में ये निकले—"माधवी ! उठ ! जाग !

देख ! निर्दय पुरुष तुम्हारे सामने खड़ा है। बेहोशी छोड़। अंग-तापमान को जिस लज्जा में छिपाती हुई, वस्त्रों, आभूषणों, शृंगार-विधानों से बीच-बीच सकुचाती हुई, रूप और सौंदर्य पर इठलाती है—अभी कहाँ छिपी है– तेरी लाज ! रूप का गर्व किन तारों में छिपा है। सौंदर्य का गर्व निरीह हो गया है। उठ जा। वस्त्रों में लज्जा को बांध शीघ्र खड़ी हो जा। मान जा मानिनी ! बेहोशी से तेरा रूप सज्ञान हीं है। लो मैं आंखें मींच लेता हूं। वस्त्रों को संवार। लज्जा-विहीन तेरा रूप एवं सौंदर्य बड़ा उच्छृंखल और व्यग्र मेरी आंखों में, ज्ञात हो रहा है। क्या तू नहीं मानती ? क्या ? लज्जा आवरण में झांकती हुई नारी कितनी नादान, अनजान, सौंदर्य—प्रतिभ, रूप—समस्या बन खड़ी हो जाती है ?

मानता हूं, लज्जा त्याग करते समय नारी सशंक, फिर भी निर्भय हो जाती है। लेकिन, लज्जा छोड़ते समय रूप का गर्व कहाँ छिप जाता है ? बता दो—माधवी ! आदमी विकल हो पूछ रहा है। राज पूछ रहा है, योगी नहीं !

योगी तो, सौंदर्य को, ज्योति समझता है ! आत्म की या अखिल की पूंज-पूंज ज्योति की टोह में थक भले ही जाये, फिर भी थकावट को शांति नहीं समझ लेता। सौंदर्य को ममता की दृष्टि से देखने पर—अंग-सौंदर्य नहीं झलकता, सुन्दरता एक पवित्र-मूर्त्ति हो जाती है। हिरणी जब शर-विद्ध हो, तड़प उठती है तो क्या वह सौंदर्य नहीं ? पर वासना का विकल आदमी

सौंदर्य पर सज्ञान नहीं रीझता। नारी का रूप तो पुरुष की अज्ञान-अवस्था है। यदि आदमी सौंदर्य पर रीझते समय हिरणी की शर-विद्ध तड़प, ममता-विज्ञान को समझ ले, तो पतन को सत्य नहीं समझ सकता। आदमी पाप से विकल नहीं हो सकता। रूप के पीछे दीवाना नहीं हो सकता। लेकिन, सौंदर्य की विशद-व्याख्या की क्या आवश्यकता! नारी लज्जा-अवगुंठन में जितनी सौंदर्यमयी प्रतीत होती है, लज्जा को अज्ञान-अवस्था में उखाड़ फेंकने पर रूप घिनौना हो जाता है, सौंदर्य विधवा-वेदना-सी कमनीयता छोड़, निर्लज्ज और बाजारू हो जाता है! लज्जा छोड़ते समय नारी को बड़ी ही पैनी मनः—वेदना होती है।

नारी का अहिंसा-रूप उसका व्याप्त सौंदर्य है। हिंसा हमारा निर्लज्ज-आक्रोश है। वासना की अवस्था भी बड़ी दयनीय होती है। नारी की निर्लज्ज-कमजोरी से लाभ उठा पुरूष की भूख तड़प भले ही छोड़ देती है, पर भूख के साथ-साथ प्यास भो है, जो बढ़ती ही रहती है।

माधवी अचेत ही रही! राज भावनाओं से रार मचाता रहा। रात बीत गई और ऊषा की लालिमा सकुचाती हुई आ पहुंची! शनागार की खिड़की को राज खोल कर प्रकृति की चित्रकारी देखने लगा। कुछ क्षण के बाद, राज ने मुख-चन्द्र को देखा। मलिन-चांद निष्प्रभ ज्ञात हुआ। एकबार माधवी को झकझोरा! जाग जा, माधवी! ऊषा लज्जा की लालिमा में सकुच-सकुच सकुचा रही है! कहीं तू चल बसी, तो दुनियां

यही कहेगी कि योगी के लोभ ने तेरी अमानुषिक हत्या कर डाली ! मुझे तेरे धन की कोई आवश्यकता नहीं। मैं तो तेरी करुण-सुन्दरता का उपासक हूँ ! नहीं जागती ! क्या तू पुरूष का निर्दय-स्पर्श चाहती है, सोच तो सही, मैं योगी हूं। क्या तू चाहती है पुरूष की साधना नारी के निर्लज्ज अंग-सौंदर्य में मानवता को निर्लज्ज कर दे। संसार अपने को सभ्य कहता है। क्या पुरूषों की सभ्यता अधिकाधिक नारी के निर्लज्ज-प्यार में, 'प्रेम' शब्द के विकल्प अर्थ में, नारी-रूप को घिनौना वना छोड़ दे। कोई भारतीय-पुरूष इस निर्लज-कार्य के लिए तैयार नही हो सकता, पत्नी-स्वरुप तो दूसरी समस्या है। भले ही विदेशी, इंगलैंड, अमेरिकावाले नारी को निर्लज्ज-घिनौने-रूप में कुदकती चिड़िया-सी देखें, किन्तु, उनकी सभ्यता नहीं, ढोंग और पापाचार भले ही है।

भारत ने नारी की उपासना की है। सीता, सावित्री, सरस्वती, अनुसूइया आदि के दृष्टांत हमारे सामने हैं। यदि, मैं, तुम्हारी अचेतन-अवस्था में काम-लोलुपता को प्रशय दे दूं, तो मैं भारती-आत्मा नहीं। देख ! सुन ! मैं भगवान की प्रार्थना कर रहा हूँ। आत्मा की अगोचर मोह-अवस्था में अहिंसा की अनशन-समाधि में भारतीय-संस्कार भटक नहीं सकता। तुम्हारा कोमलगात कहीं इन्द्रियों की सगुण-अवस्था तो नहीं ?

और, राज, पलथी मार शयनागार की धरातल पर वैठ गया !

वचा ले, ओ निर्गुण, सगुण-आत्मा की गोचर-अगोचर पर-

अहम-भगवान ! माधवी बच गई, तो मेरी योग-साधना सफल हुई।

और भारतीय-संस्कार से, दार्शनिकता की उत्कट-परिभाषा ले, राज अपनी समाधि में लीन हो गया। मुख पर शांत-सौम्य आत्म-जन्य अनुभूतियां प्रतिम हो उठीं। बचा ले—भगवान !

तू तो—

"अखंड-तापमान-प्रवुद्ध-चक्षु हे,
ॐ काम, दाम, दंड, भेद, ॐ, ॐ ॐ।
अणु-अणु, परमाणु-व्याप्त,
अहिंसा, सत्य, अनशन ज्ञान,
तिमिर मोह, विकल प्राण; शांति के प्रमाण हे।
मृदुल-गात, क्यों न मान, अनंत के प्रकाश हे।
सौन्दर्य के अनन्त भाष्य,
निखिल-अखिल सज्ञान प्राप्त,
विराट, सौम्य, सम्बुद्ध सर्व-शक्ति-मान हे।
अजेय, अनादि, आत्मा के पूंज-पूंज प्रकाश हे।
कौन नाद, कौन गान,
कौन विमल-प्रदीप हे।
भटक रहा आकुल-प्राण, तिमिर-पाप, शांति हे।
तिमिर-तिमिर जा रहा, रोक ले भगवान हे।
मां के सनेह-स्वरूप,
वाणी के नाद अखंड,

मैं, तू, तुम की परिभाषा छोड़, संस्कार-प्रमाण हे ।
अहम्-तम को त्याग आज, भ्रातृ-भाव चक्षु हे ।
साकार-अखंड-मूर्त्ति-भाव,
दर्शन, ज्ञान, बुद्धि, मान,
निर्गुण के सगुण-राम, सगुण के विमल-मनोज हे ।
श्रद्धा, कृपा, अकथ-प्रमोद, मनुज के प्रमाण हे ।
कौन नाम, फिर, क्यों अनाम ?
सृष्टि के अभिराम राम !
नाम, राम, या 'गीता'-नाम, व्यक्ति के प्रमाण हे ।
व्याधि, रोग, मृत्यु, शोक, समष्टि के प्रमाण हे ।
जरा, व्यथा-तरुण-प्रमोद,
तरुणी की विकट हंसी,
फंस गया है वीर आज,
इच्छा-सैन्य है खड़ी,
रोक लो हे सगुण-राम, अनंत, अंत के प्रमाण हे ।
अहम्-तम् को त्याग आज, भ्रातृ-भाव-चक्षु हे ।

राज, भगवान की इस मार्मिक प्रार्थना में इतना लीन हो गया, कि तन्मयता; आत्मा की मनोहारिता में मूर्त्तिवत् खड़ी हो गई।

पहुँच गया प्रभात ! प्रियवासकी और सुलेखा योगी के प्रभात-संगीत सुन गद्गद् हो गईं, निर्मल अवाक् रह गया। पर, राज की स्वर-साधना बार-बार उत्तरोत्तर बढ़ती ही

गई। प्रभाती प्रार्थना की गति बढ़ती ही गई। संगीत-मृदुल-लय में भावना एवं भाव दोनों निखर उठते हैं। प्रार्थना करते-करते राज का ध्यान टूटा, कि न टूटा। उसे विश्वास हो गया कि माधवी की बेहोशी अवश्य दूर हो जायेगी।

कभी-कभी आत्मा का कथन सत्य हो जाता है, जबकि भावना नहीं रहती, स्वच्छ एवं पवित्र-भाव जाग उठते हैं।

प्रार्थना को समाप्त कर राज बड़ी बेचैनी से माधवी के मुख-मंडल को देखने लगा। उसके माथे को धीरे-धीरे सहलाया। किन्तु, बेहोशी, बेहोशी ही रही। राज की व्यग्रता बढ़ती गई। और, अचेत-माधवी के दोनों हाथों को पकड़ झकझोर दिया।

फिर क्या था, राज खिल उठा! उनींदी माधवी आंख मलती-मलती उठ गई! राज को सामने देख वह बोल उठी:—

"क्या मैं स्वप्न देख रही हूँ?"

"हाँ, सपने तो देख रही थी!"

"अरी ओ सुलेखा, प्रियवासकी, इधर तो आओ" माधवी ने पुकार कर कहा!

सुलेखा और प्रियवासकी तांक-झांक तो रही ही थी, पुकार पाते ही शयनागार में पहुँच गई। राज वहां से हटकर अपने कमरे में चला आया।

"निर्मल! अरे ओ निर्मल! कमंडलु में जल तो भर लाओ। हाँ, पता तो लगाना कि रामू अच्छा हुआ या नहीं!"

"गुरुदेव! आपके मुंह से ईश-प्रार्थना सुनकर मेरे हृदय में भी भक्ति जोर मार रही है!"

"निर्मल ! भक्ति के पहले तुम्हें दुनियां देखनी है। भक्ति तो इतनी सस्ती नहीं, जो पलभर में तुम्हें हो जाये। समय के साथ-साथ तुम्हें एक न एक दिन भक्ति-रस अवश्य प्राप्त होगा। जाओ कमंडलु में जल भर लाओ।"

इधर, सुलेखा माधवी से पूछने लगी:—"कभी ऐसी बेहोशी तो नहीं हुई थी। न जाने, किस कारण से हुई।" बेहोशी नहीं होती, तो राज जी को रातभर बेचैनी नहीं होती। रातभर जागते रहे। पानी के छींटे दिए !

जिस समय कंधे पर उठा शयनागार को ले आए, ऐसा मालूम पड़ता कि शिव-शंकर सती को लिए तांडव मचा देंगे ! आपके स्वास्थ्य-लाभ के लिए भगवान से गा-गा लम्बी प्रार्थना की। मैं तो उनके ये शब्द:—

"अखंड-तापमान-प्रवुद्ध-चक्षु हे,
ॐ काम, दाम, दंड, भेद ॐ ॐ ॐ।
अणु-अणु परमाणु व्याप्त,
अहिंसा, सत्य, अवशान, ज्ञान,
तिमिर मोह, विकल प्राण, शांति के प्रमाण हे।
मृदुल-गात, क्यों न मान, अनंत के प्रकाश हे।

गा कर सुनाती हूं, और, तो याद नहीं।" प्रियवासकी ने पद को गा कर कहा।

सुलेखा झट बोली:—"और तब, आप बेहोशी छोड़ उठ बैठी। मैं भी अधूरा-पद गा कर सुनाती हूँ !

"मां के स्नेह स्वरूप,
वाणी के नाद अखंड,
मैं तू-तुम की परिभाषा छोड़, संस्कार प्रमाण हे।
अहम्-तम को त्याग आज, भ्रातृ-भाव- चक्षु हे।

गा-गाकर बड़े प्रेम से राज जी भगवान की प्रार्थना घंटों करते रहे! ऐसा मालूम था कि पति पत्नी के प्यार से व्याकुल हो उठा हो!"

और, प्रियवासकी फिर बोल उठी:—"अरी सुलेखा मुझे तो यह पद—यकायक—" "कौन सा?" माधवी ने झट पूछा।

"साकार-अखंड-मूर्त्ति-भाव,
दर्शन, ज्ञान, बुद्धि, मान,
निर्गुण के सगुण-राम, सगुण के विमल मनोज हे।
श्रद्धा, कृपा, अकथ-प्रमोद, मनुज के प्रमाण हे।"

और,

कौन नाम, फिर; क्यों अनाम?
सृष्टि के अभिराम राम।
नाम, राम; या 'गीता' नाम, व्यक्ति के प्रणाम हे।
व्याधि, रोग, मृत्यु, शोक, समष्टि के प्रमाण हे।

जहां, व्यथा, तरुण-प्रमोद,
तरुणी की विकट हंसी,
फंस गया है वीर आज,
इच्छा सैन्य है खड़ी,
रोक लो हे सगुण-राम, अनंत, अंत के प्रमाण हे।
अहम्-तम को त्याग आज, भ्रातृ-भाव-चक्षु हे।

प्रियवासकी के कल-कंठ से जब यह ध्वनि राज के कानों में पहुँची, तो वह दौड़ता हुआ शयनागार को आया !

सुलेखा माधवी का शृंगार कर रही थी। केश-कुंतल पर कंघियां मारी जा रही थीं ! यह देख, राज ने आंखें मींच लीं। भागना ही चाहता था कि माधवी ने पुकार कर कहा:—"यह कैसी चित चोरी है— प्रभु ?"

शयनागार के द्वार पर खड़े ही खड़े राज ने उत्तर दिया:— "चितचोरी नहीं, किस भ्रम में भटक रही हो ?"

"तो, मुझे मरने ही क्यों नहीं दिए ? क्यों रातभर जाग-जाग कर मेरे लिए भगवान की प्रार्थना की ? किसने कहा था ? क्या मैंने ? लज्जा की विपरीत-अवस्था को पुरुष को देखने का क्या अधिकार ? मैं विधवा नहीं, जो कोई निर्दय-दृष्टि से देखे ! मैं सधवा हूं, मेरा पति, जब मैं आठ या दस वर्ष की अवस्था की थी, मुझे छोड़ चला गया। आजतक नहीं लौटा। नारी की पट-क्षीण-अवस्था केवल पति ही देख सकता है। ज्ञानी होकर आप-की बुद्धि कहां चली गई थी कि जो रातभर मेरी अचेतन-दशा देखते रहे ? चुप क्यों हैं ? उत्तर क्यों नहीं देते ? मैं कोई वेश्या-पुत्री........नहीं, नहीं, जो आपने समझकर रूप की अवहेलना की।

राज ने झट उत्तर दिया:—"परमार्थ का कोई उत्तर नहीं होता—देवी ! न तो कोई कहता है, फिर भी कोई करता है। पर-मार्थ का दूसरा नाम है—सहृदयता ! सहृदयता का भाव लक्ष्मण जी से पूछो, कि क्यों वे श्रीराम के साथ वन गए थे ?

परमार्थ का तीसरा नाम है—सनेह ! माता पुत्र का लालन-पालन अपने स्वार्थ-वश नहीं करती !

परमार्थ का चौथा नाम है—समवेदना ! कालिदास से पूछो, मेघदूत की कल्पना कर यक्ष और यक्षिणी के प्रति कौन-सी समवेदना दिखलाई !

परमार्थ का पाँचवां नाम है—साधुता ! और, साधुता कलुष स्वार्थ-भाव से कभी भी कार्य-साधना के लिए उन्मुख नहीं होता। मैंने तुम्हारी सेवा, सेवा के लिए की है ! नग्न-सौंदर्य कामुक देख सकता है, साधुता केवल अनुभव की संज्ञा तो नहीं ? तुमने मेरा आतिथ्य-सत्कार किया, यदि मैंने सहानुभूति दिखलाई, तो क्या बुरा किया।

पुरूष पर सन्देह करने के पहले अपने रूप को देख लो। अम्लान है या म्लान ? नारी पुरूष की बड़ी शक्ति है, और शक्तियों का संघर्ष ही तो विराट्-सृष्टि है। क्या मेरे इस कथन पर विश्वास नहीं, जो प्रियवासकी अभी-अभी गा रही थी—

जरा, व्यथा-तरुण-प्रमोद, तरुणी की विकट हंसी,
फंस गया है वीर आज, इच्छा सैन्य है, खड़ी।

तो इतना तो समझ ले—

"अहम्-तम त्याग आज, भ्रातृ-भाव-चक्षु हे।"

राज इतना कह कर चुप हो गया। यकायक बोल उठा:—

"क्या नाम था—आप के पिता का ?"

"मैं तो जानना चाहती हूँ—क्या नाम है मेरे पति का !" माधवी ने उत्तर दिया।

"आप का अर्थ साफ नहीं।"

"क्या कीजिएगा, मेरे पति का नाम जानकर—"पुरुष बड़े निर्दय होते हैं—योगीराज।

"भूल करती है—देवी! स्वभावत: कोई निर्दय नहीं होता, परिस्थितियां बना देती हैं।"

"पर, परिस्थितियों से लाचार होना, कायरता है-योगीराज।

"कायरता नहीं, वरन् विश्वास की अवहेलना अवश्य है—देवी! प्रतिज्ञा–विश्वास से विमुख होकर श्रीकृष्ण को रणांगण में उतरना पड़ा था।

"पर, भगवान की और बात है?"

"जबतक विश्वास है।—राज ने कहा।"

उसी तरह मुझे अपने पति पर विश्वास है, वह एक न एक दिन मुझसे अवश्य मिलेगा।"

"हो सकता है मन चाहे रूप में न मिले!"

"यह तो भाग्य की बात है।"

"पर, भविष्य तो सुन्दर नहीं दीखता?"

"भविष्य, भविष्य के आधार पर ही सुन्दर मालूम पड़ता है। एकांत भविष्य तो मृत्यु है।"

"पर, आप मुझसे खिंचे-दूर क्यों रहते हैं?"

"इसलिए कि प्रेम की सज्ञान-अवस्था से परे हैं। दूर के ही भाव अच्छे लगते हैं। निकट तो निर्लज्ज-भावना ही अट्टहास करती रहती है, जबकि नामधारी प्रेम व्याकुल हो उठता है। नारी

तो विकल-शक्ति-अनुराग है देवी ! जिस रूप-राशि पर नारी अभिमान करती है, स्पर्श के बाद वह राशि किन-किन सौंदर्य में ओझल या समा जाती है—देवी ?

"नारी के समष्टि-सौंदर्य में—योगीराज !" तो मैं उसी सुन्दरता को—व्यक्ति के प्रणाम हे। देवी ! मेरा भी विवाह हुआ था, किंतु, परिस्थिति-चक्र से मुझे अहम् से दूर भगा दिया ! आज मैं योगी हूँ, दुनियां मुझे श्रद्धा की दृष्टि से देखती रहेगी।"

"आपका विवाह कहां हुआ था ?"

"याद पड़ता है, विलासपुर में।"

"पत्नी का नाम ?"

"भूल चुका हूँ—मैं।"

"माता-पिता का नाम ?"

"यह प्रश्न न पूछो—माधवी ! न पूछो। कभी-कभी कोई सत्य भी इतना कठोर होता है कि अहम्-भाव से ऊपर प्राणी नहीं उठ सकता। परमहंस बनना बड़ा दुस्तर है—देवी ! इस कथा को न दुहराना—माधवी ! मुझ पर दया करो, मैं तेरे पांव पड़ता हूं। पाप-कथा को कहने से आत्मा दुर्बल ही जाती है। भूत को वर्त्तमान की दृष्टि से देखना, मैं पाप समझता हूं। भविष्य तो अन्ततः वर्त्तमान ही रहता है—देवी !"

"बड़ी विचित्र बात है—आप मां-पिता का नाम भी नहीं बताना चाहते ?"

"वेतु की बात, विचित्र ही होती है—देवी !"

"आप पूछें, तो मैं अपने माता-पिता का नाम सहर्ष बता दूं !"

"इन बातों से मेरा कोई प्रयोजन नहीं।"

राज ने कुछ सोचा और पूछ बैठा—हाँ, मैं जानना चाहता हूँ कि आपके माता-पिता का नाम ?"

"अवसर पर बता दूंगी। हाँ, सम्पत्ति पाकर भी मैं प्रसन्न नहीं !"

"प्राणी वर्त्तमान से बराबर असंतोष ही प्रगट करता है—देवी ! क्योंकि इस त्याग की साधना अभी मुझमें नहीं आई है।

"कौनसी त्याग-साधना—प्रभु ?" माधवी ने पूछा।

"अहम्-तम को त्याग आज, भ्रातृ-भाव-चक्षु हे।"

"तो, आप मेरे रूप से भागते क्यों हैं ?" क्योंकि स्पर्श के बाद रूप निरीह हो जाता है। नारी का रूप तो पूर्णमासी का चांद, जो बाद घटते-घटते अंधकार में ओझल हो जाता है। राहू के स्पर्श से सूरज और चांद भी क्षीन हो जाते हैं।"

"स्पर्श की भावना प्रेम में आपकी बड़ी अनूठी है—जोगीराज ?"

"प्रेम कामुक-लोलुपता नहीं—देवी !" "तो पति-पत्नी का प्यार क्या पाप है—योगीराज ?" मानस में भावना का स्पर्श अवश्य पाप है—देवी ! किन्तु, वैदिक-संस्कार से हिंसा की भावना नई रचना में प्रवृत्त हो जाती है। अतः रचना का कर्म पाप नहीं ! किंतु, मैं योगी हूँ। पति की भावना तुम्हारी मूर्खता है।"

"मैं विश्रांति चाहती हूँ—योगी राज ! मूर्खता छोड़कर किसी को विश्राम नहीं—देवी !"

इतने में निर्मल हंसता हुआ पहुँचा। गुरूदेव ! रामू अच्छा हो गया है। आपसे मिलने की उसे बड़ी उत्कंठा है। हाँ, सुना है—शहर में राजाजी आने वाले हैं। जीवनधनजी की ओर से स्वागत के लिए सजावट हो रही है।

"कौन राजाजी ?"

उसका नाम लेना भी पाप है। अचानक मुझे याद हो आई। क्षमा करें—गुरुदेव।"

"व्यक्ति की गति-विधि ज्ञात करना पाप नहीं—निर्मल ! प्रत्येक मनुष्य का यह धर्म होना चाहिए कि पापियों को दंड दे—कविता, संगीत, साधना, चित्रकारी में लीन हो जाये।" "उसके नाम से गृह की युवतियां, स्त्रियां, और समाज के प्राणी घृणा करते हैं।"

"क्यों—निर्मल ?"

भानुमति नाम की एक वेश्या को, जो पेशा छोड़ पवित्र भाव से उसकी पूजा करती थी, जहर दे मार दिया ! हाँ, वह बड़ी चतुर थी—राजाजी के दिए धन से भानुमति-मंदिर की स्थापना कर अपने पुत्र के नाम धरोहर रख चल बसी। मिर्जा अशरफ़ राज-फाटक की देख-रेख करते हैं।

"तो उसका पुत्र मर गया क्या ?" नहीं किशोर-अवस्था में ही घर से भाग गया। पता नहीं चला की जीवित है या मृत्यु हो गई। खैर, इन बातों को जाने दीजिए। कमंडलु में जल लाकर रख दिया है। अब मुझे विदाई दिजिए गुरूदेव। दुनियां

की भाग्य के सहारे देखना चाहता हूँ। यहाँ के ऐश्वर्य से मेरी जिंदगी नहीं गुजर सकती। भैया ने जीवनधनजी के यहाँ नौकरी स्वीकार कर ली है।"

उचित कहते हो—निर्मल ! जाओ, जीवन के संघर्ष में आगे बढ़ो। पर, पापियों को दंड देना तुम्हारा परम-कर्त्तव्य होना चाहिए। विधि-वाम नहीं, तो परिस्थितियों का साथ दो। ईश्वर पर विश्वास रखना। निर्मल चलता बना, राज की आंखों में आंसू थे। प्रियवासकी व्यग्र थी। विदाई का समय कितना दयनीय और करूण होता है, आज ही जान पड़ा।

दूसरा—परिच्छेद

—:❀:—

अमरकंटक राजाजी के राज्य के अन्तर्गत पड़ता था। राजाजी की अवस्था पचास साल की हो चुकी थी। पुत्र-प्राप्ति के लिए ललायित हो रहे थे। महारानी के मरे पांच साल व्यतीत हो चुके थे। राज्याभिषेक के छः वर्ष बाद उन्होंने एक वाटिका 'राज-वाटिका' के नाम से बनवाई थी। सन्धया का समय था। राज-वाटिका में टहलते-टहलते उन्हें अतीत की सारी बातें याद हो रही थीं। ओह, मैं कितना मूर्ख था। प्रेम की अनुगामिनी

भानुमति की हत्या कर डाली। दोनों के प्रेम-स्वरूप राज-पुत्र को भी देखरेख नहीं कर सका। कहाँ होगा—मेरा राज। भानुमति के अतिरिक्त कितनी नारियों की अस्मत लूटी। पर, हाय; काम-लोलुपता बढ़ती ही गई। प्रजा में असंतोष है। लोग मेरे नाम पर थूकते हैं। थूक ले, जितना जो चाहे। अमरकंटक से खबरें आती हैं कि एक योगी कहीं आ भटका है। उसके आशीर्वाद से रामू नाम का एक दूकानदार मरते-मरते जी उठा। विलास-गृह की स्वामिनी माधवी की बेहोशी भी दूर हो गई।

वह घूम-घूम कर धर्म-प्रचार करता है। अनाथालय, विधवाश्रम, और जनता को स्वाधीनता का पाठ पढ़ाता है। सुना है, एक विद्यालय उसने खोल रखी है। बच्चे, बूढ़े, गंवारू-स्त्रियों को शिक्षा निःशुल्क दी जाती है। रामू के धन और माधवी के दान से जनता की सेवा में लीन रहता है। क्या इतना बड़ा कर्मठ-योगी मेरी पुत्र कामना को प्रत्यक्ष नहीं कर सकता? मैं उसे राज पुरोहित का सम्मान दूंगा। आरजू मिन्नत करूँगा। योगी औघड़-दानी होते हैं। इस विचार के एक मास के बाद राजाजी अमरकंटक पधारे! जीवनधन के घर घेरा डाल दिया।

माधवी-महाविद्यालय का मासिक-अधिवेशन उसी दिन हो रहा था। जनता-जनार्दन की अपार भीड़ थी।

राज एक ऊँचे मंच पर खड़ा हो भाषण दे रहा था। भाषण का आरंभ इन पदों के गान के साथ-साथ हुआ।

"अखंड तापमान प्रबुद्ध चक्षु हे।
ऊँ काम, दाम, दंड, भेद, ऊँ, ऊँ ऊँ

अणु अणु परमाणु व्याप्त,
अहिंसा, सत्य, अनशन ज्ञान,
तिमिर-मोह—विकल प्राण, शांति के प्रमाण हे।
मृदुल गात, क्यों न मान, अनंत के प्रकाश हे।"

भगवान तो व्याप्त है—हर कोने कोने में। हिंसा की उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति नहीं। न्याय-पक्ष के लिए, सत्य के विजेता अनशन-साधना में सकल प्राणी का कल्याण करता रहता है। उस पुंजीभूत ज्योति के समक्ष बड़े बड़े महात्माओं की दृष्टियां भी नहीं ठहर सकती। मोह, माया, मत्सर में भटकता हुआ व्याकुल प्राणी शांति प्राप्ति के लिए उन्मुख कभी न कभी अवश्य हो जाता है। ईश्वर का शांत एवं सौम्य रूप आत्मा की तुष्टि करने में समर्थ होता है।

आज जनता जनार्दन की अपार भीड़ देख, मुझे बड़ा हर्ष हो रहा है। यह महा-विद्यालय का उद्देश्य, मेरे शब्दों में—

"अहम्-भाव त्याग आज, भ्रातृ भाव-चक्षु हे।

भाईचारे का सार्वजनिक व्यवहार न तो कभी राष्ट्र और परराष्ट्र विप्लव की ओर प्रेरित कर सकता है, और न साम्प्रदायिकता की पृष्ठभूमि से सकल-लोक-कल्याण सुलभ हो सकता है। अन्याय के अवरोध के लिए, अहिंसा, सत्य-भावना, और उत्कठ अनशन-साधना की अतीव आवश्यकता है। जनता की सुविधा के लिए, और स्वाधीनता-संग्राम में सफलीभूत होने के लिए विशेषकर नारियों को शिक्षिता होनी चाहिए। अपढ़ मनुष्य स्वत्व

समझने में भारी गलती करता है। अतः आपलोग इस विद्यालय कार्य पद्धति में सहयोग दें। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है कि भानुमति मंदिर के पापी महंथ रामदास के हाथ से मन्दिर की व्यवस्था जनता के हाथ आजतक नहीं पड़ी है। मन्दिर में जिन जिन लोगों की सम्पत्ति पड़ी हुई है। उसके मूलधन तो नहीं, वरन् अधिकांश धन से जनता की आधी से अधिक निरक्षरता दूर हो जायेगी। ऐसा ही मेरा विश्वास है।

धर्म के विषय में मुझे इतना ही कहना है कि प्रत्येक मनुष्य को निजी-धर्म-सिद्धांत नितांत आवश्यक है।

याद रहे। प्रत्यंतन करने पर भी हमारी बहनें अधिकांशतः रईसों, धनिकों, की अकर्मण्यता, और विलासिता के कारण वेश्याएं हो रही है। जबतक आर्थिक संकट, आर्थिक-साम्य-वितरण के अधार पर विद्वरित न हो, तबतक वेश्या-मंडियां आबाद रहेंगी। माधवी-विधवाश्रम में जाति-पांती का भेद-भाव नहीं। पुरुषों के संसर्ग से ये विधवाएं दूर रखी जांयेगी।"

जनता की तालियां गड़गड़ा उठीं। राज ने पुकार कर कहा:—केवल, तालियों से काम चलने को नहीं।

सहसा राज ने देखा कि एक हाथी पर माधवी, जीवनधन और राजसी वेष-भूषा में एक अर्द्ध-वृद्ध विद्यालय के फाटक पर पहुंच गए! न जाने क्यों राज के मुख से संगीता-लय में यह पद निकल पड़ा। अहम्-तम त्याग आज, भ्राति-भाव-चक्षु हे। जरा, व्याधि—तरुण-प्रमोद, तरुणी की विकट हंसी।

फंस गया है वीर आज,
इच्छा सैन्य है खड़ी।
रोक ले हे सगुण-राम,
अनंत, अंत के प्रमाण हे।"

अपने राजा को देखकर जन्ता स्वागत की ओर न बढ़ी, तो राज को बड़ा दुःख हुआ। वह चिल्लाकर बोल उठा—बड़ों के सत्कार से छोटे का संस्कार कदापि नहीं घटता। शीघ्र ही जनता राजाजी की जयजयकार करने लगी।

"रोक दो! ये जयजयकार। पापी जीवनधन भी खड़ा है। वेश्यागामी पुरुषों से समाज में लोगों का नैतिक-पतन हो जाता है।"

रुक गई—जयजयकार। जीवनधन इस अपमान से प्रतिशोध के लिए मन ही मन तड़प उठे। पर, राजाजी को योगी के इस व्यवहार से बड़ी शांति मिली।

मंच के पास पहुँच कर राजाजी ने योगी को नमस्कार किए। चरणों को पहुँचते हुए राजाजी के हाथों को पकड़ योगी बोल उठा—यह अन्याय है—राजाजी! उम्र में आप मेरे पिता-तुल्य हैं। मैं आपको प्रणाम करता हूँ।"

अधिवेशन समाप्त हुआ और योगी को साथ लिए राजाजी माधवी के साथ-साथ विलासगृह को पहुँचे। जीवनधन अपने घर को चले गए। अपमान की भीषण-ज्वाला में झुलस-झुलस प्रतिशोध की उग्र-कामना से तृषित हो उठे।

घर आते ही गोविन्द ने उन्हें लम्बी सलाम दाग दी।

"हुजूर! आप आज बड़े उदास दीख पड़ते हैं?"

"हाँ, योगी ने माधवी-विद्यालय के अधिवेशन में मेरा भीषण अपमान किया।"

"क्यों?"

"कारण मैं नहीं जानता।"

"तो विना कारण के कार्य नहीं हो सकता। हाँ, राजाजी आपके साथ नहीं आए?"

वे विलास-गृह की ओर गए हैं। हाँ, तुम्हारा भाई निर्मल आज-कल आवारा, शराबी, और लफंगा हो गया। सुना है, गुंडों, बदमाशों का दल बनाकर इधर-उधर लूटमार करता है। जेब कतरने में बड़ा होशियार हो गया है।

"मुझे उसकी हरकतों से कोई मतलब नहीं। जब मेरा ही न हुआ, बहन और मां का नहीं हुआ, तो दुनियां में उसका अपना कौन हो सकता है?"

"ठीक कहते हो—गोविन्द! मेरी औरत माधुरी भी बड़ी बदचलन थी। आखिर, घर से भाग ही निकली। हाँ, तुम्हें पांच सौ रुपए इस महीने से मिला करेंगे! तुम्हारी बहनों को किसी बात की तकलीफ तो नहीं?"

"भला, आपने रहने के लिए इतना बड़ा महल दिया, तो तकलीफ किस बात की। मजे में रहता हूँ। रईसों की बदौलत ही तो दुनियां चल रही है, वर्ना कभी की डूब गई होती।

हुजूर, आप दूसरी शादी क्यों नहीं कर लेते ? घर सूना पड़ा मनहूस सा लगता है।" तुम तो मजाक करते हो। जनाब मैं छः छः शादियां कर चुका हूँ, पर सभी शमा फना हो गई। माधवी भी मुझसे विवाह करने को राजी नहीं। अब तो राजाजी की बारी आई है। देखें, माधवी राजी होती है या नहीं ?

राजाजी से राजी न हो तो, यह उसका दुर्भाग्य है।"

"नहीं, वह बड़ी हठीली है। बाप के धन पर इतरा रही है। उसका बाप पहले-दर्जे का आवारा और वेश्या गामी था। सुना है, एक वेश्या ने उसको बहुत धन दे दिया है। विलास-गृह उसी वेश्या के धन का प्रताप है।"

हाँ, योगी से बदला लेने के लिए, एक उपाय है। मन्दिर बनाने का आयोजन कीजिए। आपके पीछे-पीछे गुलाम की तरह घुमा करेगा। नवजवान होकर गेरुआ धारण किए हैं। रामू को भाग्य में मरना नहीं लिखा था तो कैसे मरता ? शहर में योगी की बड़ी प्रशंसा फिर भी क्यों हो रही है।" चांदी के जूते का जब लुत्फ मिल जाता है, तो इंसान शराफत भूल, ईमान छोड़, इतना गुलाम हो जाता है कि आत्म-सम्मान की भावना निरीह हो जाती है।

गोविन्द को मनमानी आमदनी होने लगी। दो घोड़े की एक गाड़ी जीवनधन की ओर से सैर-सपाटे के लिए मिली। जेब गर्म तो सस्ते दोस्त सहज ही में मिल जाते हैं।

मुस्ताकअली, प्रियशंकर और सियाराम, गोविन्द के दोस्तों में खास स्थान रखने लगे।

शराब मत पूछिए, मुफ्त माल, काजी को भी हलाल—दौर चलने लगे। रंगीनी सुझी, कि ये लोग पहुँच गए—विष्णुप्रिया के कोठे पर—क्या नाच, क्या गान, इश्कबाजों को सभी अनूठे ही मालूम पड़ते हैं।

रात्रि के घोर अन्धकार में गोविन्द चुगचाप विष्णुप्रिया के घर पहुँचा। मुस्ताकअली, सियाराम, और प्रिशंकर गोबिन्द की टोह में पहले से ही लगे हुए थे।

आज ५००) रुपए पर विष्णुप्रिया की अस्मत लूटी जाने वाली थी। गजलों से सुशोभित गोबिन्द अपनी सफलता की जिज्ञासा और भाग्य की करवटों से अज़हद खुश हो रहा था।

माशूकाने-शमशाद की तिरछी निगाहों में बिष्णुप्रिया की अदाएं ऐसी लहर मार रही थीं कि गोविन्द बाग़-बाग़ हो रहा था। बाजारू इश्क़ तो वह हसरत है, जो हर-पहलू गर्भ करती है। इसके हशरत उल्-अर्ज घिनौने होने पर भी हशमत ही मालूम होती है। इश्क की हवस नहीं छूटती। जायके बदलते रहते हैं। फालतू समय ज़ाया करने के लिए हिजरे-नसीब की टोलियां चकले के इर्द-गिर्द चक्कर काटे करते हैं। हाशा-लिल्लाह, भलों को यह मर्ज़ न दे। बाजारू इश्क़ मौला हाज़िर—जवाब में पटु होता है। वेश्याओं के हम-बिस्तर—राम! राम!! गोविन्द दिल-बस्तगी के लिए लिए विष्णुप्रिया के पास पहुँचा था। बाजेब रूनझुन हो उठी! दिल़-कुशा दिलकश विष्णुप्रिया नाचने लगी। पर, नृत्य, में जिंदादिली न थी। सिर्फ पेशे का तकाज़ा था।

पुरुषों की निर्दय वेशर्म आखों के बीच-बीच पछाड़ खाती हुई, विष्णुप्रिया, दिल-खोज गाने से आए पुरूषों की दिल-दिही करने में न तो कोई फख्र हासिल कर रही थी, औरों की तरह झूठी अदाओं और बेपर्द इशारों से, न तो, किस दिल-दादे की खोज ही करती।

नारी जब एकबार लज्जा देती है तो अस्मत एक बाजारू शै हो जाती है, और नाज, नखरे, दिलकश-अदाएं ऐसी तस्वीर हो जाती हैं कि देखने वाले दिल-थाम कर ही रह जाते। सस्ती भावनाएं जोर मारने लगती हैं।

रात्रि के अन्धकार में पावस की जो छटा काली-काली होती है, उससे भी बढ़कर डरावनी ये बाजारू औरते होती हैं, नेशेगम और शिकार किए नहीं छोड़तीं। इन नाजनियों की दिल-आजार अदाओं पर कितने निर्लज्ज हो, पुरुष नाम पर कलंक लगा देते हैं, कुत्तों की तरह फटकार पा कर भी ये इश्क़बाज घर नहीं लौटते।

ईसान की नंगी शराफत, भूखा ईमान, चकलों के इर्द-गिर्द चक्कर काटे करते, पर; कोई नहीं पूछता इन नाजनियों के फ़ानूसे-खयाल क्या हैं। हम फ़र्राश, जो इश्कबाज, इन नाजनियों को कुत्ते की तरह दुम हिलाते फ़र्शी सलाम बड़ी घिनौनी बेपर्दगी से करते। पर इन नाज़नियों की फ़लाकत फ़लक-सैर देखते ही बनती है।

फ़र्राशी साड़ियों के बीच इतमीनान से देख लीजिए उभरे या भराए हुए उरोज–दिल फ़रेफ़्ता तो क्या रंजोगम? इन लाफ़जनी

की लाफ-गुज़ाफों पर कितने अजरुए-ईमान छोड़, खानदानी इज्जत को पाकिट में डाल, शैतन-शैदाई पर शैदा हो गए। इमारतें इमारतें खंडहर हुई और माशूकाने-शमशाद की जिन्दगी एक मिज़ह भी नहीं रही। लानत है ऐसे फ़िस्क-व फ़ुजूर पर—

शराब का दौर खत्म हुआ, और तमाशाई मुस्ताक़ अली, सियाराम, और प्रियशंकर, गोविन्द को छोड़ अपने-अपने घर चले गए।

रह गया—गोविन्द ! ऊफ; हाय री तमन्ना ? टके-टके पर जवानी खरीदी गई।

पाप की कहानी तो वह कहानी है, जो सुनने में तो अच्छी लगती है, लोग दिलचस्पी भी लेते हैं, फिर भी पाप के भयंकर परिणाम से कामुक-पुरुष भयभीत नहीं होता।

रात के अंधेरे में उधर गोविन्द अपनी कामुकता का परिचय दे रहा था, इधर उसी रात को अंधेरे में जीवनधन गोविन्द की बहनें तारा और गौरी के कमरे में पहुँचा।

युवतियां निद्रा में विभोर थी। गोविन्द की मां दूसरे कमरे में खर्राटे ले रही थी। क्या मालूम कौन नर पिशाच बेटियों की अस्मत लूटने आयेगा।

गौरी और तारा के मुंह पर पट्टियां कस कर बांध दी गई।

जीवनधन का स्पर्श पा दोनों बहनें ताकत लगा चीखीं, गिड़-गिड़ाई, पर पट्टियां जो बंधी थीं, आवाज़ कमरे के बाहर नहीं निकल सकीं।

हाय हन्त ! एक के बाद दूसरी का कौमार्य तोड़ा गया। अस्मत हाय पीटती रही, और जीवनधन की काम-पिपासा तनिक शांत हुई। भर्राई हुई आवाज में बोले:—"देखो, हर्गिज हल्ला-गुल्ला न करना, वर्ना भाई की नौकरी खत्म हो जायगी। और सड़कों की धूल छानोगी !"

पट्टी खोल दी गई। पिपासा की तनिक शांति के बाद जीवन-धनजी अपने कमरे में आ सो रहे।

चहकती कलियां जब एकबार भौंरे का स्पर्श पा जाती हैं, तो तनिक समय के लिए ज्ञानशून्य हो जाती हैं लज्जा धर दबाती है, भाव व्यक्त करते नहीं बनता।

तारा और गौरी की अस्मत मसक गई, भावनाओं का कुह-राम मचा। भैया की नौकरी तो आबाद रहे। न जाने क्यों तारा को निर्मल भैया की याद हो आई, पर गोविन्द भैया से उनकी पटती नहीं। गोविन्द भैया तो मुफ़्त के धन पर अपने को भी भूल बैठे हैं, दिन-रात शराब में चूर रहते। सहसा तारा को उस दिन की बात याद हो आई, जिस दिन भाई-भाई में हाथा-पाई हुई थी। निर्मल भैया जीवनधन के घर नौकरी के खिलाफ थे। उन्हें जिस बात की शंका थी, आखिर; गोविन्द भैया की जिद के कारण पूरी भी हो गई।

धनीमानी जीवनधन की चहददीवारी में कुमारी-कन्याओं की लाज लूटी थी ! फिर भी, वातावरण क्यों मौन रहा।

दूसरे दिन सुबह होते ही गोविन्द की मां बेटी के समीप

आई, तो दोनों बेटियों को उदास देखकर आश्चर्य में पड़ गई।

"जानती हो, तारा, तेरे गोविन्द की तरक्की हो गई है। हमलोगों को यहां कितना आराम मिलता है। किसी बात की तकलीफ नहीं। बेटा लायक हो तो ऐसा हो। निर्मल तो नालायक निकला, मां की खोज-खबर भी नहीं लेता। सुना है आवारों की तरह इधर उधर घुमता चलता।" मां ने बात छेड़ दी।

तारा खिन्न-मन बोल उठी—मां! अमीरों की नौकरी का क्या भरोसा। आज रही, कल गई। यहां से अच्छी तो हमलोग घर पर ही थी। गरीबी थी, पर, अपमान तो नहीं था।"

"किसने तुमलोगों का अपमान किया, बेटी! गोविन्द सुनेगा तो कच्चा चबा जायेगा।" माँ ने कहा।

"भला, गोविन्द भैया क्या कर सकते हैं, उन्हें दोस्तों से या जीवनधन की जी-हुजूरी से फुर्सत हो, तब तो ?"

इतने में गोविन्द लपकता हुआ मां के पास आया।

"सुनती हो, मां! श्रीरामदास महंथ का खून हो गया। हलवाई रामू की खोई हुई लड़की मिल गई। पर, खूनी का पता नहीं चलता। शहर में इसी बात की हवा चल रही है।"

गोविन्द की बातें सुनकर मां ने पूछा—"छोड़ो, इन बातों को। अरे, तेरा चेहरा क्यों सूखा नजर आता है। कौन सी तकलीफ हुई है, रे ?"

"ठीक कहती हो—मां! काम से फुर्सत ही नहीं मिलती। इतना काम क्या आदमी कर सकता है ? मां तुम्हें किसी बात की कमी तो नहीं !

"हां एकबात की कमी है! इन दोनों के लिए योग्य वर क्यों नहीं खोजे, देखते नहीं, कितनी सयानी हो गई है। गौरी तारा से दो वर्ष छोटी है, देखने से दोनों एक ही उम्र की मालूम पड़ती है। वहनें बीस साल की हो गई और तू चुप्पी लगाए बैठा है। इन बेटियों की शादी देख लेती, तो खुशी-खुशी चल बसती! अरे! मैं क्या बैठी ही रहूँगी।"

"मां! मैं पूरी कोशिश कर रहा हूँ पर, औकाद के मुताबिक कोई वर ही नहीं मिलता।',

"हिम्मत न हार, खोज लगाए जा बेटा!" माँ ने उत्तर दिया।

इधर शादी की चर्चा हो रही थी, उधर दोनों युवतिया पापी जीवनधन को मन ही मन कोस रही थी। एक ओर भावना थी, दूसरी ओर भैया की नोकरी। कलियां टूट कर भी खामोश रहीं। वरबादी हंसकर भी मौन हुई।

दोपहर का समय था। सुलेखा और प्रियवासकी आपस में बातचीत कर रही थी। सुलेखा—पुरूष बड़ा निदय होता है—प्रियवासकी! तुमतो निर्मल की याद में तड़पती रहती हो, और प्रेमी झांकी तक नहीं मारता। मैं तो पुरूष से घृणा करती हूँ।

"प्रेमी कामुक नहीं होता—सुलेखा। प्रेमी रूप के वदले सौंदर्य देखता है। रूप तो नश्वर काया है। तुम तो स्पर्श से भय खाती हो।"

"जिस समय नारी के सौंदर्य को नग्न-रूप में पुरूष देखता है, तो उस समय नारी की अवस्था कितनी निरीह हो जाती है।

कलियों को उखाड़ फेंकने से पुरूष को कौन सा आनन्द आता है—प्रियवासकी ?"

"एक बात पूछूं—सुलेखा ? क्या तुम उत्तर दे सकोगी ?"

"हाँ, उत्तर अवश्य दूंगी। तुम कहो भी सही।"

"क्या स्पर्श पाकर ही कलियां मुरझा जाती है ? भूल करती हो—सुलेखा। स्पर्श हो या न हो, कलियां चटक कर एकदिन, न एक दिन अवश्य मुरझा जाती है। स्पर्श तो सौख्य है, कामना है।"

"तुम्हारा कथन अकाट्य है—प्रियवासकी ! देखो न, राजा जी शादी के लिए कितने उतावले हो रहे हैं। देवी माधवी से शादी करना चाहते हैं, पर, माधवी राजी ही नहीं होती। योगी राजजी से मालकिन इतनी मोहित हो गई हैं कि योगी का पीछा ही नहीं छोड़ती !"

तरुणाई तो तरुण-शब्द में छिपी रहती है। तरुण ही तरुणी की विकट हंसी समझ सकता है। रात चांदनी में ही खटकती है।

माधवी शृंगार-अंगराग से मद में झूमती हुई नशीली आंखों से राज को निहार रही थी। दोपहर का अलसाया समय था। शृंगार में कमनीयता थी। चित्ताकर्षक रूप मनोरम था। मदः मदाती जवानी इच्छाओं से रार मचा रही थी।

और माधवी ने पूछा—"रूप क्या है—योगीराज ?"

"विकट प्रश्न है—देवी !" राज ने उत्तर दिया।

"तो नारी के रूप पर पुरूष क्यों रीझ जाता है। क्या आपने

राजाजी की बातें सुनी। वे मुझसे विवाह करने चाहते हैं। कहते हैं कि एक संतान के बिना राज्य-धर्म चौपट हो रहा है। मरने के बाद कौन उत्तराधिकारी होगा ?"

"रूप जवानी है—देवी। रूप पर पुरुष नहीं रीझता है, शृंगार पर रीझता है। योगी की दृष्टि में रूप तो नश्वर काया है—देवी!"

"तो राजा जी को क्या उत्तर दूं ?"

"यह प्रश्न, आपको नहीं पूछना चाहिए।"

"बूढ़ापे का ऐश्वर्य विलास-प्रिय होता है— योगीराज ! राजाजी की आयु ६० के लगभग है, तो भी वासना जस की तस है। आश्चर्य ?"

"आश्चर्य की कोई बात नहीं—देवी। वासना तो मरते दम तक नही मिटती। संतान-भाव के लिए विवाह अनिवार्य है।"

"आप तो राजाजी का पक्ष लेंगे ही। अब तो राज-पुरोहित की उपाधि मिल गई है। राज-भवन की ओर कब प्रस्थान कर रहे हैं ? "

"पक्षपात धोखा है—देवी ! राज-पुरोहित होकर भी जनता का प्रतिनिधि बनकर राज-सभा में जा रहा हूँ। अभी तो राजाजी राज-फाटक को गए हैं। कल तक लौटेंगे।

राज़-फाटक की भानुमति चल बसी। पर, मिर्जा अशरफ राज-फाटक के घिनौने वातावरण से फुर्सत न पा सके। ७० साल की अवस्था में चोला दुःखी हो उठा। छुटकारा पाना चाहते, पर, अकब में तकदीर की लम्बी दीवार घिरी हुई थी। अक्ल वो शुब

से ही इंसान खुशकिस्मत नहीं होता। रास्ते से गुमराह होकर भी रौशनी चाहता है।

नमाज की अकीदत पूरी करने के बाद ज्यों ही चबूतरे पर से उठे कि राजाजी की सवारी राज-फाटक पर आकर रुक गई।

आज पांच साल के बाद सरकार पधारे थे क्यों न मिर्जा अशरफ़ जी-हुजुरी करता! आइए, हुजूर! रोजे-अज़ल से ही मेरी किस्मत नापाक हो गई है, बाद-अजां तदबीर की दुहाई क्यों दे। क्या यहीं रातभर पड़ाव डालेंगे?

"हां, मिर्जा अशरफ। तुम ऐसी बातें क्यों करते हो? तुम तो मेरे अज़ीज़-दोस्त हो!"

"हाँ, हुजूर रईसों की अतूफत से ही हम गिरे हुए बदनसीब लोगों की रोटी चलती है। बड़े लोग अदना-व-आला पर एक सा ख्याल रखते हैं।"

"क्या आजकल कोई नई चिड़िया फंसी है या नहीं?"

मालिक! यह धंधा तो कब का छोड़ दिया। पर, अफसोस-सद-अफसोस कोई न कोई पहूंचती ही रहती है। फिलहाल माधुरी नाम की एक वेश्या बनी है! क्या अदाए है—सरकार! सच पूछिए तो कलेजा मुंह को आता है।

"ये लो पांच सौ सिक्के! अब तो एतराज नहीं!"

"इतने में क्या होगा—मालिक! उसे गाना-बजाना सीखाने में बड़ी मिहनत लगी है—सरकार! नफे में टोटा क्या सरकार"

"अच्छा! अच्छा!! मुंहमांगा ईनाम मिलेगा। अब तो राजी हुए।"

जीवनधन की पत्नी राज-फाटक में वेश्या तो बनी, किन्तु, राज-फाटक में करीबन १०० से उपर वेश्याएं थीं।

आज रात को पहलीबार टके-टके पर अस्मत बिकने वाली थी। हताश थी—माधुरी, फिर भी परिस्थितियों से लाचार थी।

ऐश-व-इशरत की जिंदगी, की इन्तहा क्या है—इन्तकाम।

निर्दय राजाजी ने रसकेलि की। किस ओट में छिप गई—नारी की लाज।

ओह निर्दय-पुरूष ! आँखें खोल, क्या यही इन्साफ़ है। अरे धनवालों की दुनियाँ बोल क्या इंसान का यही पैगाम है ?

माधुरी को मिर्जा अशरफ पर बड़ा क्रोध आया। इंसान की सूरत में शैतान की हिमाकत तो देखो। लगा दिया किराए पर, भाड़े पर बिक गई—नारी की लाज।

इन्सा-अल्लाह-तआला मौत जल्द खींच ले जाए। मेरी इनाबत मंजूर कर ले अल्लाह ! इन्तजारी में ही पाप की गठरी भारी हो रही है। मुझमें ताकत नहीं, कि किए पापों की इबारत-आराई करूँ। हरवख्त पाजेब की रुनझुन सुनता हूं, इबादत कब करूँ, पेशे से अदीम-उलू-फ़ुरसत ही नहीं मिलती। इमारतों में इरम समझ भूल कर बैठा हूँ। पशेमान जिंदगी फना हो जाए, अल्लाह ! क्या तेरी यही मर्जी है ? बुरी इल्लत से बचा ले भगवान।

मिर्जा असरफ उस रात को अल्लाह से अपनी राम-कहानी कहते रहे, और उसी रात माधुरी की अस्मत १००० सिक्कों पर खरीदी गई। सुबह होते ही राजाजी चलते बने।

और राज-भवन में अपार भीड़ थी। दरबार लगा हुआ था। जनता बड़ी उत्कंठा से नये राज पुरोहित की ओर जिज्ञासा-भरी दृष्टि से देख रहे थे। राजाजी के विवाह का प्रस्ताव सुलझाना या बिगाड़ना राजराघव के हाथ था। जनता के प्रतिनिधि, गांवों के मुखिए, धनीमानी सज्जन अपनी-अपनी जगह पर बैठे हुए योगी के तेजोमय-कांति को निहार रहे थे। ब्रह्मचर्य की कांत-कमनीयता से राज का मुख-मंडल उद्भासित हो उठा था।

योगी मंच पर खड़ा होकर जनता के सामने राजाजी के विवाह-प्रस्ताव की पुष्टि कर रहा था।

"सज्जनो ! मूल में राज-पुरोहित का पद मेरे ऐसे अनजान एवं अनभिज्ञ के लिए उचित नहीं। शास्त्रों के अनुसार कोई भी राजा सन्तान-प्राप्ति के लिए विवाह कर सकता है। इस नियम के मूल में कोई विग्रह नहीं।"

इतने में जनता के प्रतिनिधि बोलने को खड़े हुए—निस्सन्देह, राज-पुरोहित जी का निर्णय सर्वमान्य होगा। किन्तु, विलासगृह की स्वामिनी माधवी देवी का इतिहास रहस्यपूर्ण ज्ञात होता था। इतने बड़े महल में केवल तीन स्त्रियां रहती हैं। मैं जनता की ओर से राजाजी से पूछना चाहता हूं कि वे माधवी देवी के गौण-इतिहास की सभग्र सूचना देने की कृपा करें। हमलोग माधवी देवी के माता-पिता के नाम से अज्ञात हैं। पुनर्विवाह के लिए शास्त्र अनुमति देता है, फिर भी जनता जानना चाहती है कि जीवनधनजी ने माधवी-देवी के प्रति वेश्या-पुत्री का आरोप लगाया है, क्या सर्वांग—सत्य है ?"

राज-पुरोहित व्यग्र हो उठे—राजाजी अपनी सफाई जनता के प्रतिनिध के सामने देने को तत्पर हो जाएँ।

जीवनधन ने मूंछे ऐंठी। भरी सभा में माधवी का अपमान उसकी बड़ी सफलता थी।

राजाजी बोलने को उठे कि लोगों की तालियां बज उठीं।

"मैं जनता को विश्वास दिलाता हूँ कि माधवी वेश्या-पुत्री नहीं। जीवनधनजी ने सुनी हुई बातों पर अफवाहें उड़ाई हैं। यदि इस पर भी आपलोगों को सन्देह है, तो पास ही बैठी माधवी देवी से माता-पिता का सारा इतिहास पूछ लेवें। जहां तक मैं सम्बंधित हूँ, इतना तो कह सकता हूँ कि माधवी देवी के प्रति झूठी अफवाहें उड़ाई गई हैं।

योगी का चेहरा लाल हो गया। माधवी इस भीषण अपमान से क्रुद्ध हो उठी। राज-पुरोहित योगी श्री राज ने माधवी देवी को संकेत करते हुए पूछा—

लोकावाद से जनता सशंक हो उठी हैं। मैं राज-पुरोहित की हैसियत से भरी-सभा में माधवी देवी से लोकाबाद—अफवाहों की सफाई चाहता हूँ। माधवी देवी कष्ट करें। जब पूरे अभिराम-शृंगार में मदमदाती माधवी सफाई देने को उठी, तो ऐसा प्रतीत होता था कि स्वर्ग की अप्सराएं भूलोक में विचरण करने को शैल पर खड़ी हुई हों। सुलेखा और प्रियवासकी बड़ी जिज्ञासा से स्वामिनी की ओर देख रही थीं। माधवी ने सफाई के शब्दों में उत्तर दिया।

"मुझे मालूम न था कि भरी-सभा में पुरुषों की टोलियां नारी का भीषण अपमान करने को तत्पर होगी। मुझे अपनी सफाई में केवल इतनी बात ही कह सकती हूँ कि संकोच वश माता-पिता के शुभ-नाम बताने से लाचार हूँ। मेरा निर्णय अब तो राज-पुरोहित श्री राजराघवजी के हाथ है।"

जनता माधवी का उत्तर सुनकर दंग रह गई।

राज-पुरोहित झट बोल उठे—"जब माधवी देवी माता-पिता के नाम बताने से असमर्थ है, तो विवाह के लिए मैं अपनी अनु-मति नहीं दे सकता।

फिर क्या था, राज-सभा में राज-पुरोहित की जयजयकार गुंज उठी। जयजयकार की तुमुल-ध्वनि के बीच श्री राज बोल उठे—मैं राजाजी से अनुमति लेना चाहता हूँ। अमरकंटक में महगी, और महामारी फैलती जा रही है! राज-पुरोहित के पद से छुटकारा चाहता हूँ क्योंकि अमरकंटक की भीषण समस्या जो मंहगी और महामारी के कारण उग्ररूप में आकर खड़ी हो गई है, निदान के लिए अहिंसा-पथ पर आरूढ़ हो, जनता की सेवा करना चाहता हूँ। लोगों के द्वारा मुझे मालूम हुआ है कि खाद्य-पदार्थों को व्यापारी जान बूझ कर तहखाने में जमा करते जा रहे हैं, अन्न का भाव बढ़ता जा रहा है। अमरकंटक के प्रसिद्ध व्यापारी जीवनधनजी के प्रति लोगों की शिकायतें आ रही। जनता को अहिंसा और अनशन-व्रत से शिक्षा लेनी चाहिए, नहीं तो समाज में हाहाकार मचने की संभावना है।

धनी-वर्ग को चाहिए कि लाखों गरीबों की भलाई करे, जो प्रतिदिन अधिक संख्या में रोगों और महंगी का शिकार हो रहे हैं।

विलास-गृह की स्वामिनी की ओर से गरीबों को अन्न मुफ्त में बांटा जायेगा। माधवी-महा विद्यालय के स्नातक महामारी से पीड़ित लोगों की सेवा के लिए तत्पर रहेंगे। मैं इस कार्य में जनता और राजाजी का सहयोग चाहता हूँ।

श्रीराज के इस कथन पर तालियों की गड़गड़ाहट से राजसभा गूंज उठी। लाचार हो राजाजी को इच्छा न रहते हुए भी श्रीराज को राज पुरोहित के पद से छुटकारा देन पड़ा। सभा-विसर्जन के बाद श्रीराज की सवारी अमरकंटक होती हुई निकली। लोगों ने माले पहनाए, सवारी में बैठी हुई माधवी देवी की बड़ी प्रशंसा हुई। धन्य है—देवी ! विलास-गृह गरीबों को मुफ्त अन्न वितरण करने लगा। माधवी-महा विद्यालय के स्नातक गरीबों की झोपड़ियों में जा-जा कर दवाइयों और सेवा-कार्यों से माधवी के नाम पर चार-चांद लगा दिए। माधवी और श्रीराज की प्रशंसएं जीवनधन को ऐसी बुरी लगी कि उसने अन्न अधिक परिमाण में खरीद-खरीद अपने घर में रखने लगा। अमरकंटक में अन्न की वड़ी कमी हो गई। गोबिन्द देहातों से ऊँचे दाम पर माल खरीद-खरीद जीवनधन के गोदाम में इकट्ठा करने लगा। अन्न की कमी से नगर में त्राहि-त्राहि मच गई।

विला-गृह के सामने जनता की अपार भीड़ थी। जनता अपनी-अपनी फरियाद लेकर कर्मठ योगी श्रीराज और विराट-

ऐश्वर्य की स्वामिनी श्री माधवी देवी के पास पहुँची थी।

जनता की ओर से निर्मल ने आगे बढ़कर कहा—"योगीराज! जीवनधन अन्न के बोरे इकट्ठा करता जा रहा है। अन्न बेचने से इन्कार करता है। मृदुला देवी ने जीवनधन को लाख समझाया, किन्तु; शठ नहीं मानता।

"धैर्य रखो—निर्मल। सेवा-कार्य में पूरी सहयोगिता की आवश्यकता है। घबड़ाओ नहीं। जत्था बना-बना जीवनधनजी के घर पर डटे रहो। नारी-सेवा समिति की ओर से मृदुलादेवी कार्य करेगी। जाओ शीघ्र उचित मांग जीवनधनजी के समक्ष करो। देखना, अहिंसा व्रत पर पूरा पूरा भरोसा रखना।" दोपहर होते-होते जत्थे के जत्थे लोग जीवनधन के घर के फाटक पर इकट्ठे होने लगे। निर्मल जत्था के आगे आगे था। पीछे स्त्रियों का जत्था आ रहा था, और मृदुला देवी संचालन कार्य में निरत हो, आगे-आगे बढ़ती जा रही थी।

सहसा भगदड़ मच गई। जीवनधन के गुंडे जत्थे पर ईंट पत्थर बरसाने लगे। जत्थे का क्रम कुछ ढीला हो चला। रेल-पेल के मिस किसी ने आकर मृदुला की छाती से कुछ हटकर छूरे का वार कर दिया। मृदुला कराहती हुई धड़ाम से गिर पड़ी। हत्यारा भाग निकला, किन्तु; दौड़ते दौड़ते निर्मल ने ज्यों ही उसे पकड़ना चाहा, उसने खुद कुशी अपने ही छूरे से ही कर ली। स्नातक नीलनभ औषधालय की ओर दौड़ पड़े, पर परिश्रम बेकार सिद्ध हुआ। मृदुला तो चल बसी, चेहरे पर शांति खेलती

रही। हत्यारे का नाम घनश्याम था। नगर में शोक उमड़ आया। जनता ने श्रद्धांजलि अर्पित की। मृदुला के पिताजी पुत्री के इस शुभ-कर्म से गौरवान्वित हुए। श्रीराज को मृदुला की हत्या का समाचार मिला, तो घटनास्थल पर दौड़े हुए आए।

हत्यारे का प्राण-पखेरू निकल चुका था। मरते-मरते उसने इतना स्पष्ट कर दिया कि जीवनधन की ओर से इस कार्य के लिए नियुक्त किया गया था। श्रीराज ने देखते ही समझ लिया कि हत्यारा घनश्याम तो श्रीरामदास महंथ का चेला था। मृदुल की अस्मत भानुमति मंदिर में इसीने पहले पहल लूटी थी। घनश्याम की लाश को घसीटते हुए लोग सड़कों पर घूमने लगे। लोगों ने थूके। काश ! घनश्याम अपनी बेइज्जती नहीं देख सका।

आखिर, जीवनधन की हार हुई और अन्न के बोरे बाजार में आमतौर पर बिकने लगे। मृदुला स्मारक बनवाने के लिए माधवी ने यथेष्ट धन दिए, जनता भी चंदे के सिक्कों से दिवंगता आत्मा के प्रति भक्तिपूर्ण श्रद्धांजलि अर्पित की। विलास-गृह के समीप ही मृदुला-स्मारक-भवन का निर्माण हुआ। माधवी-महाविद्यालय के स्नातकों के अकथ-परिश्रम से महामारी भी भाग निकली। निर्मल की प्रशंसाएं अमरकंटक के चारों ओर फैल गई।

मृदुला जिस कलंक को जीवनकाल में न धो सकी, सेवा और त्याग की महिमा बलि-बेदी पर कलंक मिट गया, नाम अमर हो गया।

निर्मल की जिंदगी गुजर रही थी। रामदास महंथ के खून के बाद मन स्थिति ठीक नहीं रहती थी। खूनी का मन सशंक रहता है। आज बहनों की याद हो आई। जिस-समय जीवनधन के घर पर पहुँचा, गोविन्द और जीवनधन कहीं घूमने चले गए थे। मां का प्रेम कितना शीतल, पवित्र एवं स्निग्ध होता है, यह निर्मल को ज्ञात हुआ, उसे देखते ही मां ने मानो दौड़कर उसके कपोलों चूंम लिया। तारा और गोरी की प्रसन्नता क्या ठिकाना।

"बेटा! इसी शहर में रहते हो, कभी मां को देखने का जी नहीं चाहता? गोविन्द से मालूम हुआ है कि तुमने किताव की दूकान खोली है। शहर के लोगों तुम्हारी बड़ी प्रशंसा करते हैं। तुम सा होनहार पुत्र पाकर मां धन्य-धन्य हो गई।"

"क्या करूँ, मां! गो गोविन्द भैया के डर से यहाँ आने का जी नहीं चाहता। भैया तो अमीर हो गए हैं।"

मां चुप हो गयी। कुछ क्षण वाद माँ ने चुपके से कहा।

"बेटा! क्या कहूँ, तारा और गोरी को जी चाहता की जिंदा न छोड़ूं। कलंकिनी के पैर भारी हैं"

"क्या कहा, मां! फिर तो कहो! इसमें बहनों का क्या दोष है—मां! दोषी तो गोविन्द भैया हैं। मैं रईसों के चोचले खूब समझता हूँ, जिस वात की शंका मुझे पहले से ही थी, आज तो·········मां बड़े आराम से हो न? बड़ी खुशखबरी सुनाई। जी चाहता है कि नरपिचास जीवनधन की हत्या कर

दूं। और, गोविन्द भैया की बुद्धि मारी गई है क्या? डाकू डाके डाल रहा है, और भैया चुप हैं। कहां हैं—गोविन्द भैया?" "गोविन्द को क्यों दोष देते हो—"बेटा। मन करता है कि इन कलंकिनी को गला घोंट मार दूं। ताली दोनों हाथों से बजती है। जबानी नहीं संभलती, तो जा वेशवा वन जा।"

"मां! दोष किसका, और गुस्सा झाड़ती हो किस पर? लड़कियां खामोश होती हैं, इसका यह मतलब नहीं कि जिसका जी चाहे हरि-भरी फुलवाड़ी उजाड़ डाले। पता नहीं, गोविन्द भैया अबतक खामोश क्यों बैठे हैं?"

सौभाग्यवश् गोबिन्द भी आ पहुँचा। निर्मल को देखते ही उसके कान खड़े हो गए। एक तो निर्मल की लम्बी डराबनी दाढ़ी, अलाबे गुस्से से तमतमाया हुआ चेहरा, गोबिन्द ठगा-सा रह गया। टसकना ही चाहता था कि निर्मल पुकार कर कहा— "रुकिए तो?"

कहो, क्या कहते हो? गोबिन्द ने साहस बांध उत्तर दिया। मुख में कलंक-कालिमा लगाकर पूछते हो, जिंदिली की राम-कहानी क्या है? मुझे मालूम न था कि धन पाकर आप इतने नीच, पतित और खान्दान की शराफ़त खो बैठेंगे। आंखों के सामने घर जल रहा है, और भाई बेइज्जती की वेपर्दी तमाशबीन की तरह देख रहा है। बड़े आश्चर्य की बात है। हराम का पैसा बेवफा बना देता है। हरामखोर के सामने खान्दान की इज्जत, बहनों की शराफत क्या कोई मूल्य नहीं रखती। बेशर्म भाई!

गोविन्द की आंखें क्रोध की ज्वाला से धधक उठी।

बहुत आगे बढ़ चुके हो—निर्मल। अपने भाई को हरामखोर कहते तुम्हारी शर्मोदया किस औरत के आंचल में छिप गई है? जिस समय तुम्हारी बहने और मां भूखों मर रही थीं, उस समय सहारा देने क्यों नहीं आए? मैंने नौकरी की। जीवनधनजी मुझे प्राण से भी अधिक प्यार करते हैं, ऐसे मालिक की प्रशंसा करने के बजाय तुम गालियां बकते हो। मक्कार योगी के फेर में तुम्हारी बुद्धि मारी गई है। जाओ माधवी देवी का हुक्म बचाओ और प्रियवासकी के साथ अठखेलियां करो। अभी दुनियांदारी से नादान हो। बड़ी कलमुंही बहनों की तरफदारी करने आए हो, तो विवाह क्यों नहीं ठीक कर देते। गरजती जवानी पछाड़ खाती ही है। जाओ किताब बेचो। तुम्हारी तरक्की बहुत हो चुकी है। निकल जाओ मेरे घर से। निकल जाओ मेरे घर से। निकल जाओ मेरी आंखों के सामने से?

रावी! रावी!! इस छोकरे को यहाँ से निकाल बाहार करो।

गोविन्द की आवाज सुन जीवनधन दौड़ा हुआ आया। जीवनधन को देखते ही निर्मल क्रोध से आगबबूला हो गया।

निर्मल ने जीवनधन को संकेत करते हुए कहा—"पाप छिपाकर सीनाजोरी नहीं कर सकते। पापी! निर्लज!! अपनी गठरी संभाल, वर्ना तेरी मृत्यु निश्चित है।" निर्मल की बातें सुनकर जीवनधन ने कहा—निर्मलबाबू! मैं जानता हूँ, आप जनता के प्यारे हैं। दो-चार भाषण दे देने से, मैं आप को विद्वान नहीं

कह सकता। गठरी मेरी नहीं। आपकी वहनें पाप करें, और गठरी मेरे सर। आश्चर्य! आप यहाँ से चलते बनें, नहीं तो यदि शामत आई हो, तो कहिए हमलोग उसकी भी दवा कर दें। निर्मल ने गरजकर गोविन्द से कहा—"मैं अपनी वहनों को यहाँ से ले जाना चाहता हूँ। आप जबरदस्ती नहीं कर सकते।"

"बड़े ले जानेवाले आए हैं, जरा अपनी सूरत तो देखो। जाओ योगी राज की हुजूरी बजाओ। प्रियवासकी के इशारों नाचो।"

गोबिन्द ने कहा।

"अच्छी बात है। लेकिन इस हठ का अंजान बुरा होगा।" निर्मल इतना कह चलता बना।

पाप की गठरी और इंसान—अकेला। धनमत्त होकर इंसान अपनी शराफत बड़ी बेपर्दगी से छोड़ देता है। क्या यही है पैसे की दुनियां? छोटी सी जिंदगी और पाप की गठरी—भारी। आज कई महीनों के वाद योगी बिष्णुप्रिया के घर लुकते-छिपते पहुचा। रात्री के सूनसान पहर में—रजनी काली-काली और उसी ओट में भयंकर पाप। नाच रही थी—विष्णुप्रिया। नाज भरी अदाओं में, निर्लज्ज यौबन हंस रहा था—पाप की काली कोठरी में।

योगी को मतलब? कोई हंसे, कोई गाए। लेकिन योगी को शांति नहीं थी। जीवनधन नशे में चूर बेशर्म निगाहों से विष्णुप्रिया को देख रहा था। योगी ने आंखें मिच लीं। कुछ

देर तक योगी खिड़की की राह से भीतर का घिनौना व्यापार देखता रहा। रात बड़ी भयावनी थी। सड़कों पर कुत्ते भांउ-भांउ कर रहे थे। कमरे की रौशनी बुझा दी गई। आज तो योगी खून करने चला था। योगी का क्रोध बड़ा भीषण होता है। भीतर निर्दय जीवनधन विष्णुप्रिया की अस्मत लूटने को आतुर था। सहसा विष्णुप्रिया ने किवाड़ खोली। चुपके से योगी कमरे के अन्दर घुस गया। शीघ्र विष्णुप्रिया कपड़े बदलकर कमरे में पहुँची और सांकल लग गई।

अंधेरा कमरा था ज्यों ही चुंवन को जीवनधन आगे बढ़ा कि योगी ने ऐसी कटार लगाई कि वह अचेत हो गिर पड़ा। सांकल खोल राज भागता-भागता विलासगृह में पहुँचा। योगी हांफ रहा था। यह दशा देख माधवी ने झट पूछा—"इतनी बड़ी रात को आप बाहर क्यों घूमते रहते हैं। जानते नहीं, जीवनधन के आदमी हमलोगों का पीछा करते।"

योगी ने उत्तर न दिया। मृगछाला पर आकर सो रहा। पर, नींद न आई। कान खड़े रहे।

कहीं किसी ने देखा तो नहीं ? नहीं। रात अंधेरी थी। कमरे में भी अंधेरा था। विष्णुप्रिया मुझे पहचान गई हो ? नहीं, मैं तो धीरे से कमरे में घुसा था। चिंता की बात नहीं। क्यूं न चिंता करूं, सुवह होते-होते खबरें फैल जायगी। कहीं कटार से नहीं मरा, तब क्या होगा ? वार तो सीधे निशाने पर किया था ?

रातभर योगी को नींद न आई। छटपट-छटपट करता रहा।

सुबह होते ही जीवनधन जख्मी होकर नीलनभ-औषधालय में लाए गए। शहर में इस बात की खबर हो गई। वेश्या के घर में आना-जाना जीवनधन के लिए कोई अचरज की बात नहीं थी।

सन्ध्या होते-होते जीवनधन के प्राण पखेरू पंचभूत शरीर से नकल भागे। शहर में खुशियां मनाई गईं। विष्णुप्रिया बाल-बाल बच गई। खूनी का पता नहीं चला। जीवनधन की मृत्यु औषधालय में हुई, यह सुनकर योगी को बड़ी प्रसन्नता हुई। पर, उनकी प्रसन्नता शीघ्र ही काफूर हो गई—जब जीवनधन-भवन से गोविन्द की लाश बरामद हुई। शहर में काफी सनसनी फैली हुई थी। एक ही रात में दो-दो खून। सारा अमरकंटक दहल उठा। भाई, भाई की हत्या करे, हाँ, क्रोध के आवेश में आदमी क्या नहीं करता।

फिर भी निर्मल के दिल पर जो भारी सदमा पड़ा, दिनों दिन उसकी हालत बिगड़ती गई। पागलों की तरह सड़कों की चक्कर काटता। बड़बड़ाता। बेमौके हंसता। क्योंकि जिस उद्देश्य से भाई का खून किया, धारणा फलीभूत न हो सकी। पुत्र शोक में मां भी चल बसी, और तारा गौरी का पता नहीं चला। लापता हो गई। निर्मल की इस हालत से प्रियवासकी खिन्न रहने लगी। प्यारा पागल बना, हसरत अधूरी रही। प्रियवासकी बीमार पड़ गई।

"सुलेखा! अरी ओ सुलेखा। निर्मल बाबू से क्या आखरी भेंट नहीं होगी? क्या चितेरे की पागल सूरत भी नसीब न

होगी। सुलेखा तुम ठीक कहती थी—पुरूष का प्यार धोखा है।"

"न घबड़ाओ—प्रियवासकी। तुम्हारा चिपेरा अपने दिमाग में नहीं। पागल हो गया है—पागल। योगी श्रीराज जी तुम्हारे लिए निर्मल बाबू की खोज कर रहे हैं। सड़कों के घूमते का क्या ठिकाना ?"

"क्या एकवार दर्शन न कर सकूंगी ? दरस दिखा दो-प्रभु ! मानिनी हठ छोड़ इस असार-संसार से जा रही है। पागल हो गये ? कौन सा सदमा पहुँचा है—प्रियतम !"

प्रियवासकी का भाग्य जगा। योगी निर्मल को पकड़े हुए रूग्णा प्रियवासकी के पास ले आए। माधवी भी योगी के पीछे-पीछे आकर खड़ी हो गई।

प्रियवासकी की आंखें बंद थी। माधवी ने प्रियवासकी को सुनाते हुए कहा—"उठो प्रियवासकी ! आंखें तो खोलो ! अभी-अभी तो तुम सुलेखा से वातचीत कर रही थी। देख तो सही, तेरा निर्मल तुम्हें लेने आया है। उठ पगली।"

निर्मल का नाम सुन प्रियवासकी की आंखें खुलीं—एकवार प्रेमी को निहार, फिर आंखें पथरा गईं।

चल बसी प्रियवासकी। पागल निर्मल क्या समझे, क्या जानें—क्यों सुलेखा फुट-फुट रो रही है ? क्यों माधवी की आंखों में आंसू छलक रहे ? क्यों योगी विदग्ध हो उठा है ?

योगी ने पाश ढीले किए, और पागल निर्मल न जानें क्या बड़बड़ाता कमरे से निकल भागा।

सुलेखा उदास रहने लगी। एक मास बीत गया, दो बीते, बीतते गए, पर, हाय रही, स्मृति-पट पर प्रियवासकी की याद जोर मारती रही।

नारी जिस स्पर्श-प्यार को चाहती है, राज माधवी को वह प्यार न दे सका।

कामुकता की आंधी में नारी इतनी विचलित हो उठती है कि संकोच का दामन बरवश छोड़ना ही पड़ता है।

भय, संकोच, लज्जा, इन आवरणों में माधवी योगी से मन के उद्गार प्रगट करने में असमर्थ रही।

कईवार योगी का योग हंस पड़ा था। किन्तु संयम, के साथ-साथ चेतना शक्ति भी सक्रिय रही।

योगी आदमी नहीं क्या? माधवी सोचती रही। रूप-गरिमा से योगी दूर रहा। दोनों के हृदय में प्रेम-भाव जाग्रत रहा।

राजाजी जब विवाह करने से लाचार हो गए, तो भी माधवी के रूप-लावण्य पर उनकी वासना रह-रह कर मचलती रही।

इधर १० दिनों से विलास-गृह में विराज रहे थे पर, माधवी का सौंदर्य तो राज के लिए था। राजाजी के सामने हंसती, बोलती, नाचती, लेकिन माधवी पिछलन तो नहीं थी कि राजाजी के इशारों पर यौवन-दान दे देती।

राज माधवी विद्यालय से साम को लौटा, तो विलास-गृह में माधवी का नृत्य राजी के समक्ष देख, उसे न जानें क्यों क्रोध भर आया। चिल्लाकर कहा—"यह निर्लज्ज-नृत्य रोक दो—माधवी! मैं कह रहा हूँ।"

राजाजी दंग रह गए। माधवी कला के इस अपमान से क्रुध हो उठी। बोली—"दूसरे के घर में आप तो ऐसी सीनाज़ोरी कर रहे हैं, मानो मैं आपकी पत्नी ही ठहरी।"

राज, माधवी का यह उत्तर सुनकर सन्न रह गया। यह माधवी कह रही है या माधवी का सौंदर्य उसके रूप में मचल उठा है।

माधवी नृत्य में पुनः तन्मय हो गई। नूपुरों की रुनझुन से सारा कमरा खिलखिला उठा था। कमरे के दरवाजे पर खड़ा हो राज ने कहा—"देवी! भगवान तुम्हारा कल्याण करे। इधर अतिथि कहने से लाचार है, उधर आतिथ्य करने वाली भ्रम में भूली हुई है। किसे कहूँ? कौन सुनेगा? मैं जा रहा हूँ—देवी! हाँ, इतना तो कहे जाता हूँ, मंजूषा देवी की याद रखना।"

इतना कहकर राज अपने कमरे की ओर चला। पैर काँप रहे थे। हृदय में स्पनन्दन जाग उठे थे। राज ने मृगछाला उठाई, कमंडलू हाथ में लिए, और धीरे-धीरे कमरे से बाहर आया। सुलेखा योगी के मनोगत भावों को समझ और भावनाओं को प्रत्यक्ष देख रही थी।

सुलेखा की आंखें डबडबा आई थीं। योगी विलास-गृह से विदा हो रहा था, तो युवती की आंखों में आंसू अनिवार्य थे।

"रो न सुलेखा! प्रसन्नमन विदाई दो। हाँ, मालकिन से इतना तो कह देना कि यदि तुम्हारा अपना राज मिले, तो उसे योगी—राज की दृष्टि से देखना। पत्नी की ममता से नहीं! भगवान तुम्हारा भला करे—सुलेखा।"

"जाते हो योगीराज ! मेरा प्रणाम लीजिए।" सुलेखा ने रुद्ध-कंठ से कहा।"

"आयु, यश, विद्या, बुद्धि बढ़े।" राज इतना आशीर्वाद दे विलास-गृह से निकल पड़ा।

"रुकिए, योगीराज ! स्वामिनी को सूचना तो दे दूं।"—सुलेखा ने पुकार कर कहा।

"नहीं सुलेखा ! ऐसा अपराध न करो। नृत्य में लवलीन नारी को न रोको। कला का अपमान होगा। रूप की अवहेलना होगी। नारी निर्लज्ज-पुरुष को बार-बार दुहाई देगी।" राज ने दूर से ही पुकार कर कहा।

माधवी नृत्य में लवलीन हो रही थी कि अचानक उसकी भावना में मंजूषा देवी का उल्लेख सुन कुहराम मच गया।

नृत्य की लवलीनता टूट गई। लावण्य का मोह बिखर गया। हिरणी-सी दौड़ती हुई राज के कमरे में आई। कमरा मृगछाला के बिना सूना और उभंख दीख पड़ा। गिरी हुई एक अंगूठी मिली। अंगूठी में माधवी का नाम खुदा हुआ था।

"यह तुमने क्या किया—मेरे राज ! रहस्य क्यों छिपाए रखा ? मंजूषा देवी मेरी मां थी। पति होकर भी मेरे पास रह कर चुप्पी लगाए रहे ? क्या प्रयोजन था—मेरे राज ? आह ! तुमने तन्मयता के धोखे में मुझसे अभिराम-बिदाई ले ली। योगी बन कर तुम मेरी आंखों के सामने ही छले गए।

तुम चुप हो सुलेखा ? मेरे राज को क्यों जाने दिया ? रोका तक नहीं ? कितनी निर्मम हो—सुलेखा !

माधवी की आँखों में आँसू सावनी-घटा से छा गए। वेदना व्यग्र होती गयी। स्वामिनी की विक्षिप्त-अवस्था देख सुलेखा ने कहा—"स्वामिनी। मुझे दोष देना निरर्थक है। मैंने योगीराज को रोका। पर, उन्होंने मुझे रोकते हुए कहा—"नहीं, सुलेखा! ऐसा अपराध न करो। मृत्य में लवलीन नारी को न रोको। कला का अपमान होगा। रूप की अवहेलना होगी।

और, नारी निर्लज्ज-पुरूष को बार-बार दुहाई देगी। हाँ, आप से इतना ही कहने का आदेश दिया·······;··········?"

"शीघ्र कहो—सुलेखा! मुझसे कोई बात न छिपाओ। मैं पैरों पड़ती हूँ।" माधवी ने व्यग्र हो कहा।

"मालकिन से इतना तो कह देना कि यदि तुम्हारा अपना राज मिले तो उसे योगी—'राज' की दृष्टि से देखना। पत्नी की ममता से नहीं।"

कहाँ चला गया—मेरा राज! पतिदेव मैं आपको योगी रूप में ही आरती उतारूँगी। मेरे राज को खोज दो—सुलेखा। राजाजी आप तो अमरकंटक के राजा हैं। मेरे राज का पता लगा दीजिए। मैं आपको नृत्य की कल्पना में डूबो रही थी। उधर मेरा राज मुझसे बिदाई ले रहा था। सभी चुप हैं। क्यों? मेरा राज खो गया इसलिए?

नहीं री पगली! खोजने से क्या नहीं मिलता।

रात अंधेरी। राज भागता हुआ राज-फाटक की ओर बढ़ता ही जा रहा था। कुत्ते भौंक रहे। रात्रि भयावनी हो रही। कहाँ

जा रहा है—राज ! योगी होकर राज-फाटक के घिनौने वातावरण में प्रवेश कर रहा है ?

नहीं ! तुम्हें मां की याद हो आई है। कौन तुम्हारी मां ? अरे वही भानुमति एक निर्लज्ज वेश्या।

और अमरकंटक के लोग तुम्हें देवता की तरह पूजते हैं। तुमने एक विलक्षण समस्या खड़ी कर दी है।

रास्ता सूनसान और राज—अकेला।

राज-फाटक के पास एक बगीचा पड़ता था। बगीचा या सूनसान घनाजंगल। रात में काला-पहाड़ की तरह डरावना मालूम पड़ता था।

राज इसी जगह पहुँच जोर-जोर चिल्लाने लगा।

"मां ! मां !! तेरा पुत्र द्वार पर आया है। मां तू तो चल बसी। आज होती तो पुत्र की योग-साधना पर फूली न समाती। कलंक-कालिमा मिट चुकी है—मां। योगी का अहम् भाव तिरोहित हो चुका है। राज तेरा पुत्र होकर आखरी विदाई लेने आया है।

मां ! मैं खूनी हूँ। जीवनधन का खून मैंने किया। जानती हो कारण ? मेरी बहन विष्णुप्रिया की लज्जा मेरी आंखों के सामने छीन-झपट रहा था। आशीर्वाद दे दो मां।

मां तेरी दुल्हन माधवी भ्रम में भटक रही है। रक्षा करना मां।

प्रेमी प्रेयसि का प्यार भूल जाता है, धनी भगवान को भूल बैठता है, पर, पुत्र मां का प्यार नहीं भूल सकता।

मां मुझे पागल समझ रही हो ? ऐसा न समझना—मां। मैं खूनी हूँ, इसलिये तिरस्कार न करना। विलास-गृह के चक्र में रामदास, मृदुला, जीवनधन की हत्या हुई। पर, गोबिन्द का हत्यारा कौन है—मां ?

पागल निर्मल इधर-उधर भटकता जंगल के एक वृक्ष के नीचे विश्राम कर रहा था। उसके कानों में जैसे यह आवाज पहुँची, गोविन्द का हत्यारा कौन है ? तो, जिस ओर से आवाज आई थी, उधर ही कटार ले दौड़ पड़ा। खूनी खटके और आहट से डरता है। योगी के समीप पहुंच निर्मल ने ऐसी कटार चलाई कि राज आह भरता जमीन पर धड़ाम से गिर पड़ा।

सहसा बादल की ओट से बिजली कौंध गई। राज ने बिजली की छिटक में निर्मल के चेहरे को देख लिया। उसके मुंह से ये शब्द निकल पड़े। आज मैं बहुत खुश हूँ—निर्मल। तुमने धर्म के नाम वार किया। मैं योगी होकर राज-फाटक के भ्रम में भटक रहा था। पर, इतना तो पता दो—गोविन्द की हत्या क्यों की। अरे, मैं भी कितना मूर्ख हूँ—पागल से खून का रहस्य पूछ रहा हूँ। सबेरा होने को है। मैं तो चला निर्मल। जनता-जर्नादन की भीड़ आदि हो, तो इतना कह देना कि मैं भानुमति का पुत्र था। माधवी मेरी पत्नी थी। सभी को संदेशा देना—खूनी की मृत्यु खून से होती है। दुनियां वियोग की राम कहानी है।

"ॐ, सत् चित् आनंद।"

योगी असार संसार से ऊषा के आते ही चल बसा। ऊषा सकुच-सकुच सकुचाई। सुबह होते ही अमरकंटक की जनता, राजाजी को साथ लिए और विलास-गृह की स्वामिनी को आगे-आगे किए योगी की लाश के चारों ओर घिर आई।

पागल निर्मल हाथ में कटार लिए चुपचाप खड़ा रहा। माधवी रोती हुई राज के चरणों पर गिर पड़ी।

"यह तुमने क्या किया—निर्मल। मेरी दुनियां उजाड़ डाली। अरे हत्यारे! राज मेरे पति देव थे। मैंने उसका अपमान किया। तुमने हत्या कर डाली। और मेरा कर्मठ पति चल बसा।"

अमरकंटक की जनता रो उठी। वातावरण गम्भीर हो उठा। अमरकंटक के राजाजी ने हाथों अपने योगी पुत्र की चिता सजाई। धधक उठी अग्नि और योगी का पंचभूत शरीर राख हो गया। माधवी ने सारी राख बटोरी और अंचल में बांध अमरकंटक की रोती हुई जनता के साथ पीछे-पीछे चली।

वेदना के रंगमंच पर योगी की विदाई हृदयस्पर्शी प्रतीत हुई।

त्याग पृष्ठभूमि से दार्शनिक-भारत का चित्र अभिराम एवं चिरंतन रहा।

है मार्मिक-वेदना तो हंस ले संसार।

॥ समाप्त ॥